संत-सुधा-सार

वियोगी हरि

•

प्रस्तावना
आचार्य विनोबा

•

१९५३

सस्ता साहित्य मंडल प्रकाशन

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय,
मंत्री, सस्ता साहित्य मंडल,
नई दिल्ली

पहली बार : १९५३
मूल्य
ग्यारह रुपये

मुद्रक
उद्योगशाला प्रेस,
किंग्सवे, दिल्ली

प्रकाशकीय

मण्डल ने अबतक जितना साहित्य प्रकाशित किया है, उसमें इस बात का ध्यान रक्खा है कि वह जीवन के सभी प्रमुख पहलुओं का स्पर्श कर सके। इस दृष्टि से जहाँ उसने राजनैतिक तथा सामाजिक साहित्य निकाला है, वहाँ ऐसे साहित्य का भी प्रकाशन किया है, जो मानव की आध्यात्मिक क्षुधा को शात कर सके। सत-वाणी, बुद्ध-वाणी महावीर-वाणी, तमिलवेद, जीवन-सूत्र आदि पुस्तकें मुख्यतः इसी विचार से प्रकाशित की हैं।

हमें हर्ष है कि इस दिशा मे अब एक बृहद् ग्रन्थ प्रकाशित हो रहा है। इसमे लगभग सभी मुख्य-मुख्य उत्तर भारतीय संतों की चुनी हुई वाणियाँ आगई हैं।

संत-सुधा-सार का सकलन और सम्पादन संत-साहित्य के मर्मज्ञ श्री वियोगी हरि ने किया है, जिन्होंने न केवल सत-साहित्य का अध्ययन ही किया है, अपितु उसमे डूबकर उसकी मूल भावना समझने का भी प्रयत्न किया है।

हमें विश्वास है कि बडे ही परिश्रम और निष्ठा के साथ तैयार किये गये इस ग्रन्थ का जो मनन करेंगे, उन्हे अवश्य आत्म-लाभ होगा।

सतों की वाणियाँ वैसे तो सरल ही होती हैं, फिर भी इस पुस्तक में जहाँ कहीं कठिन वाणियाँ आई हैं, उनका सरल भाषा में सकलन-कर्त्ता ने अर्थ देकर ग्रन्थ को सामान्य पाठकों के लिए बहुत उपयोगी बना दिया है।

—मंत्री

विषय सूची

प्रथम खण्ड

दूसरा खण्ड

दो शब्द।

आचार्य विनोबा ने संतवाणी पर प्रस्तावना मे अधिकारपूर्वक जो लिखा है उसके बाद मुझे, सपादक के नाते, इस ग्रंथ के संबंध मे बहुत थोड़ा लिखने को रह जाता है । सतवाणी का विश्लेषण-विवेचन करने की न मुझमें वैसी सामर्थ्य है, न योग्यता। तथापि, कुछ सांकेतिक-सा वक्तव्य मात्र दे देता हूँ, जो सभवतः आवश्यक है और कदाचित् सहायक भी।

दस-बारह बरस पहले सत-साहित्य देखने का मेरा चाव बहुत बढ गया था। समय निकालकर नित्य उसका कुछ-न-कुछ अध्ययन व चिंतन किया करता था। उन्हीं दिनों बुद्धवाणी को भी कुछ देखा। कहना चाहिए कि मेरी अध्ययन-यात्रा की यह एक नई मोड़ थी। पहले तो सगुण-साकार का मधुर-मधुर रसगान करनेवाले भक्तों की वाणी की ओर ही मेरा रुझान रहता था, जिसका एक परिणाम हुआ "व्रज-माधुरी-सार" का संकलन-सपादन।

सूरदास आदि अष्टछाप की व्रजवाणी मे गहरे अनुराग की अरुणिमा मैंने दूर से तब कुछ-कुछ देखी थी। पीछे, तुलसी की "विनय-पत्रिका" पाई, तो मानों मंदाकिनी की धवलता पर दृष्टि दौड़ने लगी।

और जब बुद्धवाणी के साथ-साथ निर्गुण-निराकारी संतों के "सबद" सामने आये, तो जैसे हिमांचल की शुभ्र रजत-रेखा किसीने मानस-क्षितिज पर खीचदी।

कबीर, रैदास, धर्मदास, नानक, दादू, पलटू आदि की बानी को छूते ही ऐसा लगा कि अलौकिक महारस का पूर्ण परिपाक तो यही पर हुआ है। साहित्यालोचकों के यह कथन अर्थशून्य-से जँचे कि 'इन संतों की अटपटी रचनाओं मे न तो साहित्यिक सरसता है, न सगीत की लय है और न कला की ऊँची अभिव्यजना ही, और भाषा भी उनकी ऊबड़-खाबड़-सी है।' मैंने देखा कि रीति-ग्रन्थों का फीता लेकर वे साहित्यालोचक सतवाणी का असीम क्षेत्रफल निर्धारित करने गये थे---चौकोर बँधे हुए तालाब पर धीरे-धीरे सरकती हुई नौका जैसे असीम अनन्त सागर के बिखरे वैभव को मापने पहुँची थी!

"मसि-कागद" से नाता न रखनेवाले जुलाहो, शिल्पियों और खेतिहरों की अटपटी "बाउल-बानी" की अथाह गहराई मे उतरा जाये, तो वहाँ वेद, उपनिषद् और त्रिपिटक की झीनी-झीनी झाँकी तो मिलेगी ही, सूफी औलियों की मौज-मस्ती भी वहाँ लहराती नजर आयेगी। वेदान्त, भागवतभक्ति, ब्रह्मविहार और तसव्वुफ इन सब धाराओं का सहज-सुन्दर संगम वहाँ देखने को मिलेगा।

२

मन मे उठा कि संतवाणी का एक संग्रह-सकलन किया जाये। बहुत-सी पुस्तकों मे की जो साखियाँ और सबद बहुत प्रिय लगे थे, और जिनका अर्थ लगाने मे अधिक अड़चन नही पडी थी, उन सबपर निशान लगा लिये और सग्रह लिख डाला। आदि मे दो बौद्ध सिद्धों सरहपाद और तिल्लोपाद तथा दो जैन मुनियों देवसेन और रामसिंह की कुछ सूक्तियाँ बानगी-रूप मे दी हैं, जो अपभ्रष्ट हिन्दी मे हैं। उनका अर्थ भी दे दिया है। सतो की इस मुक्त रस-धारा का उगम यहाँ स्पष्ट दिखता है।

कबीर की बानी को सबसे अधिक सख्या मे लिया, फिर भी तृप्ति नहीं हुई। हो भी कैसे और किसे उस रस-निर्झरिणी की एक भी बूँद को छोडकर, जिसके कण-कण मे साई का नौरँगा नूर झिलमिल-झिलमिल करता हो?

गुरु नानक के पद पहले मैंने कुछेक संग्रह-ग्रंथो मे देखे थे। सर्व हिन्द-सिक्ख मिशन, अमृतसर द्वारा प्रकाशित नागरी लिपि में "श्री गुरु ग्रंथ साहिब" जब देखा, तो ऐसा लगा कि गुरु-बानी के बिना सचमुच यह सग्रह अपूर्ण ही रह जाता। 'जपुजी' का नाम-ही-नाम सुना था, रसास्वादन उसका नहीं किया था। नानक के जो पद पहले देखे थे वे असल मे सब-के सब नवे गुरु तेगबहादुर के थे। 'सुखमनी' का भी पाठ करते हुए सुना था। दूसरे तीन गुरुओं की बानी का तो पता भी नहीं था। गुरु ग्रथ साहिब कितनी अनमोल सिद्ध-संपदा है हमारी, जिसे एक ही संप्रदाय के अंदर बद करके आजतक रखा गया। बिगूचन मे पड़ गया कि इस महान् रत्नाकर मे से किस रत्न को तो लिया जाय और किसे छोड़ा जाय। लगभग २०० पृष्ठो मे गुरुबानी को मैंने लिया है, फिर भी तृष्णा बुझी नही।

गुरु ग्रन्थ साहिब मे से महाराष्ट्र के सुप्रसिद्ध सत नामदेव महाराज के कुछ हिन्दी पदों को भी लिया है; और उसीसे शेख फरीद की अति अनूठी और अमृत-सी मीठी बानी भी ली है।

दादू-बानी और दादूजी के कई शिष्यों की बानी भी खूब रसवेन्ती है, अन्तर पर सीधे चोट करती है। रज्जब, बषना और वाजिन्द की साखियाँ और सबद बहुत अनूठे और गहरे हैं। इनका चुनाव करते समय भी रत्न-राशि देखकर मेरी महालोभी की जैसी गति हुई।

गोरखनाथ की, सदियों से घिसी-पिसी, बानी कम-से-कम भावरूप में प्रगटाने का श्रेय स्व० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल को है। उन्हीके संपादित ग्रंथ से प्रस्तुत संग्रह में गोरखनाथ की कुछ सूक्तियाँ मैंने ली हैं, और अर्थ भी प्रायः उसी ग्रथ के आधार पर किया है।

नाथ-सम्प्रदाय के एक संत लालनाथ की भी कुछ सूक्तियाँ उनकी "जीव-समझोतरी" नाम की पुस्तक से ली हैं, जिसका प्रकाशन पारीक-सदन, रतन-गढ (राजस्थान) से हुआ है।

धनी धरमदास, जगजीवन साहब, दरिया साहब, बुल्ला साहब, यारी साहब, चरणदास, सहजोबाई व दयाबाई, पलटू साहब, तुलसी साहब आदि अनेक संतों की बानियों का सकलन प्रयाग के वेलवेडियर प्रेस द्वारा प्रकाशित "सत-बानी-पुस्तक-माला" में से किया गया है।

हर सत की ऐसी ही बानी को मैंने इस ग्रन्थ मे लिया है, जिसमें प्रेम-प्रीति व विरह का गहरा रंग पाया, सत् और श्वेत करनी की निर्मल झाँकी मिली, चेतावनी और वैराग की ऊँची-ऊँची लहरें देखी। योग की—त्रिवेणी के तट की और अनहद बाँसुरी की, और रिमझिम-रिमझिम रस-झडी का संकेत करने व खोलनेवाली साखियाँ व सबद इसमे नही लिये—बिना अधिकार के उधर, उस घाट की ओर जाने और दूसरों को ले जाने की हिम्मत नहीं हुई, यद्यपि अनेक सतों की अनोखी सैर की वही ऊँची-से-ऊँचो ठौर है।

प्रत्येक सत का 'चोला-परिचय' व 'बानी-परिचय' भी सक्षेप में देने का मैंने प्रयत्न किया है, हालाकि कबीर की यह साखी सदा सामने रही—

"जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजियो ज्ञान।
मोल करो तलवार का, पड़ा रहन दो म्यान॥"

तो भी हम सबका स्वभावतः देह के प्रति अति लगाव रहने के कारण, सतों का भी यथाप्राप्त शरीर-परिचय थोड़े में दे दिया है। बहुत ऊहापोह में

नही पढ़ा, ऐतिहासिक शोध के विवाद मे नहीं उतरा। ऐसा करना आवश्यक और रुचिकर भी नही लगा।

बानी-परिचय भी सबका कुछ-कुछ दिया है, जिसे मैं अपनी अनधिकार-चेष्टा ही कहूँगा। सभी संतों की बानी सरस और आनन्ददायिनी ही लगी है। तुलना की तरफ़ मन नही गया। तोलने के बाँट भी नही थे, और यह अच्छा ही हुआ।

ऐतिहासिक एव साहित्यिक गवेषणा पाठकों को देखनी हो, तो संत-साहित्य के मर्मज्ञ पं० परशुराम चतुर्वेदी के "उत्तरी भारत की संत-परंपरा" नामक बृहद्ग्रन्थ मे देखे। इस पाण्डित्यपूर्ण ग्रन्थ का मैंने कितने ही स्थलों पर सहारा लिया और आभार माना है।

प्रायः हरेक साखी, सबद और पद्य के कठिन शब्दो का अर्थ, और बौद्ध सिद्धो और जैन मुनिया तथा गुरु-बानी के अनेक पदों व शेख फरीद के सलोकों का पूरा भावार्थ देने का मैंने प्रयत्न किया है अनेक टीकाओं के आधार पर। कुछ शब्दों का अर्थ फिर भी कुछ अस्पष्ट-सा रहा है।

संत-सुधा-सार दो-ढाई वर्षतक छपता रहा। पू० ठक्कर बापा के देहा-वसान के बाद बार-बार, हरिजन-कार्य के सिलसिले मे, प्रवास करना पडा, इस कारण प्रूफ बराबर नही देख सका, जिससे कुछ भूलें भी रह गई हैं, और ग्रन्थ के प्रकाशित होने मे इतना अधिक विलम्ब भी हुआ है।

इस संत-वाणी-संग्रह से यदि संत-साहित्य के अध्ययन-अनुशीलन की लोगों मे कुछ भी अभिरुचि बढी,—विशेषकर विद्यार्थियों की, तो मैं अपने आपको कृतकृत्य मानूँगा।

हरिजन-निवास, दिल्ली
सर्वोदय-दिवस, १९५३

विनीत
वियोगी हरि

प्रस्तावना

१

सतो की परपरा अति प्राचीन काल से आजतक चली आरही है। जब से मानवता का उगम हुआ, सतों का आविर्भाव हुआ है। सतों की वाणी का प्रथम नमूना हमे ऋग्वेद में देखने को मिलता है। ऋग्वेद के कुछ कथानकपर सूक्तों को हम छोड़दे, तो बाकी का सारा ऋग्वेद संतों की वाणी ही है।

बहुतों का यह खयाल है कि वेदो मे कर्मकाड ही भरा है। यजुर्वेद आदि में कर्मकाड भी मौजूद है, लेकिन ऋग्वेद के मत्र भक्तिपर सत-गाथा हैं। उनका सबध जो भिन्न-भिन्न कर्मो के साथ जोड़ा गया है, उसका उद्देश्य इतना ही है कि उन-उन कर्मों के निमित्त उन-उन प्रसगों पर अच्छे-अच्छे वचन लोगों के कठ मे रहे। मेरी मा सुबह आटा पीसने के साथ तुकाराम के भजन गाया करती थी। उन भजनों का आटा पीसने के साथ क्या सम्बन्ध था सिवा इसके कि आटा पीसने मे उसे कुछ उत्साहवर्धन होता होगा। इसी प्रकार बहुत सारे ऋग्वेद के सूक्तों का कर्मो के साथ सबध गिना जा सकता है। सामवेद तो ऋग्वेद मे के ही भजनों का चुनाव है, जिनकी एक विशेष ढंग से सामपाठियों ने स्वरलिपि बना रखी थी।

कुछ लोगों का यह खयाल है कि वेदों मे भक्ति है भी, तो वह बहुदेवता-भक्ति है। लेकिन इसका उत्तर तो स्वयं ऋग्वेद ने ही दिया है। वेद कहता है कि, सत्‌नाम एक ही है, उपासना के लिए उपासक भिन्न-भिन्न रूप पसंद करते हैं :

"एकं सत्, विप्राः बहुधा वदंति।
अग्नि यमं मातरिश्वानं आहुः॥"

अग्नि, यम, वायु ये सारे एक ही परमेश्वर के भिन्न-भिन्न गुणवाचक भिन्न-भिन्न नाम हैं। परमेश्वर परिशुद्ध निर्गुण है, अर्थात् अनत गुणवान् है। जिस उपासक को अपनेमे जिस गुण के विकास की आवश्यकता अनुभव होती है, वह उस गुणवाले भगवान् की भक्ति करता है। जैसे, तुलसीदास ने **विनय-पत्रिका** मे मंगलमूरति गणनायक, प्रेरक सूर्यनारायण, औढरदानी शंकर,

विरक्तिरूपिणी दुर्गा आदि अनेक देवताओं का स्तवन किया, पर हरेक से मॉगा यही कि "रामचरण-रति देहु"। ऐसा ही ऋग्वेद के संतों का है। संतों की वाणी मे जो भावना की उत्कटता, अंदर की छटपटाहट, भूतमात्र के लिए आदर आदि विशिष्ट भाव दीख पड़ते हैं, वे सारे वैदिक ही हैं।

"स नः पिताइव सूनवे, अग्ने सूपायनो भव। सचस्वा नः स्वस्तये॥"

"हे अग्निदेव, ज्योतिर्मय प्रभु, जैसे पिता के पास पुत्र सहज पहुँच जाता है, वैसे ही हम तेरे पास पहुँचे। हमारे मगल के लिए निरतर तू हमारे साथ रह।" यह है आर्षवाणी। इसे हम संतवाणी न कहें तो क्या कहे ?

संतवाणी का दूसरा आविर्भाव हमे मिलता है, बुद्ध भगवान् की गाथाओं में। वेदवाणी और बुद्धवाणी मे वैसा ही फरक है जैसा कि तुलसीदास और कबीर मे। तुलसीदास है प्रतिमा वेदवाणी की, और कबीर बुद्धवाणी की। वियोगी हरिजी के सत-सुधा-सार का बहुत सारा हिस्सा जो मैने देखा, बुद्धवाणी का नमूना है।

"मनो पुब्बंगमा धम्मा, मनो सेट्ठा मनोमया" यह है धम्मपद का पहला वचन।

इसके साथ देखिए जपुजी मे गुरु नानक का वचन :

"मन्ने मोख दुवारु मन्नी परवारै साधारु।"

मै तो इन दोनो मे कुछ भी फरक नहीं देखता, चाहे अर्थ करनेवाले कितने ही भिन्न-भिन्न अर्थ क्यों न करे। कबीर, नानक, दादू सब एक ही माला के मणि हैं, जिनमे मेरुमणि तो मै बुद्ध को ही समझता हूँ। बुद्ध ने लोक-भाषा मे लिखा, यही पीछे के सतो ने भी किया। वेद-वाणी भी उस जमाने की लोक-भाषा मे याने वैदिक सस्कृत मे प्रगट हुई। वेदवाणी स्वय यह प्रगट कर रही है :

"अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम्"

"मै हूँ सब राष्ट्र की वाणी, सबकी वासनाओं का संगम करनेवाली" अगर वैदिक ऋषि लोक-भाषा मे न गाते होते, तो "अहं राष्ट्री" ऐसा दावा वे नही कर पाते।

संतवाणी का तीसरा आविर्भाव हमे मिलता है दक्षिण के शैव और वैष्णव भक्तो में। पेरिय आल्वार, आंडाळ, नम्माळवार, कुलशेखरर् आदि वैष्णव, और संबंधर, अप्पर्, सुन्दरर्, माणिक्कवाचकर् आदि शैव

भक्तों ने जो परममधुर भजन गाये हैं वे विश्व-साहित्य में अपना एक विशेष स्थान रखते हैं। वेदवाणी और बुद्धवाणी जो उत्तरभारत से दक्षिणभारत मे पहुँचीं, उनका ऋण चुकाने के लिए शकर, रामानुज आदि वैष्णव-आचार्यों ने भक्ति का प्रवाह दक्षिणभारत से उत्तरभारत मे बहाया। उन आचार्यों को यह स्फूर्ति तमिल भाषा मे गानेवाले वैष्णव और शैव सतों से ही मिली। यहाँ एक भ्रम दूर करने की जरूरत है। लोगो का खयाल है कि रामानुज तो वैष्णव थे, पर शायद शकर वैष्णव नही थे। यह गलत है। जहाँ-जहाँ शंकर प्रतीक-उपासना का दृष्टान्त देते हैं वहाँ **"शालग्रामे इव विष्णुः"** ऐसा ही देते हैं। **"अविनयमपनय विष्णो"** यह विष्णुस्तोत्र शकराचार्य के मठों में प्रतिदिन गाया जाता है। शंकर ने अपनी माता को दर्शन कराया था . . **"मम भवतु कृष्णोऽक्षिविषयः"** इस स्तोत्र से। और भाष्य भी उन्होने लिखा है भगवद्गीता और विष्णुसहस्रनाम पर, जो कि वैष्णव ग्रंथ हैं। हाँ, अद्वैती के नाते वे शिव, विष्णु आदि मे भेद नही करते थे, और **"चिदानन्द रूपः शिवोऽहं शिवोऽहं"** गाते थे। शिव और विष्णु का यही अभेद हम तुलसीदास तक में पाते हैं, जो कि श्रीराम के अनन्य उपासक थे।

वेदवाणी, बुद्धवाणी और तमिल भक्तवाणी यह मूलत्रयी है, जिसमे से बाद को सारी भारतीय सतवाणी प्रसृत हुई। ज्ञानदेव, नामदेव और तुकाराम, पुरदरदास और त्यागराज, नरसी मेहता और अखाभगत, तुलसीदास, सूरदास और मीरा बाई, कबीर, नानक, दादू; शंकरदेव और चैतन्य ये सारे मध्ययुगीन संत विविध पुष्प हैं उस वल्ली के, जिसका मूल उक्त त्रयी मे है।

२

संतों की सामान्य सिखावन सर्वलोक-सुलभ और सादी सी होती है। उनकी जीवन-योजना के मूल मे जो बुनियादी विचार पाये जाते हैं वे थोडे मे यह हैं :

(अ) देह की आजीविका के लिए कौटुम्बिक सरणी के या परिस्थिति के अनुसार जिसे जो उद्योग प्राप्त हो वह निरंतर करते रहना चाहिए। समाज पर भाररूप होकर जीवन बिताना भक्ति के अनुकूल नही हो सकता। बल्कि अपने सहजप्राप्त उद्योग की क्रियाओं को ब्रह्मरूप देखने का अभ्यास करना चाहिए। शुद्ध आजीविका के बिना शुद्ध विचार और विवेक सभव नहीं हैं। इसी विश्वास के कारण हम देखते हैं कि नामदेव **"सोने की सूई"** और **"रूपे का धागा"**

लेकर भक्ति-भाव से सीवन सीता रहा और चित्त को हरि मे पिरोता रहा। कबीर "झीनी झीनी चदरिया" बुनता रहा। और दूसरे संत भी इसी तरह अपना-अपना काम करते रहे। उन कामों को उन्होंने कभी बोझ समझा हो ऐसा नहीं मालूम पड़ता, क्योंकि अपने-अपने उद्योग की परिभाषा मे वे अपने अध्यात्म के विचारों को प्रगट करते हुए दीख पडते हैं। यद्यपि यह मै नही कह सकता कि "निष्काम-कर्म = भक्ति" इस गीतोपदेशित समीकरण को वे मान्य करते थे, या "निष्काम-कर्म + भक्ति" ऐसा समुच्चय उनके मन मे था। यह बारीक भेद है। इसका निर्देशमात्र करके यहाँ छोड देता हूँ।

चाहे समीकरण मानो, चाहे समुच्चय, भक्ति के साथ अकर्मण्यता नही टिकती यह बात सभी संतों के अनुभव पर से निश्चित है। जहाँ भक्ति का ही टिकाव न लगे ऐसी किसी अंतिम अवस्था मे कर्म गिर पडे यह संभव है। लेकिन उस स्थिति में तो शरीर ही गिर जाने की बात है। इसलिए यहाँ उसके विचार करने की ज़रूरत नही।

दुर्दैव इस बात का है कि वह अंतिम स्थिति मानो प्राप्त ही हो चुकी ऐसे भ्रम मे जानबूझकर कर्म छोडने की घातक मनोवृत्ति, बावजूद संतों के जीवन और उपदेश के, हमारे समाज मे फैली हुई है, और कभी-कभी किसी संत-वचन का असंबद्ध आधार भी उसे मिल जाता है।

(आ) अपने शरीर से जितना हो सके उतना परोपकार करना चाहिए। परोप-पकार का मौका कभी खोना नही चाहिए। संतो के जीवन की यह बहुत ही बुनियादी बात है, बल्कि यही कहना चाहिए कि उनका सारा जीवन ही परोप-कारमय होता है। "उपकार" शब्द मे हम लोगों को कुछ अहंकार का आभास आता है। वास्तव मे ऐसा नहीं है। "उप" का अर्थ ही "अल्प" होता है। मनुष्य को अपने पाँवो पर ही खडा रहना होता है, उसे हम गौणरूप से कुछ मदद पहुँचा देते हैं—यह अर्थ 'उपकार' शब्द मे निहित है।

आजकल हमने सार्वजनिक सेवा का एक आडम्बर-सा बना रखा है। अपने पडौसी की और आसपास के लोगों की, सहजभाव से और स्वभाव से, छोटी-मोटी सेवाएँ करते रहना यह मनुष्य का सहज लक्षण होना चाहिए। मीमांसकों की भाषा मे, परोपकार एक नित्यकर्म है, जिसके करने मे कोई पुण्य लाभ नहीं होगा, लेकिन न करने मे पाप होगा। दाहिने हाथ से किये उपकार का

बायें हाथ को पता न लगे, और दोनो हाथों से किये उपकार का मन को पता न लगे।

(इ) "अहिंसासत्यादीनि चारित्र्याणि परिपालनीयानि" यह है नारद की आज्ञा, जो थे सब सतों के आदिगुरु। सतों की चारित्र्य-पद्धति मे और नीति-शास्त्र-वेत्ताओं की विचार-सरणी में एक बड़ा अंतर यह है कि संतों की श्रद्धा मे अहिसा-सत्यादि का पालन जाति-देश-काल-समय-निरपेक्ष करना होता है। अर्थात् यह लक्ष्मण की खीची रेखा है, जिसका उल्लघन सीता भी बिना खतरे के नही कर सकती। विद्वान् नीति-शास्त्री भी अहिंसा आदि को मानते तो हैं, लेकिन इनको वे अविचल या शाश्वत धर्म नही मानते, बल्कि परिस्थिति-सापेक्ष या सुभीते के अनुसार मानते हैं। कुछ समाज-शास्त्री भी कहते हैं कि ये यम-नियम व्यक्ति के लिए निरपवाद माने भी जायें, तोभी समाज के लिए इनका निरपवाद पालन न सिर्फ अशक्य है, बल्कि अयोग्य भी है। इस विचार से संतो का घोर विरोध है।

"आदि सच, जुगादि सच, है भी सच, होसी भी सच।" इस तरह की थी उनकी सत्य-निष्ठा। और हमेशा उनकी आतुरतापूर्वक रटन थी :

"किऊ सचियारा होइये, किऊ कूडे तुट्टे पाल।" कैसे हम सच्चे बनेंगे, और कैसे असत्य का पर्दा टूटेगा। निरपेक्ष-नीति और सापेक्ष-नीति का झगडा लोकजीवन में तो जब मिटेगा तब मिटेगा, लेकिन भगवान् की जिसपर कृपा होगी उसके लिए तो वह झगड़ा इसी क्षण मिटेगा। और जिसके मन मे यह झगडा मिट गया उसपर भगवान् की कृपा हुई ऐसा समझना चाहिए। भक्ति का यह आरंभमात्र है।

(ई) सब संतों की सिखावन मे और सब धर्म-ग्रंथों मे भगवन्नाम की महिमा एक सर्वमान्य वस्तु है। इसपर अधिक लिखने की जरूरत नही। लेकिन नाम-जप के साथ अर्थ-भावन भी करना होता है। उसमे अपनी-अपनी धारणा के अनुसार अनेक प्रकार हो जाते हैं।

कुछ ज्ञानी निर्गुण-निराकार का ध्यान करते हैं, जो सब कल्पनाओं से रहित है। उसका ध्यान करनेवाले अक्सर 'ओंकार' को पसंद करते हैं। लेकिन राम, गोविंद, नारायण, हरि आदि नाम लेकर भी निर्गुण-निराकार का भावन कर सकते हैं। कबीर, नानक आदि मे ही नहीं, तुलसीदासतक मे यह पाया

जाता है। दुनिया के सारे साहित्य मे निर्गुण-निराकार का सबसे श्रेष्ठ प्रतिपादन उपनिषदों मे मिलता है।

कुछ ध्यानी नाम के साथ सगुण-निराकार का ध्यान करते हैं। अक्सर हम जहाँ निर्गुण-निराकार को छोडते है, सगुण-साकार में आजाते है। लेकिन दोनों के बीच सगुण-निराकार की भी एक भूमिका होती है। इसमें भगवान् को, निराकार मानते हुए, दया, वात्सल्य आदि अनंत गुणों के परम आदर्श के तौर पर माना जाता है। उपनिषद् मे निर्गुण-निराकार के साथ सगुण-निराकार की पुष्टि करनेवाले वचन भी पाये जाते हैं, जिनको रामानुज आदि भाष्यकार विशेष महत्व देते हैं। इस्लाम और ईसाई-मत इसीको मानते हैं। ब्रह्म-समाज, प्रार्थना-समाज, आर्य-समाज इत्यादि आधुनिक समाज सगुण-निराकार की भूमिका पर खडे हैं।

कुछ भक्त नाम के साथ सगुण-साकार की कल्पना करते हैं। इसके भी तीन पंथ हो जाते हैं :

(१) सांकेतिक रूप की उपासना, जैसे शेषशायी विष्णु, अर्धनारी-नटेश्वर इत्यादि।

(२) विश्वरूप की उपासना, जिससे अर्जुन घबडा गया था, लेकिन "खुले नयन पहचानों, हँसि हँसि सुन्दर रूप निहारों" कहकर कबीर आनन्दित होता है। अर्जुन इसलिए घबड़ा गया था कि उसके ध्यान-दर्शन में तीनो काल और तीनों स्थल एकत्र प्रगट हुए थे। कबीर इसलिए आह्लादित है कि वह विश्वरूप का एक भाग ही देख रहा है, जो कि उसके नेत्रों को अनुकूल है।

(३) विशिष्ट श्रेष्ठपुरुष की अवताररूप में उपासना। इस उपासना के करनेवालों के फिर दो विभाग हो जाते हैं। एक अकल रखे हुए, जो कि अपने पूज्य पुरुष को ईश्वर का अंशावतार मानते हैं। दूसरे अकल खोये हुए, या अकल को ही शून्य समझनेवाले, जो "**कृष्णस्तु भगवान् स्वयं**" कहकर लीला-विभोर हो जाते हैं। इस विवेचन का चित्र इस प्रकार होगा:
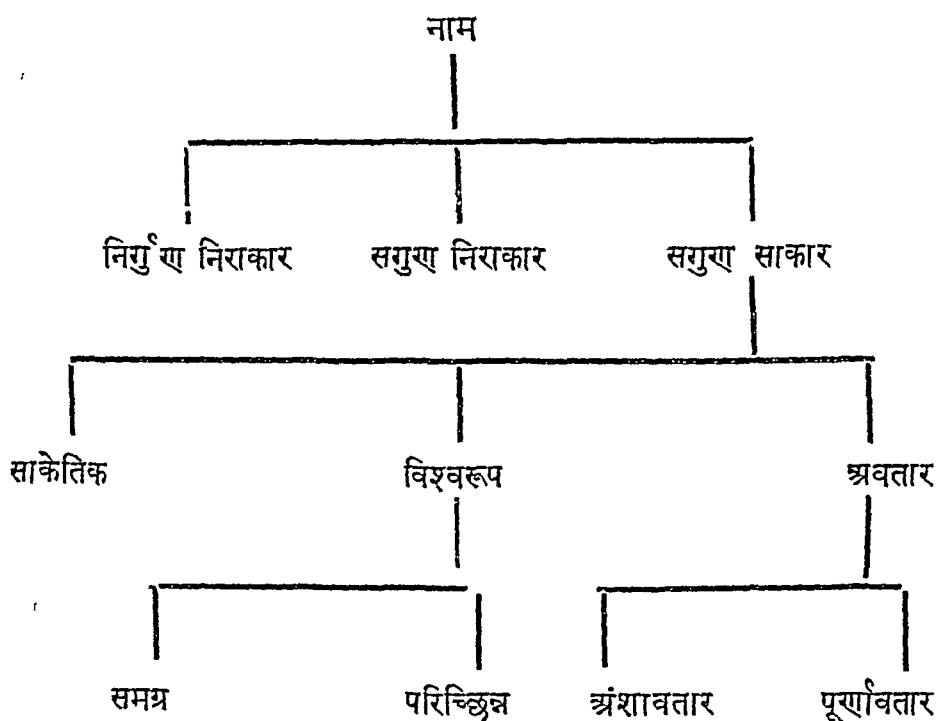
लेकिन खूबी यह है कि हमारे संतों की पाचन-शक्ति प्रखर होने के कारण ये सारे भिन्न भिन्न दर्शन उनको विरोधी नहीं मालूम होते, बल्कि इन सबको वे एकसाथ हजम कर लेते हैं। मिसाल के तौर पर, तुलसीदासजी पक्ष तो लेंगे सगुण-साकार का, लेकिन निर्गुण-निराकार से पूर्णावतारतक की सब तालिका वे स्वीकार करेंगे। शंकराचार्य अभिमानी बनेंगे निर्गुण-निराकार के, लेकिन **"नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्तस्वभावं"** के साथ त्रिपुरसुन्दरी का भी स्तोत्र गा सकेंगे। हाँ, शायद पूर्णावतार की कल्पना वे नहीं निगल सकेंगे। क्योंकि **"अंशेन कृष्णः किल संबभूव"** ऐसा वे लिख चुके हैं। फिर भी भाविकों के साथ पूर्णावतार के भजन में भी वे लीन हो जायँ तो आश्चर्य की बात नहीं, क्योंकि जब वे सारा ही मिथ्या समझते थे, तो किसी चीज के लिए क्यों हिचकिचाना ?

कुछ विचारक और उपासक ऐसे जरूर होते हैं जो अपना-अपना आग्रह रखते हैं, जैसे मोहम्मद पैगम्बर सगुण-निराकार माननेवाले थे। यद्यपि निर्गुण निराकार का वे निषेध नहीं करेंगे, किंतु सगुण-साकार का अवश्य निषेध करते हुए वे दीख पड़ते हैं। वैसे कुरान में वज्हुल्लाह याने "अल्लाह का चेहरा" ये शब्द कई जगह आये हैं, जिनके आधार पर मूर्तिपूजा की अतिशयता का तो बचाव

नहीं होगा, लेकिन सगुण-साकार का प्रवेश हो जायगा। कुरान का कुल मिला-कर भाव मैं यही समझा हूँ कि मोहम्मद के सामने विकृत मूर्तिपूजा खड़ी है, जिसके साथ अनेक भ्रष्टाचार जुड़ गये हैं : उस सबका वे निषेध करना चाहते हैं। आखिर, ईश्वर का शब्द वे सुनते थे, "वही" उन्हें प्राप्त होती थी, उससे वे भावित होते थे, उसका उनके शरीर पर असर होता था; कुछ रूह, कुछ प्रभा, कुछ आभास, जो भी कहो, उनके अंतर-मानस में प्रगट होती थी। यह सब देहधारी मनुष्य कैसे टालेगा ? सारांश. जो शब्दातीत वस्तु है उसको शब्द में प्रगट करने के प्रयत्न में ही दोष आ जाता है। विष्णुसहस्रनाम में तो भगवान् के दो नाम ही यों दिये हैं, "शब्दातिगः शब्दसहः" शब्द से परे, किन्तु शब्द को सहन करने-वाला।

इसलिए अचिन्त्य विषय में सर्व आग्रह छोड़कर नम्र हो जाना यही सर्वोत्तम लक्षण है।

(३) संतों की जीवन-योजना में आखिरी बात है सत्संग की चाह। सामान्य व्यावहारिक विद्या की प्राप्ति के लिए भी जब उस विद्या के जानकार का सहारा लेना पड़ता है, तब आध्यात्मिक साधन में प्रवेश की इच्छा रखनेवाले को अनुभवी संतपुरुषों की संगति ढूँढ़नी ही पड़ेगी। यह बात सहज समझ में आती है। इसीलिए शंकराचार्य ने मनुष्यत्व और मुमुक्षुत्व के बाद महापुरुष-संश्रय को तीसरा महद्भाग्य माना है। आत्मा स्वयं-सिद्ध और अपना निजरूप ही होने के कारण हम ऐसा आग्रही विचार तो नहीं रख सकते कि सूर्योदय के पहले उषोदय के समान आत्मदर्शन के पहले महापुरुष-संश्रय या स्थूल सत्संगति आवश्यक है। और हम यह भी नहीं कह सकते कि सत्संग के लोभ में, ऐसे किसी वेषधारी को सत्पुरुष या सद्गुरु के स्थान पर बिठादें। लेकिन यह ज़रूर मानना पड़ेगा कि जहाँ सद्विचार के श्रवण-मनन का मौका मिलेगा वहाँ पहुँचने की या वैसी संगति ढूँढ़ने की अभिलाषा साधक में होनी चाहिए। मैं तो कहूँगा कि सत्संगति की अभिलाषा सत्संगति से भी बढ़कर है। या, अधिक समीचीन भाषा में यों कह सकते हैं कि सत्संगति की अभिलाषा ही सच्ची सत्सं-गति है।

यह है संत-सुधा-सार, जिसका संग्रह एक संस्कृत श्लोक बनाकर मैंने इस तरह रख दिया है:

"स्वकर्मणि-समाधानं, परदुःख-निवारणम्।
नामनिष्ठा, सतां संगः, चारित्र्य-परिपालनम्॥"

अब वियोगी हरिजी के इस संग्रह के बारे मे मुझे कुछ कहना चाहिए।

पहली बात तो मैं यह कहूँगा कि हिन्दी के बहुत सारे सतो की वाणी का अध्ययन मैं नहीं कर सका हूँ। सिर्फ चार कृतियाँ मेरे नसीब में आई हैं जिनको कुछ बारीकी से देखने का मौका मुझे मिला है। **रामायण और विनयपत्रिका,** ये तुलसीदास की दो कृतियाँ। इन दोनो कृतियों का मुझपर बहुत गहरा असर पडा है। तुलसीदास की शैली में बोलना हो तो यही कहना पडेगा कि, एक है "रा" और दूसरा है "म" और दोनों मिलकर तुलसीदास का "राम" बनता है। दोनों कृतियाँ परस्पर-पूरक हैं। इनके अलावा, गुरु नानक का **जपुजी** और गुरु अर्जुन की **सुखमनी**। इस सग्रह मे जपुजी का, अर्थ के साथ, पूरा उद्धरण किया गया है। यह मुझे अच्छा लगा। मै जब पॉच-छह महीने शरणार्थियो के काम मे लगा था तब रोज सुबह जपुजी का पाठ किया करता था। कुछ दिन नागरी लिपि मे किया, फिर गुरुमुखी में पढ़ता रहा। यह एक परिपूर्ण कृति है। याने साधनमार्ग का पूरा चित्र, आदि से अततक, इसमें थोडे में मिल जाता है। इसकी तुलना ज्ञानदेव के मराठी हरिपाठ से हो सकती है। जिसको वर्णमाला का परिचय है, ऐसा हरेक देहाती हरिपाठ को पढ़ ही लेता है। बल्कि जो अक्षर भी नहीं सीखा वह भी दूसरों से सीखकर उसे कठ करता है। गुरु अर्जुन की सुखमनी यद्यपि एक छोटी ही पुस्तक है, तथापि सूत्ररूप नहीं वह विवरणरूप है। उसमे पुनरुक्ति काफी है। लेकिन उसकी शक्ति भी उस पुनरुक्ति में है। उसका यह एक सलोक जेल मे कई दिनोतक भोजन के पहले मे बोलता था, जैसा कि सिक्खों में रिवाज है :

> **काम क्रोध अरु लोभ मोह विनसि जाय अहमेव,**
> **नानक प्रभु शरणागती कर प्रसाद गुरुदेव।**

भोजन के लिए "प्रसाद" संज्ञा हिंदुस्तान की हर भाषा में मिलती है।

इन चार कृतियों के अलावा, बाकी का मेरा सारा हिन्दी-अध्ययन भ्रमरवत् है, याने थोड़ा इधर देख लिया, थोडा उधर देख लिया। नामदेव के मराठी भजनों में से कुछ चयन मैंने किया था, उसकी पूर्ति में उनके हिन्दी पद्यों का भी अवलोकन **ग्रन्थ साहिब** से किया था।

बहरे के कानोंतक भी जो पहुँच गई है उस **कबीर-वाणी** का मुझे कुछ सहज परिचय न हुआ हो, यह कैसे हो सकता है? तुकाराम की वाणी पर

कबीर का बहुत असर पड़ा है। और वह ऋण तुकाराम ने स्वय प्रगट किया है। तुकाराम का एक भी ऐसा वचन नही होगा, जिसे मै घोलकर पी न गया होऊँ, इसलिए कबीर तो मुझे मुफ्त मे मिल गया।

मीराबाई तो एक अद्वितीय व्यक्तित्व है, जिसके मधुरतम भजन आश्रम की प्रार्थना मे मैने सतत सुने, गाये, और ध्याये हैं। सूरदास हिंदी महासागर हैं। उसमे से 'आश्रम-भजनावली' मे जो कुछ दस-पॉच अमृत बिन्दु आये हे उतने ही मेरे लिए पर्याप्त हो गये हैं।

गोरखनाथ एक ऐसे महान् हैं जिनकी वाणी का तो नही, किन्तु करनी का स्पर्श समस्त भारत को हुआ है। वे कहाँ और कब जन्मे थे निश्चित रूप से कोई नहीं जानता, लेकिन वे जन्मे थे इसमे किसीको संदेह नही है। गूढ़-वादी बगाल उनपर अपना दावा करता है। तमिल लोग कहते हैं, सारा नाथ-संप्रदाय तमिलनाड का है। और तमिल भाषा मे नाथ-पथी साहित्य भी बहुत है। उसका परिचय तो राष्ट्रभाषावालों को तब होगा, जब वे आलस्य छोडकर तमिल सीखेगे। जलधरवाले पजाबी जालंदरनाथ के पथ पर क्यों नही अपना अधिकार रखेगे? और गोरखपुर तो गोरख का पुर है ही। ज्ञानदेव ने **ज्ञानेश्वरी** मे अपनी गुरु-परम्परा का कथन करते हुए मत्स्येन्द्रनाथ के शिष्य गोरखनाथ का निर्देश किया है, इसलिए महाराष्ट्र के लोग अपना हक पेश कर ही सकते हैं। इस सग्रह मे पृष्ठ ३६ पर दिया हुआ भजन "**कैसे बोलौं पंडिता देव कवणे ठाई**" सारा-का-सारा शुद्ध मराठी भजन है। मत्स्येन्द्र और गोरख की कहानियाँ जिसने बचपन मे नही सुनी ऐसा कौन बच्चा है?

रैदास का नाम महाराष्ट्र मे बहुत प्रसिद्ध है। उनको मराठी मे रोहिदास कहते हैं। चोखामेला महार, और रोहिदास "चाभार" (चमार) इन दो हरिजन सतों की कथा हमारी माँ बहुत सुनाती थी। मुझे लगता था कि चोखामेला के समान रोहिदास भी कोई मराठी संत होगे। **भजनावली** मे रैदास का एक हिंदी भजन साबरमती-आश्रम मे जब मैंने पहली बार सुना, तब मुझे इस बात का पता चला कि रोहिदास का नाम रैदास है और वे एक हिंदी के सत हैं।

एक और हिंदी-संत का नाम अहिंदी प्रातों को परिचित है, जिसने साहित्य का एक नया विभाग खोल दिया। वे हैं भक्तमाल के लेखक नाभाजी। जैसे पश्चिमी साहित्य मे प्लूटार्क, दक्षिण में शेक्किलार, वैसे ही उत्तर हिंदुस्तान मे

नाभाजी अपने क्षेत्र मे अद्वितीय हैं । महाराष्ट्र मे महिपति ने संत-चरित्र पर अनेक ग्रथ लिखे हैं जिनमे नाभाजी की भक्तमाल का बहुत उपयोग किया है ।

दादू की भक्त-मडली की ओर से **दादूवाणी** और **सुन्दर-ग्रन्थावली** भेट मे मिली थीं, उन्हे देख जाना जरूरी ही था । लेकिन दादू-पंथी निश्चलदासजी का **विचार-सागर** अपने ढग का एक विशिष्ट ग्रथ हैं । कबीर के **बीजक** मे उनकी स्वतत्र प्रतिभा का दर्शन होता है । निश्चलदास के विचार-सागर मे पारिभाषिक वेदात का गहरा अध्ययन दीख पड़ता है। विचार-सागर का इस सग्रह के साथ कोई सबध नहीं है । मैने तो उसका प्रसंगेन उल्लेखमात्र कर दिया है ।

हिंदी अब राष्ट्र-भाषा बनी है, तो उसके साहित्य का अध्ययन हिंदुस्तान-भर में होनेवाला है। जैसे अग्रेजी मे **गोल्डन ट्रेजरी** एक सर्वांगीण और सर्वमान्य संग्रह हुआ है, वैसा कोई सग्रह हिदी के लिए जरूर चाहिए । हरिजी के इस **संत-सुधा-सार** का वैसा दावा तो नही है, लेकिन मुझे लगता है कि यह भी एक काफी प्रातिनिधिक सग्रह है, और थोडे मे हिंदी-सत-साहित्य का जो व्यापक अध्ययन करना चाहते हैं उनको इसका बहुत उपयोग होगा इसमे मुझे सदेह नहीं ।

विनोबा
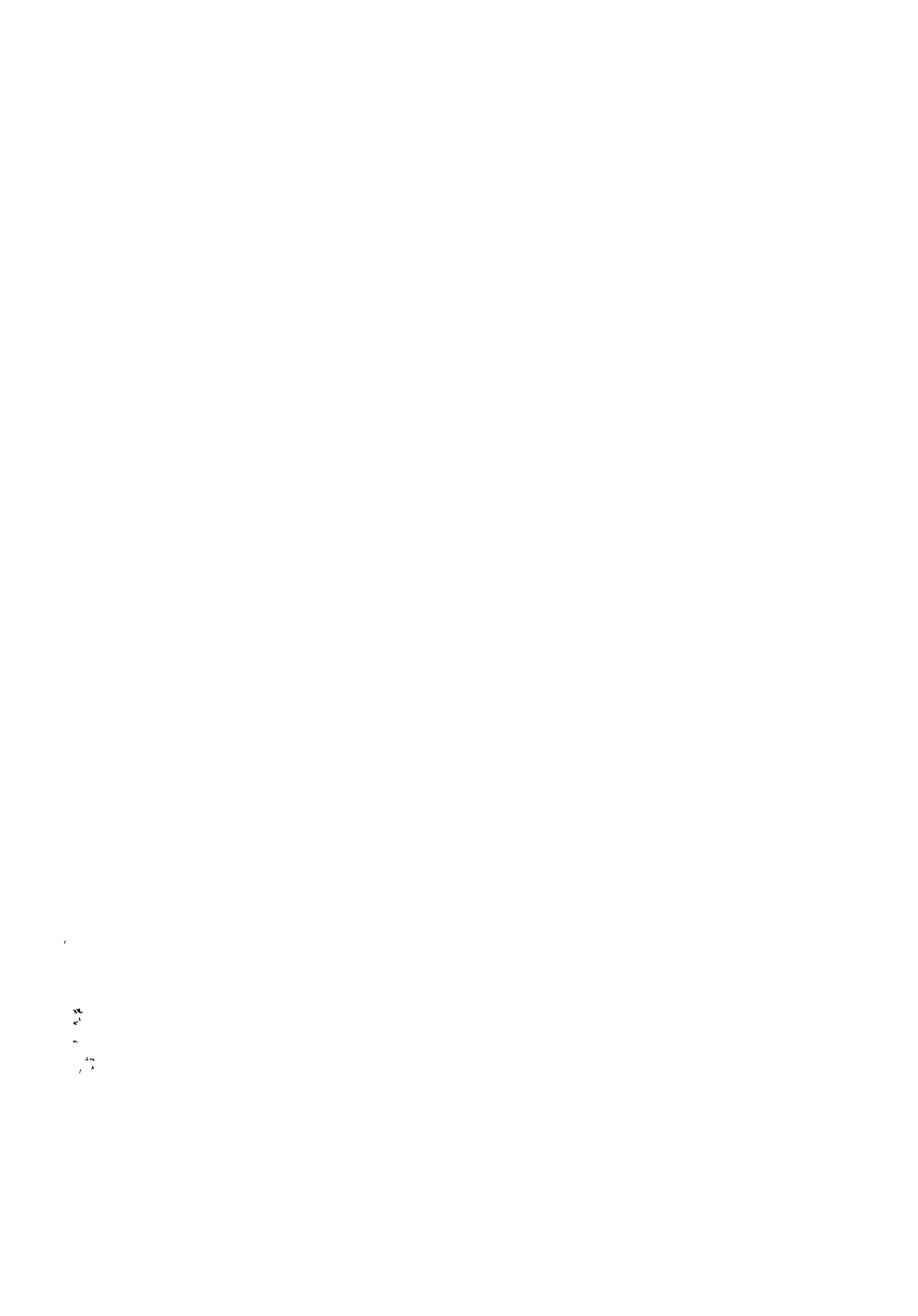
संत-सुधा-सार

सिद्ध सरहपाद

चोला-परिचय

वज्रयानी चौरासी सिद्धो मे सरहपाद को आदिम सिद्ध माना गया है। इन्हे सरहपा भी कहते हैं। इनके दूसरे दो नाम राहुलभद्र और सरोज-वज्र भी है।

पूर्वी प्रदेश के थे किसी 'राज्ञी' नगरी के निवासी। पता नही, इस नाम की नगरी कहाँपर थी।

जन्म सिद्ध सरहपाद का किसी ब्राह्मण वश मे हुआ था। यह अच्छे विद्वान् पंडित थे। नालन्दा मे भी यह कितने ही वर्षोतक रहे थे।

पश्चात् यह विद्वान् बौद्ध भिक्षु कालान्तर मे मत्र-तत्र-प्रधान वज्रयान की ओर आकृष्ट हो गया।

श्रीपर्वत (आन्ध्र देश) पर भी सरहपाद ने वज्रयान तत्र की कठिन साधना की थी।

सरहपाद पालवशीय राजा धर्मपाल के समकालिक थे। धर्मपाल का समय ई० ७६८—८०६ माना जाता है।

डाक्टर विनयतोष भट्टाचार्य ने सरहपाद का काल ६३३ ई० माना है। किन्तु किसी परिपुष्ट प्रमाण से सरहपा का काल यह सिद्ध नही होता।

भोटिया भाषा मे सिद्धाचार्य सरहपा के ३२ ग्रन्थों का अनुवाद खोज मे मिला है।

बानी-परिचय

सरहपादीय दोहा एव **सरहपाद दोहा-कोष** से प्रस्तुत सग्रह मे सरहपाद की सिद्ध-बानी संकलित की गई है।

भाषा सरहपा की मगही अपभ्रंश है, जो निश्चय ही हिन्दी का पूर्व-रूप है। डा० वी० भट्टाचार्य ने इसे बगला का पूर्वरूप सिद्ध करने की असफल चेष्टा की है।

वज्रयान के परवर्ती सिद्धो की बानी में जो प्रायः अति स्वच्छन्दाचार दिखाई देता है वह सरहपाद की बानी मे लगभग नही के जैसा है।

सहज शून्यावस्था से प्राप्त महासुख का, सहज मे स्थित महारस का, बड़ा सुन्दर वर्णन मिलता है।

समरस सहज अवस्था मे स्थित हो जाना ही, सरहपाद के मतानुसार, साधक का परम पुरुषार्थ है। उस अवस्था मे कुछ भी भेद-भाव शेष नही रह जाता।

वर्ण-व्यवस्था का, उच्च-नीच-भाव का तथा धर्म के नाम पर चलनेवाले बाह्याचारो का सरहपाद ने बड़ा जोरदार खण्डन किया है। ब्राह्मणों की ही नही, जैन यतियो की भी खबर ली है, लोमोत्पाटन और पिच्छी-ग्रहण की हँसी उड़ाई है।

सरहपाद के **दोहा-कोष** पर श्री अद्वयवज्र की सस्कृत-पजिका खोज मे मिली है, जो कलकत्ता-यूनिवर्सिटी के जर्नल ऑफ दि डिपार्टमैंट ऑफ लेटर्स (खड २८) मे प्रकाशित हुई है।

प्रसुत सग्रह मे संकलित दोहो का अर्थ उसी सस्कृत-पजिका के अनुसार किया गया है।

आधार

१ महापंडित राहुल साकृत्यायन के "वज्रयान और चौरासी सिद्ध" तथा "प्राचीनतम कवि" शीर्षक निबन्ध

२ कलकत्ता-यूनिवर्सिटी से प्रकाशित "जर्नल ऑफ दि डिपार्टमैंट ऑफ लेटर्स" (खंड २८)

सरहपाद

मन्तह मन्ते स्सन्ति ण होइ।
पड़िल भित्ति कि उट्टिअ होइ॥ १ ॥

तरुफल दरिसणे णउ अग्घाइ।
वेज्ज देक्खि किं रोग पसाइ॥ २ ॥

जाव ण अप्पा जाणिज्जइ ताव ण सिस्स करेइ।
अन्धॅ अन्ध कढ़ाव तिम वेण वि कूव पड़ेइ ॥ ३ ॥

---

१ मत्र-जाप करने से शान्ति मिलने की नही। जो दीवार गिर चुकी वह क्या उठ सकती है?

२ वृक्ष मे लगा हुआ फल देखना उसकी गन्ध लेना नही है। वैद्य को देखनेमात्र से क्या रोग दूर हो जाता है?

३ जबतक अपने आप को नही जान लिया, तबतक किसीको शिष्य नहीं करना चाहिए। यह तो वह बात हुई कि एक अन्धा दूसरे अन्धे को साथ ले चला, और दोनो ही कुए मे गिर पडे।

कबीरने भी यही कहा है—

"अंधै अंधा ठेलिया, दून्यूँ कूप पड़न्त।"

बह्मणेहि म जाणन्त भेउ।
एवइ पढ़िअउ एच्चउ वेउ ॥
मट्टी पाणी कुस लइ पढ़न्त ।
घरहिं वइसी अग्गि हुणन्त ॥
कज्जे विरहइ हुअवह होमे।
अक्खि डहाविअ कडुएँ धुम्मे ॥ ४ ॥

जइ णग्गा विअ होइ मुत्ति ता सुणह सिआलह ।
लोमु पाड़णे अत्थि सिद्धि ता जुवइ णिअम्वह ॥ ५ ॥

---

४ [अद्वयवज्र की संस्कृत टीका के अनुसार] ब्राह्मण भेद-प्रभेद नहीं जानते। पहले जातिभेद ही लेलो। कहते है, ब्राह्मण ब्रह्मा के मुख से उत्पन्न हुए थे। पहले कभी हुए होंगे । किन्तु आज प्रत्यक्ष मे तो वे भी दूसरे लोगो की तरह योनि से ही पैदा होते है। तब फिर ब्राह्मणत्व कैसा ? और यदि संस्कार से ब्राह्मणत्व होता है, तो अंत्यज भी संस्कार लेकर ब्राह्मण हो सकता है। अतः इससे जाति सिद्ध नही होती।

वे चारों वेद पढते है जाति-भेद जानते हुए। वेदो को अंत्यज चाडाल भी तो पढ सकते है।

फिर ये ब्राह्मण हाथ मे कुश-जल लेकर घर बैठे हवन करते है। आग मे घी इत्यादि डाल देने से मोक्ष मिलता हो, तो क्यो नही सबको, अन्त्यजा को भी, डालने देते ? होम करने से मोक्ष मिले या नहीं, कडुवा धुआँ लगने से आँखो को पीडा अवश्य होती है।

५ यदि नग्न हो जाने से मुक्ति मिलती हो, तो स्यार-कुत्तो को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए।

और केश-लुंचन से मुक्ति होती हो, तो नितंबो को मुक्ति मिलनी चाहिए, जिनका लोमोत्पाटन होता रहता है।

पिच्छी गहणे दिट्ठि मोक्ख ता मोरह चमरह ।
उञ्छें भोअणे होइ जाण ता करिह तुरंगह ॥ ६ ॥

आइ ण अन्त ण मज्झ णउ णउ भव णउ णिव्वाण ।
एहु सो परम महासुह णउ पर णउ अप्पाण ॥ ७ ॥

घोरान्धारे चन्दमणि जिम उज्जोअ करेइ ।
परम महासुह एक्कु खणे, दुरिआसेस हरेइ ॥ ८ ॥
जव्वे मण अत्थमण जाइ तणु तुट्टइ वन्धण ।
तव्वे समरस सहजे वज्जइ णउ सुद्द ण वम्हण ॥ ९ ॥

चीअ थिर करि धरहु रे नाइ ।
आन उपाये पार ण जाइ ॥
नौवा ही नौका टानअ गुणे ।
मेलि मेलि सहजे जाउ ण आणे ॥ १० ॥

---

६ यदि पिच्छी ग्रहण करने से मुक्ति मिलती हो, तो मोर को पहले ही मुक्त हो जाना चाहिए ।

यदि उञ्छ-भोजन से मुक्ति होती हो तो हाथी-घोडे मुक्ति के पहले अधिकारी है ।

[उञ्छ का अर्थ है खेत का सीला, अर्थात् अन्न का एक-एक दाना चुनना]

७ (सहज शून्यावस्था का) न तो आदि है, न अन्त और न मध्य । न वहाँ जन्म है, न निर्वाण । यह अलौकिक महासुख है । न इसमें पराये का भान रहता है, न अपना ।

८ जैसे घोर अधकार मे चन्द्रमणि उजेला कर देती है, इसी तरह यह अपूर्व महासुख एक क्षण मे ही सपूर्ण दुश्चरितो का नाश कर देती है ।

९ जिस क्षण यह मन अस्त या विलीन हो जाता है, उस समय सारे बन्धन टूट जाते ह । उस समरस सहज अवस्था मे कुछ भी भेद नहीं रहता—न शूद्र न ब्राह्मण ।

१० हे नाविक, चित्त को स्थिर कर सहज के किनारे अपनी नौका लिये चल, रस्सी से खींचता चल—और कोई दूसरा उपाय नहीं ।

सोक्ख कि लब्भइ झाण पविट्ठो।
किन्तह दीवे किन्तह णिवेज्जं॥
किन्तह किज्जइ मन्तह सेव्वं॥

किन्तह तित्थ तपोवण जाइ।
सोक्ख कि लब्भइ पाणी न्हाइ॥ ११ ॥

परउआर ण कीअऊ अत्थि ण दीअउ दाण।
एहु संसारे कवण फलु वरुच्छड्डुहु अप्पाण॥ १२ ॥

---

११ भला, ध्यान धरने से कही मुक्ति होती है? दीपक दिखाने और नैवेद्य चढाने, तथा मंत्र पाठ से क्या मुक्ति मिल सकती है?
तीर्थ-सेवन और तपोवन में जाने से, और पानी मे नहाने से कहीं मोक्ष-लाभ होता है?

१२ यदि परोपकार नहीं किया और न दान दिया, तो इस संसार मे आने का फल ही क्या, इससे तो अपने आपका उत्सर्ग कर देना ही अच्छा है।

सिद्ध तिल्लोपाद्

चोला-परिचय

सिद्ध तिल्लोपाद् या तिलोपा का भिक्षु-नाम प्रज्ञाभद्र था। कहते हैं, सिद्धचर्या मे तिल कूटने के कारण इनका नाम तिलोपा पड गया था।

गुरु का नाम विजयपाद् था, जो कण्हपा या कृष्णापाद् के शिष्य के शिष्य थे।

तिल्लोपाद् का जन्म-प्रदेश बिहार था। यह ब्राह्मण थे।

समय इनका १० वी शताब्दी माना गया है। इनके शिष्य सिद्धाचार्य नारोपा राजा महीपाल (६७४–१०२६ ई०) के समकालीन थे।

वज्रयानी चौरासी सिद्धों मे यह एक ऊँचे सिद्ध माने जाते हैं।

मगही हिन्दी मे सिद्ध तिल्लोपाद् के ४ ग्रन्थ मिले हैं।

वानी-परिचय

प्रस्तुत-सग्रह ग्रन्थ मे तिल्लोपाद् के **दोहा-कोष** से १२ दोहे सकलित किये गये हैं। **दोहा-कोष** मे कुल ३४ दोहे हैं। भाषा इन दोहो की प्राचीन मगही हिन्दी है।

सहज-साधना को तिल्लोपाद् की वानी मे बडा महत्त्व दिया गया है। कहा है कि चित्त-विशुद्धि का एकमात्र साधन सहज-साधना ही है।

अद्वैतवादियों की भाँति इन्होने भी कहा है—"मै जगत् हूँ, मै बुद्ध हूँ और मै ही निरंजन हूँ।"

तीर्थ-सेवन तथा तपोवन-वास को अन्य सिद्धो और सतो की तरह तिल्लोपाद ने भी मोक्ष-लाभ का साधन नहीं माना है। देव-प्रतिमा के पूजन को भी निरर्थक बतलाया है।

शून्य भावना का आनन्द लेते हुए सिद्ध तिल्लोपाद कहते हैं—

"हउ सुण्ण, जगु सुण्ण तिहुअण सुण्ण।
णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण्ण ॥"

अर्थात्, मैं भी शून्य हूँ, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है। महासुख निर्मल सहज स्वरूप है — न वहाँ पाप है, न पुण्य।

महासिद्ध तिल्लोपाद के दोहा कोष पर संस्कृत में एक पंजिका है, जिसका नाम 'सारार्थ पंजिका' है। इसी टीका की सहायता से संकलित दोहों का अर्थ किया गया है।

आधार

१ महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के "वज्रयान और चौरासी सिद्ध" तथा "प्राचीनतम कवि" शीर्षक निबन्ध

२ कलकत्ता-यूनिवर्सिटी से प्रकाशित "जर्नल ऑफ दि डिपार्टमेंट ऑफ लेटर्स" (खंड २८)

तिल्लोपाद

वढ़ अएँ लोअअ गोअर तत्त परिडत लोअ अगम्म।
जो गुरुपाअ पसएण तॅहि कि चित्त अगम्म ॥ १ ॥

सहजे चित्त विसोहहु चङ्ग।
इह जम्महि सिद्धि मोक्ख भङ्ग ॥ २ ॥

सचल णिचल जो सअलाचर।
सुण णिरंजण म करु विआर ॥ ३ ॥

हॅउ जगु हॅउ बुद्ध हॅउ णिरंजण।
हॅउ अमणसिआर भवभंजण ॥ ४ ॥

---

१ जो तत्त्व, जो सत्य मूढ़जनों के लिए अगोचर है वह परिडतों के लिए भी अगम्य है: (क्योंकि वे शास्त्राध्ययन में उलझे रहते हैं) सत्य का साक्षात्कार तो उसी पुण्यवान् व्यक्ति को होता है, जिसपर कि सद्गुरु प्रसन्न होते हैं।

२ सहज की साधना से चित्त को तू अच्छी तरह विशुद्ध करले। इसी जीवन में तुझे सिद्धि प्राप्त होगी, और मोक्ष भी।

३ जितने सब आचार-व्यवहार हैं, वे या तो सचल हैं या निश्चल। किन्तु शून्य निरंजन सकल विकल्पों से रहित है। उसका विचार नहीं करना चाहिए, विचार से वह परे है।

४ मैं जगत हूँ, मैं बुद्ध हूँ, और मैं ही निरंजन हूँ। मैं ही मानसिक अकर्त्ता हूँ, और भव का भंजन करनेवाला भी मैं ही हूँ।

तित्थ तपोवण म करहु सेवा।
देह सुचिहि ण स्सन्ति पावा ॥ ५ ॥

देव म पूजहु तित्थ ण जावा।
देव पूज़ाहि ण मोक्ख पावा ॥ ६ ॥

जिम विस भक्खइ विसहि् पलुत्ता।
तिम भव भुञ्जइ भवहि् ण जुत्ता ॥ ७ ॥

परम आणन्द भेउ जो जाणइ।
खणहि् सोवि सहज बुज्झइ ॥ ८ ॥

गुण दोस रहिअ एहु परमत्थ।
सह संवेअण केवि णत्थ ॥ ९ ॥

चित्ताचित्त विवज्जहु ण णित्त।
सहज सरूएँ करहु रे थित्त ॥ १० ॥

---

५ न तीर्थ-सेवन करो, न तपोवन को जाओ। तीर्थों मे स्नानादि करने से मोक्ष-लाभ होने का नही।

६ न देव-प्रतिमा की पूजा करो, न तीर्थ यात्रा; देवाराधन से तुम्हे मोक्ष मिलने का नही।

७ जिस प्रकार विष का शोधक विष खाकर भी मरता नही है, उसी प्रकार योगी सासारिक विषयों को भोगता हुआ भी संसार के बन्धनो मे नही पड़ता।

८ अपूर्व आनन्द के भेद को जो जानता है, उसे सहज का ज्ञान एक क्षण मे प्राप्त हो जाता है।

९ परमार्थ अर्थात् परमसत्य यही है, जिसमे न गुण है, न दोष। स्वसंबंध कुछ भी नहीं है, न गुण, न दोष।

१० चित्त और अचित्त को सदा के लिए त्यागदे, और सहज स्वरूप में स्थित होजा।

आवइ जाइ कहवि ण णाइ।
गुरु उपएसे हिअहि समाइ ॥ ११ ॥

हउ सुण जुग सुण तिहुअण सुण।
णिम्मल सहजे ण पाप ण पुण ॥ १२ ॥

---

११ (वह परम तत्त्व) न कहीं से आता है, न कहीं जाता है, न किसी स्थान पर ठहरता है। तथापि गुरु के उपदेश से वह हृदय में प्रविष्ट होता है।

१२ मैं भी शून्य हूँ, जगत् भी शून्य है, त्रिभुवन भी शून्य है। महासुख निर्मल सहजस्वरूप है, न वहाँ पाप है, न पुण्य।

मुनि देवसेन

चोला-परिचय

मुनि देवसेन का इतिवृत्त अज्ञात-सा ही है। इतना ही कहा जा सकता है कि यह एक उच्चकोटि के जैन-संत थे। 'सावय धम्म दोहा' का रचयिता कौन था यह प्रश्न विवादास्पद था। लक्ष्मीचन्द्र या लक्ष्मीधर को इस ग्रन्थ का कर्त्ता मान लिया गया था, और कुछ विद्वानों ने सुप्रसिद्ध जैन मुनि योगीन्द्र-देव को इसका रचयिता माना था। विद्वद्वर हीरालाल जैन ने अपनी शोध के परिणामस्वरूप 'सावय धम्म दोहा' का कर्त्ता मुनि देवसेन को सिद्ध किया है। उनका निर्णय अनेक दृष्टियों से प्रामाणिक है। योगीन्द्रदेव की रचनाओं और **सावय धम्म दोहा** मे, भाषा और विषय दोनो ही दृष्टियो मे अतर पाया जाता है, जबकि देवसेन-रचित **भाव संग्रह** तथा **सावय धम्म दोहा** मे विशेष सादृश्यताएँ मिली है।

मुनि देवसेन मालवा प्रदेश, के निवासी थे, और १० वीं शताब्दी मे विद्यमान थे। **दर्शन सार** ग्रन्थ की रचना देवसेन ने धारा नगरी के पार्श्वनाथ-मन्दिर मे बैठकर सवत् ९९० मे की थी।

बानी-परिचय

प्रस्तुत ग्रन्थ मे हमने 'सावय धम्म दोहा' से केवल ११ दोहे सकलित किये हैं। इस ग्रन्थ का विषय श्रावक का धर्म अथवा आचार है। सामान्य गृहस्थो के लिए **सावय धम्म दोहा** की रचना की गई है। श्रावक का भी जीवन-ध्येय विषय-भोगो का सेवन नहीं है, किन्तु आत्मदर्शन से उपलब्ध आनन्द ही उसका साध्य है, जिसके साधन है सत्य, अहिसा, शील, सदाचार तथा इन्द्रियजन्य सुखो से उपराम।

श्रावक-धर्म, मुनि देवसेन के कथानुसार, सब के लिए है, उसका साधक चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, अथवा जैन हो या अजैन। एक दोहा है—

"एहु धम्म जो आयरइ बभणु सुद्दु वि कोइ ।
सो सावउ कि सावयह अएणु कि सिर मणि होइ ॥"

अर्थात् इस धर्म का जो भी आचरण करता है, फिर चाहे ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, कोई भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहता है ?

अवहट्ठा याने अपभ्रष्ट भाषा का यह अति प्राचीन ग्रन्थ है। इसका अच्छा प्रचार और आदर था। लक्ष्मीचन्द्र ने **'सावय धम्म'** पर एक पंजिका और मुनि प्रभातचन्द्र ने 'तत्त्वदीपिका' नाम की वृत्ति लिखी है।

आधार

मुनि देवसेन और उनकी सरस बानी का यह संक्षिप्त परिचय **'सावय-धम्म दोहा'** के विद्वान् संपादक श्री हीरालाल जैन की शोधपूर्ण भूमिका के आधार पर लिखा गया है

सावय धम्म दोहा कारजा जैन पब्लीकेशन सोसायटी, कारजा (बरार) से प्रकाशित हुआ है

मुनि देवसेन

एहु धम्मु जो आयरइ बभणु सुदु वि कोइ ।
सो सावउ किं सावयह अण्णु कि सिरि मणि होइ ॥ १ ॥

धम्मु करउं जइ होइ धणु इहु दुव्वयणु म बोल्लि ।
हक्कारउ जमभडतणउ आवइ अज्जु कि कल्लि ॥ २ ॥

ज दिज्जइ त पावियइ एउ ण वयणु विसुद्धु ।
गाइ पइण्णइ खडभुसइ किं ण पयच्छइ दुद्धु ॥ ३ ॥

काइं बहुत्तइं जपयइं ज अप्पहु पडिकूलु ।
काइं मि परहुण त करहि एहु जि धम्हु मसूलु ॥ ४ ॥

---

१ इस धर्म का जो भी आचारण करता है, फिर चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे शूद्र, कोई भी हो, वही श्रावक है। श्रावक के सिर पर क्या कोई मणि चिपकी रहती है ?

२ मत ऐसा दुर्वचन कह कि यदि धन प्राप्त हो जाय तो मै धर्म करूँ। कौन जाने यमदूत आज बुलाने आजाय या कल।

३ यह कहना सही नही है कि जो दिया जाता है वही मिलता है। गाय को घास भूसा खिलाते हैं, तो क्या वह दूध नही देती ?

४ अधिक क्या कहे, जो अपने प्रतिकूल हो उसे दूसरो के प्रति कभी न करो, धर्म का यही मूल है।

धम्मु विसुद्धउ त जि पर ज किज्जइ काएण ।
अहवा तं धणु उज्जलउ जं आवइ णाएण ॥ ५ ॥

फरसिंदिउ मा लालि जिय लालिउ एहुं जि सत्तु ।
करिणिहिं लग्गउ हत्थिमउ णिमलंकुसदुहु पत्तु ॥ ६ ॥

जिब्भिदिउ जिय सवरहि सरस ण भल्ला भक्ख ।
गालइं मच्छु चडप्फडिवि मुउ विसहइ थल दुक्ख ॥ ७ ॥

घाणिंदिय वड वसि करहि रक्खहु विसयकसाउ ।
गंधहँ लपडु सिलिमुहु विहुड कंजइँ विच्छाउ ॥ ८ ॥

रूवहु उप्परि रइ म करि णयण णिवारहि जत ।
रूवासत्त पयगडा पेक्खहि दीखि पडंत ॥ ९ ॥

मणगच्छह मणमोहणहं जिय गेयह अहिलासु ।
गेयरसे हियकरणडा पत्ता हरिण विणाहु ॥ १० ॥

---

५ धर्म विशुद्ध वही है, जो अपनी काया से किया जाता है और धन भी वही उज्जवल है, जो न्याय से प्राप्त होता है।

६ हे जीव, स्पर्शेन्द्रिय का लालन मत कर। लालन करने से यह शत्रु बन जाता है। हथिनी के स्पर्श से हाथी साँकल और अकुश के वश मे पडा है।

७ हे जीव, जिह्वेन्द्रिय का सवरण कर। स्वादिष्ट भोजन अच्छा नही होता। गल से मछली स्थल का दुःख सहती और तडप-तडपकर मरती है।

८ अरे मूढ, घ्राणेन्द्रिय को वश मे रख और विषय-कषाय से बच। गध का लोभी भ्रमर कमल-कोष के अन्दर मूर्च्छित पडा है।

९ रूप से प्रीति मत कर। रूप पर खिचते हुए नेत्रों को रोकले। रूपासक्त पतिगे को तू दीपक पर पडते हुए देख।

१० हे जीव, अच्छे मनमोहक गीत सुनने की लालसा न कर। देख, कर्ण-मधुर संगीत-रस से हरिण का विनाश हुआ।

एक्कहिं इंदियमोक्कलउ पावइ दुक्खसयाइं ।
जसु पुणु पंच वि मोक्कला तसु पुच्छिज्जइ काइं ॥ ११ ॥

---

११ जब एक ही इन्द्रिय के स्वच्छन्द विचरण से जीव सैकड़ों दुःख पाता है. तब जिसकी पाँचों इन्द्रियाँ स्वच्छन्द हैं, उसका तो फिर पूछना ही क्या ।

मुनि रामसिंह

चोला-परिचय

इतिवृत्त इतना ही केवल कि यह एक जैन मुनि थे, और सुप्रसिद्ध प्राकृत-वैयाकरण हेमचन्द्राचार्य के यह पूर्ववर्ती थे। अर्थात्, ११ वीं शताब्दी में यह विद्यमान थे।

'करहा' अर्थात् ऊँट शब्द का अनेक बार प्रयोग इनके दोहों में मिला है, इससे अनुमान कर लिया गया है कि मुनि रामसिंह कदाचित् राजपूताने के निवासी रहे होंगे। पर इस अनुमान के पीछे कोई और पुष्ट प्रमाण नहीं।

'पाहुड़-दोहा' की एक हस्तलिखित प्रति के अंत में 'योगीन्द्रदेव' नाम भी आया है, और अनुमान किया गया था कि **'योगसार'** के रचयिता योगीन्द्रदेव का परंपरागत नाम रामसिंह रहा हो। पर इसका भी कोई प्रबल प्रमाण नहीं।

अनुमान है कि मुनि रामसिंह 'सिंह' नामक संघ के अनुयायी रहे होंगे, जिसे आचार्य अर्हद् बलि ने स्थापित किया था।

'पाहुड़-दोहा' से पता चलता है कि मुनि रामसिंह स्वतंत्र प्रकृति के एक ऊँचे रहस्यवेत्ता संत थे।

बानी-परिचय

'पाहुड' का संस्कृत रूपान्तर 'प्राभृत' किया गया है, जिसका अर्थ 'उपहार' होता है, अतः **'पाहुड़-दोहा'** का अर्थ हुआ दोहों का उपहार। कुन्दकुन्दाचार्य के भी अधिकांश ग्रन्थ 'पाहुड' कहलाते हैं।

भाषा इनकी 'अवहट्ठा' अर्थात् अपभ्रंश है। हिन्दी का यह एक पूर्वरूप है।

मुनि रामसिंह की पाहुड-बानी में उच्चकोटि का अनुभवगम्य अध्यात्म-रस मिलता है। कई दोहों को पढ़ते हैं तो ऐसा लगता है मानो उपनिषदों की सूक्तियाँ पढ़ रहे हैं।

स्वानुभवशून्य कोरे ज्ञानवाद और निस्सार क्रिया-काण्ड को पाहुड-बानी में कुछ भी महत्त्व नहीं दिया गया है।

धर्म के नाम पर जो अनेक बाह्याडंबर और पाखंड प्रचलित हुए उन सबका इस जैन संत ने प्रबल खंडन किया है। कहता है—"घट के अंतर में बसनेवाले देव का दर्शन करो। क्यों व्यर्थ तीर्थों में भटकते हो? क्यों पत्थर के बड़े-बड़े मन्दिर बनवाते हो?"

और—"यह देह ही देवालय है इसमें वह परमदेव अधिष्ठित है, जिसकी अनेक शक्तियाँ हैं। उसीकी आराधना करो।"

पाहुड-बानी में योग-साधन की निर्मल झाँकी मिलती है, लगभग वैसी ही, जैसी कि ब्राह्मण एवं बौद्ध-काव्यों में।

उपमाएँ अनूठी हैं। शैली सरल और सरस है। काव्य-रस अनुभव-गम्य है, जो कोरे शब्द-पाण्डित्य में कहीं खोजने पर भी नहीं मिलता।

सांप्रदायिक संकीर्णता तथा भेद-भावना को मुनि रामसिंह ने अपनी बानी में कहीं भी स्थान नहीं दिया। तभी तो यह स्वानुभवी संत इस निर्मल पद को गा सका—

"कासु समाहि करउ को अंचउ।
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं॥
हल सहि कलह केण सम्माणउ।
जहिं जहिं जोवउं तहिं अप्पाणउं॥"

अर्थात्, समाधि किसकी लगाऊँ? पूजूँ किसे? छूत-अछूत कहकर किसे छोड़ूँ? भला, किसके साथ कलह करूँ? जहाँ भी देखता हूँ, सर्वत्र अपनी ही आत्मा दिखाई देती है।

आधार

यह संक्षिप्त परिचय **'पाहुड़-दोहा'** के विद्वान् संपादक श्री हीरालाल जैन एम० ए० लिखित शोधपूर्ण भूमिका के आधार पर लिखा गया है।

यह ग्रन्थ कारंजा जैन पब्लीकेशन सोसायटी, कारंजा (बरार) से प्रकाशित हुआ है।

मुनि रामसिंह

धंधइ पडियउ सयलु जगु कम्मइं करइ अयाणु ।
मोक्खह कारणु एक्कु खणु ण वि चिंतइ अप्पाणु ॥१॥

ज दुक्खु वि तं सुक्खु किउ जं सुहु तं पि य दुक्खु ।
पइं जिय मोहहिं वसि गयइं तेण ण पायउ मुक्खु ॥२॥

मूढा सयलु वि कारिमउ मं फुडु तुहु तुस कंडि ।
सिवपइ णिम्मलि करहि रइ घरु परियणु लहु छंडि ॥३॥

सप्पिं मुक्की कंचुलिय जं विसु तं ण मुएइ ।
भोयहं भाउ ण परिहरइ लिंगग्गहणु करेइ ॥४॥

---

१ सारा जगत् धंधे में फँसा पड़ा है। अज्ञानवश कर्म करता है, किन्तु एक क्षण भी मोक्ष के लिए वह आत्म-चिन्तन नहीं करता।

२ जीव, मोह-वशात् दुःख को सुख, और सुख को दुःख मान बैठा है। यही कारण है कि तुझे मोक्ष-लाभ नहीं हो रहा।

३ अरे मूढ, यह सारा ही कर्म-जजाल है। मत कूट तू भूसी को। गृह और परिजनों को तुरत त्यागकर तू निर्मल शिव-पद में अनुरक्त होजा।

४ साँप केंचुल तो त्याग देता है, किन्तु विष को नहीं त्यागता। ऐसे ही मनुष्य मुनि का वेश तो धारण कर लेता है, किन्तु वह भोगों की भावना को नहीं छोड़ता।

णु वि तुहुं कारणु कज्जु ण वि णवि सामिउ ण वि भिच्चु ।
सूरउ कायरु जीव ण वि ण वि उत्तमु ण वि णिच्चु ॥५॥

उपलाणहिं जोइय करहुलउ दावणु छोडहि जिम चरइ ।
जसु अखडणि रामइं गयउ मणु सो किम बुहु जगि रइ करइ ॥६॥

ढिल्लउ होहि म इंदियह पचह विण्णि णिवारि ।
एक्क णिवारहि जीहडिय अण्ण पराइय णारि ॥७॥

मणु जाणइ उवएसडउ जहिं सोवेइ अचितु ।
अचित्तहु चित्त जो मेलवइ सोइं पुणु होइ णिचिंतु ॥८॥

मणु मिलियउ परमेसरहो परमेसरु जि मणस्स ।
विण्णि वि समरसि हुइ रहिय पुज्ज चडावउं कस्स ॥९॥

देहादेवलि जो वसइं सत्तिहिं सहियउ देउ ।
को तहिं जोइय सत्तिसिउ सिग्घु गवेसहि भेउ ॥१०॥

---

५ तू न तो कारण है न कार्य, तू न स्वामी है, न सेवक न शूरवीर है, न कायर । हे जीव, तू न उत्तम है, न नीच ।

६ जैसे हस्ति-कुमार कमलों को देखते ही बन्धन को तोड-ताडकर विचरने लगते हैं, वैसे ही जिसका मन अक्षयिनी रमा अर्थात् मुक्ति-रमणी–पर चला गया वह जगत के प्रति फिर कैसे प्रीति कर सकता है ?

७ इन्द्रियों के विषय में तू ढील मत दे । पाँच में से इन दो का तो अवश्य निवारण कर—एक तो जिह्वा, और दूसरी परस्त्री ।

८ मन तभी उपदेश को समझता है, जब वह निश्चिन्त होकर सो जाता है । और निश्चिन्त वही होता है, जो चित्त को अचित् से अलग कर लेता है ।

९ मन मिल गया है परमेश्वर से और परमेश्वर मिल गया है मन से, दोनों एकाकार हो गये हैं । अब पूजा मैं किसे अर्पण करूँ ?

१० हे योगी, इस देह के देवालय में शक्तियों के साथ जो देव रह रहा है, वह शक्तियुक्त शिव कौन है ? शीघ्र खोज इस भेद को ।

सइं मिलिया सइं विहडिया जोइय कम्म णि भंति ।
तरलमहावहिं पथियहिं अण्णु कि गाम वसंति ॥११॥

ताम कुतित्थइं परिभमइं धुत्तिम ताम करंति ।
गुरुहुं पसाएं जाम ण वि देहह देउ मुणंति ॥१२॥

पंडिय पंडिय पंडिया कणु छंडिवि तुस कंडिया ।
अत्थे गंथे तुट्ठो सि परमत्थु ण जाणहि मूढो सि ॥१३॥

णाण तिडिक्की सिक्खि वढ कि पढियइं बहुएण ।
जा सुधुक्की णिड्डहइ पुण्णु वि पाउ खणेण ॥१४॥

तूसि म रूसि म कोहु करि कोहे णासइ धम्मु ।
धम्मि नट्ठिं णरयगइ अह गउ माणुसजम्मु ॥१५॥
बहुयइं पढियइं मूढ पर तालू सुक्कइ जेण ।
एक्कु जि अक्खरु त पढहु सिवपुरि गम्मइ जेण ॥१६॥

---

११ हे योगी, कर्म स्वयं मिलते हैं, और स्वयं विलग हो जाते हैं, इसमें कोई भ्रांति नहीं । चंचल प्रकृति के पथिकों से और क्या गाँव बसते हैं !

१२ कुतीर्थों का परिभ्रमण तभीतक किया जाता है, और धूर्तता भी तभीतक चलती है, जबतक कि गुरु के अनुग्रह से देह में स्थित देव का परिज्ञान नहीं हो जाता ।

१३ पण्डित-श्रेष्ठ, कणों को छोडकर तूने भूसी को ही कूटा है । ग्रन्थ और उसके अर्थ में तुझे संतोष है, किन्तु रे मूढ, परमार्थ से तेरा परिचय नहीं ।

१४ मूर्ख, बहुत पढ लिया तो क्या ? ज्ञान की चिनगारी को पढ, जो प्रज्वलित होते ही पुण्य और पाप को एक क्षण में भस्म कर देती है ।

१५ न त्वेप कर न रोप कर, न क्रोध कर । क्रोध धर्म को नष्ट कर देता है । और धर्म नष्ट होने से नरक-वास । मनुष्य-जन्म ही नष्ट हो गया ।

१६ इतना अधिक पढा कि तालू सूख गया, पर रहा तू मूर्ख ही । उस एक ही अक्षर को पढ कि जिससे तू शिवपुरी जा सके ।

अन्तो णत्थि सुईणं कालो थाओ वयं च दुम्मेहा ।
तं णवर सिक्खियव्वं जिं जरमरणक्खय कुणहि ॥१७॥

हउं सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसंगु ।
एकहिं अंगि वसंतयहं मिलिउ ण अंगहिं अंगु ॥१८॥

जीव वहंतिं णरयगइ अभयपदाणे सग्गु ।
बे पह जव ला दरिसियइं जहिं भावइ तहिं लग्गु ॥१९॥

हलि सहि काइं करइ सु दप्पणु ।
जहिं पडिबिंबु ण दीसइ अप्पणु ॥
धंधवालु मो जगु पडिहासइ ।
घरि अच्छंतु ण घरवइ दीसइ ॥२०॥

भिण्णउ जेहिं ण जाणियउ णियदेहहं परमत्थु ।
सो अंधउ अवरहं अंधयहं किम दरिसावइ पंथु ॥२१॥

---

१७ श्रुतियों का अन्त नहीं, काल थोड़ा, और हम दुर्बुद्धि । अतः तू केवल वही सीख, जिससे कि जरा और मरण का क्षय कर सके ।

१८ मैं सगुण हूँ, और प्रियतम मेरा निर्गुण, निर्लक्षण और निस्संग । एक ही अंग में, एक ही कोठे में, हम दोनों रहते हैं, फिर भी अंग से अंग नहीं मिल पाया ।

१९ प्राणियों के वध से नरक और अभय-दान से स्वर्ग मिलता है । ये दो पथ हैं, चाहे जिसपर चला जा ।

२० अयि सखी, उस दर्पण को लेकर क्या करूँ, जिसमें अपना प्रतिबिम्ब न दीखे ? लगता है कि यह जगत् मुझे लज्जित कर रहा है । गृह में रहते हुए भी गृहस्वामी का दर्शन नहीं होता ।

२१ परमतत्त्व में जिसने अपनी देह को पृथक् नहीं जाना, वह अंधा दूसरे अंधों को कैसे रास्ता दिखा सकता है ?

मुंडिय मुंडिय मुंडिया। सिरु मुंडिउ चित्तु ण मुंडिया।
चित्तहं मुंडणु जिं कियउ। संसारहं खंडणु तिं कियउ ॥२२॥

पुण्णेण होइ विहओ विहवेण मओ मएण मइमोहो।
मइमोहेण य णरयं त पुण्णं अम्ह मा होउ ॥२३॥

कासु समाहि करउं को अंचउं।
छोपु अछोपु भणिवि को वंचउं॥

हल सहि कलह केण सम्माणउं।
जहिं जहिं जोवउं तहिं अप्पाणउं ॥२४॥

दया विहीणउ धम्मडा णाणिय कह विण जोइ।
बहुएं सलिल विरोलियइं करु चोपडा ण होइ ॥२५॥

मुंडु मुंडाइवि सिक्ख धरि धम्मह वद्धी आस।
णवरि कुडुंबउ मेलियउ छुडु मिल्लिया परास ॥२६॥

---

२२ हे मुंडितों में श्रेष्ठ! सिर जो अपना तूने मुँडा लिया, पर चित्त को नही मुँडाया। संसार का खण्डन चित्त को मुँडानेवाला ही कर सकता है।

२३ छोड़ा ऐसा पुण्य जिससे विभव प्राप्त होता हो, और विभव से मद, फिर मद से मति-मोह और मति-मोह से नरक।

२४ समाधि किसकी लगाऊँ? पूजूँ किसे? छूत-अछूत कहकर किसे छोड़ूँ? भला, किसके साथ कलह करूँ? जहाँ भी देखता हूँ, सर्वत्र अपनी ही आत्मा दिखाई देती है।

२५ हे ज्ञानवान् योगी, बिना दया के धर्म हो नहीं सकता। कितना ही पानी बिलोया जाये, उससे हाथ चिकना होने का नहीं।

२६ मूँड मुँडाकर शिक्षा ग्रहण की और धर्म की आशा बढ़ी। किन्तु कुटुम्ब के त्याग का तभी कोई अर्थ है, जब (यति) दूसरे की आशा छोड़दे।

अम्मिय इहु मणु हत्थिया विंझह जंतउ वारि।
तं भंजेसइ सीलवणु पुणु पडिसइ संसारि ॥२७॥

देवलि पाहणु तित्थि जलु पुत्थइ सव्वइं कव्वु।
वत्थु जु दीसइ कुसुमियउ इंधणु होसइ सव्वु ॥२८॥

तित्थइं तित्थ भमंतयहं कि णोहा फल हूव।
बाहिरु सुद्धउ पाणियह अब्भितरु किम हूव ॥२९॥

तित्थइं तित्थ भमेहि वढ धोयउ चम्मु जलेण।
एहु मणु किम धोएसि तुहु मइलउ पावमलेण ॥३०॥

जोइय हियडह जासु ण वि इक्कु ण णिवसइ देउ।
जम्मणमरणविवज्जियउ किम पावइ परलोउ ॥३१॥

मूढा जोवइ देवलइं लोयहिं जाइं कियाइं।
देह ण पिच्छइ अप्पणिय जहिं सिउ सतु ठियाइं ॥३२॥

---

२७ अरे, इस मनरूपी हाथी को विन्ध्य (पर्वत) की ओर जाने से रोक। वह शील के वन को उजाड़ देगा, और फिर संसार में फँसेगा।

२८ देवालय में पत्थर है, तीर्थ में जल, और पुस्तकों में काव्य जो भी वस्तुएँ फूली-फली दीख रही है, वह सब ईंधन हो जानेवाली है।

२९ अनेक तीर्थों में भ्रमण करनेवालों को कुछ भी फल नहीं मिला। बाहर तो पानी डालकर शुद्ध हो गया, पर अभ्यंतर? वह तो वैसा ही रहा।

३० मूर्ख, तूने एक तीर्थ से दूसरे तीर्थ का भ्रमण किया, और चमड़े को जल से धोता रहा, पर इस पाप से मलिन मन को तू कैसे धोयेगा?

३१ योगी, जिसके हृदय में जन्म-मृत्यु-रहित देव निवास नहीं करता, उसे परलोक कैसे प्राप्त हो सकता है?

३२ मूर्ख, उन देवालयों का तो तू दर्शन करने जाता है, जिनका मनुष्योंने निर्माण किया है, किन्तु अपनी काया को नहीं देखता, जहाँ सदा ही शिव विराजमान हैं।

वामिय किय अरु दाहिणय मज्झइं वहइ णिराम।
तहिं गामडा जु जोगवइ अवर वसावइ गाम ॥३३॥

अप्पापरहं ण मेलयउ आवागमणु ण भग्गु।
तुस कंडंतह कालु गउ तंदुलु हत्थि ण लग्गु ॥३४॥

वेपंथेहिं ण गम्मइ वेमुह सूई ण सिज्जए कंथा।
विण्णि ण हुंति अयाणा इंदियसोक्खं च मोक्खं च ॥३५॥

---

३३ बाईं ओर ग्राम बसाया, और दाहिनी ओर, किन्तु मध्य को तूने सूना ही रखा योगी, वहाँ भी एक ग्राम बसा।

[अर्थात, इडा और पिंगला नाडियों के बीच सुषुम्ना में अपने चित्त का निरोध कर।]

३४ न आत्मा और परमतत्त्व का मिलन हुआ, न आवागमन का भंग। भूसी कूटते-कूटते ही काल चला गया, चावल एक भी हाथ न लगा।

३५ एकसाथ दो मार्गों से जाना नहीं बनता। दो मुँहवाली सुई से कथा नहीं सिया जाता। मूर्ख, एकसाथ दो-दो बातें नहीं सधतीं—इन्द्रिय-सुख भी और मोक्ष भी।

को सबसे प्रचीन माना है। फिर भी भाषा की दृष्टि से इसे दसवीं या ग्यारहवीं शती की रचना मानने में संदेह के लिए कुछ-न-कुछ स्थान तो रहता ही है। वह काल अपभ्रंश भाषाओं का था। गोरख-बानी में जिन अनेक शब्दों के प्रयोग हुए हैं, वे परवर्ती काल के हैं।

समाधान यों हो सकता है कि गोरखनाथ की मूल बानी का शताब्दियों से घिसते-घिसते, काफी रूपान्तर तो हो गया फिर भी उसकी मौलिकता का सर्वथा लोप नहीं हो पाया। जीर्ण हो जाने पर भी अनेक परिवर्तनों के बाद भी रंग सबदियों पर का आज भी वैसे-का-वैसा ही है।

योगमार्ग के गहनतम सिद्धान्तों एवं क्रियाओं का विशद निरूपण लोक-भाषा में गोरखनाथ ने जिस शैली में किया है, वह उनकी अपनी मौलिक शैली है। गोरख की बानी में हम स्वानुभूति की ऊँची दृढ़ता, आध्यात्मिक साधना की पारदर्शी निर्मलता, और थोड़े में अधिक कह डालने की तीव्र अभिव्यंजना-शक्ति पाते हैं।

गोरखनाथ की लिखी हुई कही जानेवाली संस्कृत की भी २८ पुस्तकों की सूची आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने अपने **'नाथ-संप्रदाय'** नामक ग्रन्थ में दी है। स्पष्ट ही अधिकांश पुस्तकें, जो गोरखनाथ के नाम से प्रचलित हैं गोरखनाथ-रचित नहीं हैं। **गोरक्षनाथ-सिद्धान्त-संग्रह** नाथ-सम्प्रदाय के योग-मार्ग पर संस्कृत का एक अत्यंत प्रामाणिक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है, जिसका संपादन महामहोपाध्याय पं० गोपीनाथ कविराज ने किया है।

प्रस्तुत संग्रह-ग्रन्थ में संकलित सबदियों तथा पदों के कठिन और गूढ़ शब्दों का अर्थ हमने विद्वद्वर डॉ० बड़थ्वाल द्वारा संपादित 'गोरखबानी' की संपूर्ण सहायता से किया है। यदि यह अत्यंत शोधपूर्ण ग्रन्थ हमारे सामने न होता, तो बानी में आये हुए अनेक गूढ़ एवं रहस्यात्मक पदों का अर्थ लगाना हमारे लिए संभव नहीं था।

आधार

१ **गोरख-बानी**, डॉ० पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल
२ **नाथ-संप्रदाय**, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी

गोरखनाथ

बसती न सुन्यं सुन्य न बसती अगम अगोचर ऐसा।
गगन सिषर महिं बालक बोलै ताका नाँव धरहुगे कैसा ॥ १॥

हसिबा खेलिबा धरिबा ध्यान। अहनिसि कथिबा ब्रह्म गियानं।
हसै षेलै न करै मन भंग। ते निहचल सदा नाथ कै संग ॥ २॥

महंमद महंमद न करि काजी, महंमद का विषम बिचारं।
महंमद हाथि करद जे होती लोहै घडी न सारं ॥ ३॥

सबदै मारी सबदै जिलाई ऐसा महमद पीरं।
ताकै भरमि न भूलौ काजी सो बल नहीं सरीरं ॥ ४॥

---

१ बसती=बसा हुआ अर्थात् 'है'। सुन्य=शून्य। गगन-सिषर=शून्य, ब्रह्मरन्ध्र से आशय है। बालक=परमवस्तु अर्थात् विशुद्ध आत्मा।

२ नाथ=ब्रह्म से तात्पर्य है।

३ महंमद=मोहम्मद पैगंबर। विषम=बहुत कठिन, अगम्य। हाथि=हाथ में। करद=छुरी (जिबह करने के लिए)। सार=इस्पात।
विशेष—मोहम्मद की छुरी थी वस्तुतः शब्द की छुरी, जिससे वह वासना को जिबह करते थे।

४ सबदै जिलाई=शब्द से जिज्ञासु की विषय-वासना को नष्ट कर देते थे, और शब्द से ही तत्त्वज्ञान का अमृत पिलाते थे।
सो बल नहीं सरीर=वह शक्ति आध्यात्मिक थी, भौतिक नहीं।

कोई बादी कोई विवादी जोगी कौं बाद न करनां।
अठसठि तीरथ समदि समावै यूँ जोगी कौं गुरुमुषि जरनां ॥५॥

अहर्निसि मन लै उनमन रहै, गम की छांड़ि अग की कहै।
छाड़ै आसा रहै निरास, कहै ब्रह्मा हूँ ताका दास ॥६॥

अरधै जाता उरधै धरै, काम दग्ध जे जोगी करै।
तजे अल्यगन काटै माया, ताका बिस्नु पषालै पाया ॥७॥

अजपा जपै सुनि मन धरै, पांचों इन्द्री निग्रह करै।
ब्रह्म-अगनि मैं होमै काया, तास महादेव बंदै पाया ॥८॥

मरौ वे जोगी मरौ, मरौ मरन है मीठा।
तिस मरणी मरौ, जिस मरणी गोरष मरि दीठा ॥९॥

हबकि न बोलिबा, ठबकि न चालिबा, धीरै धरिबा पाव।
गरब न करिबा सहजै रहिबा भणत गोरष रावं ॥१०॥

---

५ बाद=शास्त्रार्थ। अठसठि=अडसठ, एक मानी हुई सख्या। समदि=समुद्र। जरना=पचाना, आत्मसात् करना।

६ उनमन=उन्मनावस्था, मन की वृत्तियों क अंतर्मुख कर लेने की स्थिति। अग=अगम्य अध्यात्म का देश।

७ अरधै.. धरै=नीचे को पतित होने वाले वीर्य को जो ऊपर की ओर खींचता है। अल्यगन=आलिंगन। बिस्नु=विष्णु। पषालै पाया=पैर पखारता है।

८ सुनि=शून्य, ब्रह्म-रन्ध्र।

९ वे=हे। दीठा=देखा आत्म-साक्षात्कार किया। मरणी=जीवन्मुक्ति से आशय है।

१० हबकि=फट से बिना विचारे। ठबकि=जोर से पटक-पटककर। भणत=कहता है। रावं=नाथ।

स्वामी वनषडि जाउं तो षुध्या व्यापै, नग्री जाउं तो माया।
भरिभरि षाउं त बिन्द बियापै, क्यों सीझ ते जल व्यंद की काया।।११।।

धाये न षाइबा, भूपे न मरिबा, अहनिसि लेबा ब्रह्म अगनि का भेवं।
हठ न करिबा पड़्या न रहिबा यूं बोल्या गोरषदेव ।।१२।।

अति अहार यंद्री बल करै. नासै ग्यांन मैथुन चित धरै।
व्यापै न्यंद्रा झंपै काल, ताके हिरदै सदा जंजाल ।।१३।।

पावड़ियां पग फिलसै अवधू लोहै छीजत काया।
नागा मूनी दूधाधारी एता जोग न पाया ।।१४।।

दूधाधारी परिग्रहि चित। नागा लकड़ी चाहै नित।
मोनी करै म्यंत्र की आस। विन गुर गुदड़ी नहीं बेसास ।।१५।।

प्यडै होइ तौ पद की आसा, बनि निपजै चौतारं।
दूध होइ तौ घृत की आसा, करणीं करतव सारं।।१६।।

---

११ षुध्या=क्षुधा, भूख। नग्री=नगरी, वस्ती। बिंद=वीर्य-बिन्दु, काम-वासना से आशय है। क्यो=कैसे, किस साधन से। सीझति=सिद्ध हो। जल-व्यंद=वीर्य और रज।

१२ धाये न षाइबा=ठूँस-ठूँस कर नहीं खाना चाहिए। भेव=भेद, रहस्य।

१३ यंद्री=इन्द्रियाँ। न्यंद्रा=निद्रा। झपै=चढ बैठता है।

१४ पावड़ियाँ=पाँवड़िया याने खड़ाऊँ से। फिलसै=फिसल जाता है। लोहै=लोहे की जंजीरों से। मूनी=मौनी। दूधाधारी=केवल दूध का आहार करनेवाले। एता=इतनों ने।

१५ लकड़ी चाहै=धूनी जलाने के लिए लकड़ी चाहता है, जिससे नग्न शरीर सदा गरम बना रहे। म्यंत्र=मित्र, साथी, जिसके द्वारा अपने आशय को समझा सके। बेसास=विश्वास।

१६ प्यडै=पिंड में, शरीर में। बनि=वन में। चौतार=चौपायों में। करणी-करतव=सच्ची योग-साधना।

मन मैं रहिणां भेद न कहिणां बोलिबा अमृत वाणी।
आगिला अगनी होइबा अवधू, तौ आपण होइबा पांणी ॥१७॥

हिन्दू ध्यावै देहुरा मूसलमान मसीत।
जोगी ध्यावै परमपद जहाँ देहुरा न मसीत ॥१८॥

हिन्दू आपै रांम कौं, मूसलमान षुदाइ।
जोगी आपै अलप-कौं तहां राम अछै न षुदाइ ॥१९॥

गोरष कहै सुणहुरे अवधू जग मैं ऐसै रहणां।
आंपैं देषिबा काणैं सुणिबा मुष थै कछू न कहणां ॥२०॥

नाथ कहै तुम आपा राषौ, हठ करि बाद न करणां।
यहु जग है कांटे की बाड़ी देषि देषि पग धरणां ॥२१॥

देवल जात्रा सुंनि जात्रा तीरथ जात्रा पांणीं।
अतीत जात्रा सुफल जात्रा बोलै अमृत बाणी ॥२२॥

सुनि गुणवंता सुनि बुधिवंता अनंत सिधां की बांणी।
सीस नवावत सतगुर मिलिया जागत रैंणि विहांणी ॥२३॥

---

१७ मन मैं रहिणा=मन की बहिर्मुख वृत्तियों को अन्तर्मुख करके उन्मनावस्था में लीन रहना। आगिला=सामने का आदमी। अगनी होइबा=गरम पड़े। पाणी होइबा=पानी हो जाये, क्षमा दिखाये।

१८ देहुरा=देवालय। मसीत=मसजिद।

१९ आपै=कथन करते हैं। अछै=है।

२१ आपा राषौ=आत्मा की रक्षा करो।

२२ सुंनि=शून्य, निस्सार, निष्फल। अतीत-जात्रा=सत-समागम से तात्पर्य है।

२३ जागत रैणि विहाणी=जागते-जागते अर्थात् आत्मज्ञान की अवस्था में भव-रात्रि बीत गई।

भिष्या हमारी कामधेनि बोलिये, संसार हमारी बाड़ी।
गुरपरसादै भिष्या षाइबा अंतिकालि न होइगी भारी ॥२४॥

हिरदा का भाव हाथ मै जाणिये यहु कलि आई षोटी।
बदंत गोरप सुणौ रे अवधू, करवै होइ सु निकसै टोटी ॥२५॥

आसण दिढ अहार दिढ जे न्यंद्रा दिढ होई।
गोरष कहै सुणौ रे पूता, मरै न बूढा होई ॥२६॥

षांयें भी मरिये अणषांये भी मरिये। गोरप कहै पूता संजमि ही तरिये
मधि निरतर कीजै वास। निहचल मनुवा थिर होइ सास ॥२७॥

अवधू मन चगा तौ कठौती ही गगा। बांध्या मेल्हा तौ जगत्र चेला।
बदत गोरप सति सरूप॥ तत बिचारै ते रेष न रूप ॥२८॥

जोगी होइ परनिंद्यां झपै। मदमास अरु भांगि जो भपै।
इकोतरसै पुरिपा नरकहि जाई। सति सति भापत श्री गोरषराई ॥२९॥

---

२४ बाडी=खेती। गुर...षाइबा=भिक्षान्न भी गुरु का प्रसाद है, गुरु को अर्पण करके ही उसे ग्रहण करते हैं—"तेन त्यक्तेन भुंजीथा :।"
भारी=दुःखदायी।

२५ हाथमै=हाथ से किये हुए कर्म मे। करवै–टोटी=करवे याने गडुवे मे जो कुछ भरा होगा, वही तो टोटी से बाहर निकलेगा।

२६ पूता=पुत्रो अर्थात् शिष्यो।

२७ मधि=मध्यम रहनी। सास=श्वास।

२८ बाध्या=बधन मे पडा हुआ मन। मेल्हा=छुड़ा दिया। जगत्र=जगत्।
ते रेष न रूप रे=नाम और रूप से मुक्त है।

२९ झपै=बके। इकोतर सै=इकहत्तर सौ

अवधू मांस भषत दया धरम का नाश। मद पीवंत तहां प्रांण निरास।
भांगि भषंत ग्यांन ध्यांन षोवत। जम दरबारी ते प्रांणी रोवंत ॥३०॥

एकाएकी सिध नांउं, दोइ रमति ते साधवा।
चारि पंच कुटंब नांउं, दस बीस ते लसकरा ॥३१॥

महसां धरि महसां कूं मेटै, सति का सबद बिचारी।
नांन्हां होय जिनि सतगुर षोज्या, तिन सिर की पोट उतारी ॥३२॥

जीव क्या हतिये रे प्यडधारी। मारि लै पंचभू म्रगला।
चरै थारी बुधि बाड़ी। जोग का मूल है दया-दाण।
कथत गोरष मुकति लै मानवा, मारिलै रै मन द्रोही।
जाकै बप बरण मास नही लोही ॥३३॥

जे आसा ते आपदा, जे संसा ते सोग।
गुरमुषि बिना न भाजसी (गोरप) ये दून्यों बड़ रोग ॥३४॥

जपतप जोगी संजम सार। बाले कंद्रप कीया छार।
येहा जोगी जग मैं जोय। दूजा पेट भरै सब कोय ॥३५॥

---

३० दरबारी=दरबार मे।

३१ एकाएकी=अकेला। सिध=सिद्ध। लसकरा=जमात।

३२ धरि=धारणकर, प्राप्त करके। मेटै=मान नही देते हैं।
नान्हा=नम्र, निरहकार। पोट=कर्मों की गठरी।

३३ प्यडधारी=शरीरधारी। पचभू मृगला=पाचभौतिक मनरूपी मृग।
थारी=तेरी। बुधि-बाडी=बुद्धिरूपी खेती। दाण=दान। बप=शरीर।
लोही=लोहू, रक्त।

३४ संसा=संशय, द्वैत-बुद्धि। सोग=शोक। गुरमुषि बिना=सतगुरु का उपदेश
लिये बिना। भाजसी=भागेंगे, नष्ट होगे।

३५ बाले=बालकपन मे। कंद्रर्प=कदर्प, काम-वासना।
जोय=समझना चाहिए।

कथणी कथै सो सिष बोलिये, बेद पढ़ै सो नाती।
रहणी रहै सो गुरू हमारा, हम रहता का साथी ॥३६॥

पद

राग रामगिरि

रहता हमारै गुरु बोलिये, हम रहता का चेला।
मन मानै तौ संगि फिरै, निहतर फिरै अकेला ॥
अवधू ऐसा ग्यांन बिचारी, तामैं झिलिमिलि जोति उजाली।
जहां जोग तहां रोग न व्यापै, ऐसा परषि गुर करनां।
तन मन सूं जे परचा नांही, तौ काहे को पचि मरनां ॥
काल न मिट्या जजाल न छुट्या, तप करि हूवा न सूरा।
कुल का नास करै मति कोई, जै गुर मिलै न पूरा ॥
सप्त धात का काया पींजरा, ता महिं जुगति बिन सूवा।
सतगुर मिलै तो ऊबरै बाबू, नहीं तौ परलै हूवा ॥
कंद्रप रूप काया का मंडण, अँबिरथा कांइ उलीचौ।
गोरष कहै सुणौ रे भौंदू, अरंड अँमी कत सींचौ ॥ १ ॥

---

३६ नाती=शिष्य का शिष्य, और भी छोटा।

३७ रहता=तदनुसार आचारण करनेवाला । निहतर=नही तो।

पद

१ जोति=आत्म-ज्योति । उजाली=प्रकाश । परचा=परिचय, ब्रह्म का साक्षात्कार। जहाँ...करना=स्वय-सिद्ध है कि योगाभ्यास सिद्ध होने पर दैहिक अथवा मानसिक कोई भी रोग नहीं रहता । अतः परखकर ऐसा ही गुरु बनाना चाहिये । ऐसा नहीं बनाना चाहिए कि जिसका आश्रय लेकर साधा तो जाये योग, पर हो जाये उलटे रोग।

राग असावरी

जीव सीव ना संगै बासा, ना बधि पाइवा रे रुध्र मासा।
घाव न घातिबा हंस गोतं, बदत गोरषनाथ निहारि पोतं॥
मारिबा रे नरा, मन द्रोही, जाकै बप बरण नहीं मास लोही॥
सब जग ग्रासिया देव दाणं, सो मन मारीबा रे गहि गुरु ग्यांन बांण॥
पसू क्या हतिये रे प्यंडधारी, मारिये पंच भू मृघला जे चरै बुधि बाड़ी
जोग का मूल है दया दांन, भणत गोरषनाथ ये ब्रह्म ग्यांनं॥ २॥

राग असावरी

कैसैं बोलौं पंडिता, देव कौंनै ठांइं,
निज तत निहारतां अम्हे तुम्हें नाही।
पषांणची देवली पषांण चा देव, पषांण पूजिला कैसै फीटीला सनेह।
सरजीव तोड़िला निरजीव पूजिला, पाप ची करणी कैसै दूतर तिरीला

सूरा=शूरा, सप्त धात=रस, रक्त, मास, मेद, अस्थि, मज्जा, तथा वीर्य ये सात धातुए हैं, जिनसे शरीर का निर्माण हुआ है।
जुगति बिन सूवा=मुक्त होने की युक्ति से अनभिज्ञ तोते के समान बन्द है। परलै=प्रलय, सर्वनाश। मडण=सजावट, शोभा। अविरथा=वृथा ही। काइ=क्यो। भौद्=मूर्ख। अरंड=रैडी का पेड। अमी=अमृत से।

२ सीव=शिव, ब्रह्म। ना=का (गुजराती प्रयोग) बधि=हत्या करके रुध्र=रुधिर, रक्त। घाव-घातिवा=प्रहार नही करना चाहिए। हस गोत=ब्रह्म का सगोत्री जीवात्मा। पोत=अपने आपको, अपने पुत्र को। बप=शरीर। दाण=दानव। प्यडधारी=हे शरीरधारी मनुष्य। पचभू मृघला=पाचभौतिक मनरूपीमृग। बुधिबाडी=बुद्धिरूपी खेती।

३ ठाई=स्थान। निज नाही=आत्मतत्व का साक्षात्कार हो जाने पर न तो हम रहते हैं, और न तुम। पषाणची देवली=पत्थर का देवालय। ची, चा=की, का=(मराठी प्रयोग) फीटीला=फूटता है, पसीजता है।

तीरथि तीरथि सनांन करीला, बाहर धोये कैसैं भीतरि भेदीला ॥
आदिनाथ नाती मछींद्र नाथ पूता,निज तात निहारै गोरष अवधूता

आरती

नाथ निरंजन आरती गाऊं । गुरदयाल अग्यां जो पाऊं ॥
जहां अनंत सिधां मिलि आरती गाई । तहां जम की बाव न नैड़ी आई ।
जहां जोगेसुर हरि कूं ध्यावैं । चंद सूर तहां सीस नवावैं ।
मछींद्र प्रसादे जती गोरखनाथ आरती गावै ।
नूर झिलमिल दीसै तहां अनत न आवै ॥ ४ ॥

नरवै-बोध

सुणो हो नरवै, सुधि बुधि का विचार । पंच तत ले उतपनां सकल संसार
पहलै आरंभ घट परचा करौ निसपती । नरवै बोध कथंत श्री गोरषजती

पहलै आरंभ छांड़ौ काम क्रोध अहकार । मन माया बिषै विकार ।
हंसा पकड़ि घात जिनि करौ । तृस्नां तजौ लोभ परहरौ ॥ २ ॥

छांडो दंद रहौ निरदंद । तजौ अल्यंगन रहौ अबंध ।
सहज जुगति ले आसण करौ । तन मन पवनां दिढ करि धरौ ॥ ३ ॥

सरजीव=सजीव, फूल-पत्तो आदि । दूतर=दुस्तर । सनान=स्नान । भेदीला=भेद सकता है, निर्मल कर सकता है ।

४ बाव=वायु, हवा, स्पर्शतक । नैडी=निकट । प्रसादे=प्रसाद अर्थात् कृपा से । नूर=आतमा का प्रकाश । अनत=अन्यत्र, अन्य अवस्था ।

नरवै-बोध

नरवै=नृपति । आरंभ निसपती=योग की चार अवस्थाएँ है—आरंभ, घट, परिचय और निष्पत्ति । उतपना=उत्पन्न हुआ है ।

२ हसा=प्राणी ।

३ दद=द्वन्द्व, द्वैतभाव, प्रपंच । अल्यगन=आलिगन, काम-वासना । पवना धरौ=श्वास को प्राणायाम द्वारा निश्चल करो ।

संजम चितओ जुगत अहार । न्यंद्रा तजौ जीवन का काल ।
छांड़ौ तंत मंत बेदंत । जंत्र गुटिका धात पाषंड ॥ ४ ॥

जड़ी बूटी का नांव जिनि लेहु । राज दुवार पाव जिनि देहु ।
थंभन मोहन बिसिकरन छाड़ौ औचाट ।
सुणौ हो जोगेसरो जोगारंभ की बाट ॥ ५ ॥

और दसा परहरौ छतीस । सकल बिधि ध्यावो जगदीस ।
बहु विधि नाटारंभ निबारि । काम क्रोध अहंकारहि जारि ॥ ६ ॥

नैंण महा रस फिरौ जिनि देस । जटा भार बंधौ जिनि केस ।
रूष विरष बाड़ी जिनि करौ । कूवा निवांण पोदि जिनि मरौ ॥ ७ ॥

टूटै पवनां छीजै काया । आसण दिढ करि बैसौ राया ।
तीरथ वर्त कदे जिनि करौ । गिर परबतां चढि प्रान मति हरौ ॥ ८ ॥

पूजा पाति जपौ जिनि जाप । जोग माहि बिटंबौ आप ।
छांडौ बैद बणज व्यौपार । पढ़िबा गुणिबा लोकाचार ॥ ९ ॥

---

४ संजम चितओ=संयम, साधन में चित्त लगाओ । जुगत=युक्त, नियन्त्रित। न्यंद्रा=निद्रा । बैदंत=वैद्यक । गुटिका=गोली । धात=पारा आदि धातु भस्मो का सिद्ध करना ।

५ थभन=स्तंभन । औचाट=उच्चाटन । बाट=मार्ग ।

६ छतीस=क्षितीश, नृपति । नाटारंभ=बाहरी प्रदर्शन, पाखण्ड । निवारि=दूर करके ।

७ रूष=पेड । निवाण=गहरा ।

८ वर्त=व्रत । कदे=कभी ।

९ बिटंबो=विडंबना कराते हो । बैद=वैद्य का धंधा ।

बहुचेला का संग निबारि । उपाधि मसांण बाद बिष टारि ।
येता कहिये प्रतच्छि काल । एकाएकी रहौ भुवाल ॥१०॥

सभा देषि मांडौ मति ग्यांन । गूंगा गहिला होइ रहौ अजांण ।
छाड़व राव रंक की आस । भिछ्या भोजन परम उदास ॥११॥

रस रसाइंन गोटिका निवारि । रिधि परहरौ सिधि लेहु बिचारि ।
परहरौ सुरापांन अरु भंग । तातैं उपजै नांनां रंग ॥१२॥

नारी, सारी, कींगुरी । तीन्यूं सतगुर परहरी ।
आरंभ घट परचै निसपती । नरवै बोध कथंत श्री गोरख जती ॥१३॥

ग्यान-तिलक

दरपन माही दरसन देष्या, नीर निरतरि झांई ।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, लखै तौ दूर न जाई ॥ १ ॥

चकमक ठरकै अगनि झरै यूं दधि मथि घृत करि लीया ।
आपा मांहीं आपा प्रगट्या, तब गुरू संदेसा दीया ॥ २ ॥

---

१० उपाधि मसाण=उपाधि है मानो श्मशान । बाद बिषटारि=शास्त्रार्थ को विष के समान समझकर टालदो । एकाएकी=अकेले ही ।

११ गहिला=पागल ।

१३ सारी=मैना, मैना पालकर उससे राम का नाम जपवाते हैं । कीगुरी=सारगी ।

ग्यान-तिलक

१ दरपन=अपने आपमे । दरसन देख्या=ब्रह्म का साक्षात्कार किया । झाई =प्रतिबिम्ब ।

२ ठरकै=रगडने से । सॅदेसा दिया=पते की बात बतलादी ।

सुरति गहौ ससै जिनि लागौ, पूँजी हांन न होई।
एक तत सूं एता निपजै, टार्‌या टरै न सोई॥ ३॥

निहिचा ह्वै तौ नेरा निपजै, भया भरोसा नेरा।
परचा ह्वै ततषिन निपजै, नहीतर सहज नबेरा॥ ४॥

---

३ सुरति=ध्यान, लय। जिनि लागौ=मत पड़ो।
पूँजी=आत्मारूपी निधि। एता=इतना अखूट धन। निपजै=पैदा होता है।

४ निहिचा=निश्चय। भरोसा=परम विश्वास। नेरा=वही-का-वही। ततषिन=तत्क्षण, तुरत ही। नबेरा=निबटारा।

नामदेव महाराज

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१३२७ वि०
जन्म-स्थान—नरुसी ब्रमनी (सातारा जिला)
जाति—छीपी
पिता—दामा शेट
माता—गोणाई
गुरु—खेचरनाथ नाथपथी
योगमार्ग-प्रेरक—ज्ञानदेव महाराज
निवार्ण-संवत्—१४०७ वि०
निर्वाण-स्थान—पढरपुर

महाराष्ट्र के सुविख्यात कृष्ण-भक्त वामदेव इनके नाना थे । नामदेव पर भी, स्वभावतः, कृष्ण-भक्ति का प्रभाव बाल्यपन से पड़ा था। सगुणोपासना-विपयक इनके अनेक अभंग मराठी मे प्रसिद्ध हैं। हिन्दी मे भी इनके कृष्ण-भक्ति संम्बधी कई पद मिलते हैं। एक पद है–

धनि धनि मेघा रोमावली, धनि धनि कृष्ण ओढ़े कॉवली।
धनि धनि तू माता देवकी, जेहि गृह रमैया कॅवलापती।
धनि धनि बनखॅड बृन्दावना, जहॅ खेले श्री नारायणा।
वेनु बजावै, गोधन चारै, नामे का स्वामी आनॅद करै ॥

इन पदों और मराठी के अभंगों से सिद्ध होता है कि नामदेव आरभ मे सगुणोपासक थे। पश्चात्, गोरखनाथ की शिष्य-परपरा के सुप्रसिद्ध सन्त ज्ञानदेव महाराज ने इन्हें, कहा जाता है, निर्गुणोपासना की ओर मोड़ने का प्रयत्न किया, और उन्हे सफलता भी मिली। कहते हैं कि एक बार श्रीज्ञानदेव इन्हे अपनी सत-मण्डली मे लेकर तीर्थाटन को निकले ।

नामदेव अपने इष्टदेव विठोबा (भगवान् विट्ठलनाथ) के वियोग में व्याकुल रहते थे। ज्ञानदेव ने बहुत समझाया कि, 'यह तुम्हारा मोह है, भगवान् तो सर्वत्र है। तुम्हारी यह कच्ची भक्ति है। पक्की भक्ति तो निर्गुण पक्ष की ही होती है। सो तुम उसीका अभ्यास करो।' एक दिन एक गाँव में सब संतों की परीक्षा हुई। परीक्षक था एक कुम्हार। कुम्हार ने घड़ा पीटने का पिटना हाथ में लिया, और सब के सिर उससे ठोकने लगा। सब संत चोटें खाकर भी अचल बैठे रहे। पर नामदेव अपना सिर पिटवाने को तैयार नहीं हुए, उसपर बिगड़ भी पड़े। कुम्हार बोला—'और संत तो सब पक्के घड़े हैं। यही एक कच्चा घड़ा है।' नाथपंथ का अनुयायी बनाने के लिए ज्ञानदेवजी ने और भी कितने ही प्रयत्न किये। पश्चात्, ज्ञानदेव के देहावसान के उपरांत, नामदेव ने खेचरनाथ नाम के एक नाथपंथी योगी को अपना गुरु बना लिया, जैसा कि प्रसिद्ध है

"मन मेरी सूई, तन मेरा धागा।
खेचरजी के चरण पर नामा सिपी लागा ॥"

योगमार्ग पर पैर रखने के पश्चात् नामदेवजी ने निर्गुणोपासना के अनेक अभंगों और पदों की रचना की। किन्तु निर्गुणोपासक अथवा नाथपंथी या योगमार्गी हो जाने पर भी पंढरपुर के विठोबा के प्रति इनकी भक्ति में अन्तर नहीं पड़ा। नामदेव का देहावसान विट्ठल-मन्दिर के महाद्वार की सीढ़ी पर संवत् १४०७ में ८० वर्ष की अवस्था में हुआ।

नामदेव के सम्बन्ध में भक्तमाल तथा अन्य ग्रन्थों में अनेक चमत्कारों का वर्णन मिलता है, जैसे, बचपन में विठोबा की मूर्ति का प्रत्यक्ष होकर इनके हाथ से दूध पीना, बादशाह के सामने एक मरी हुई गाय को जिला देना, नागनाथ महादेव के मन्दिर का द्वार इनकी ओर घूम जाना आदि।

मरी हुई गाय को जिला देने की कथा नामदेवरचित निम्न पद पर आधारित है:—

"सुलतानु पूछै सुनु वे नामा। देखउँ राम तुम्हारे कामा ॥
नामा सुलतानै बाँधिला। देखउँ तेरा हरि बीठुला ॥
बिसमिलि गऊ देहु जीवाइ। नातरु गरदनि मारउँ ठाइ ॥
बादिसाह, ऐसी क्यूँ होइ। बिसमिलि किया न जीवै कोइ ॥

बानी-परिचय

जैसाकि ऊपर कहा गया है सगुण-भक्ति एव निर्गुण-भक्ति दोनों ही प्रकार के पद इनके हिन्दी मे मिलते हैं। गुरु ग्रन्थसाहब मे नामदेव के ६० से अधिक पद सकलित हैं। पजाब में १५ वर्षतक भगवद्भक्ति का प्रचार करते रहने के कारण इनकी मराठीयुक्त हिन्दी मे पजाबी का प्रभाव स्पष्ट दिखता है। सगुणोपासना के पदो की भाषा जहाॅ कुछ-कुछ ब्रज की जैसी है वहाॅ निर्गुणोपासना की बानी पर खड़ी हिन्दी का प्रभाव पडा है।

मेरा किया कछू ना होइ। करिहै रामु होइहै सोइ ॥
बादिसाहु चढ्यो अहॅकारि। गज हसती दीनो चमकारि ॥
रुदनु करै नामे की माइ। छोडि राम किन भजहि खुदाइ ॥
न हौ तेरा पूॅगडा न तू मेरी माइ। पिडु पडै तौ हरिगुन गाइ ॥
करै गजिदु सु ड की चोट। नामा उबरै हरि की ओट ॥
काजी मुल्ला करहि सलामु। इनि हिंदु मेरा मल्या मानु ॥
पायहु बेडी, हाथहु ताल। नामा गावै गुन गोपाल ॥
गग जमुन जौ उलटी बहै। तौउ नामा हरि कहता रहै ॥
सात घडी जब बीती सुणी। अजहुॅ न आयो त्रिभुवन-धणी ॥
पाखतण बाज बजाइला। गरुड चढे गोबिन्द आइला ॥
अपने भगत परि की प्रतिपाल। गरुड चढे आए गोपाल ॥
कहहि त धरणी इकोडी करउॅ। कहहि त लेकरि ऊपरि धरउॅ ॥
कहिह त मूइ गऊ देउॅ जियाइ। सभु कोई देखै पतियाइ ॥
नामा प्रणवै सेलमसेल। गऊ दुहाई बुछरा मेलि ॥
दूधहि दुहि जब मटुकी भरी। ले बादिसाह के आगे धरी ॥
बादिसाहु महल महि जाइ। औघट की घट लागी आइ ॥
काजी मुल्ला विनती फुरमाइ। बखसी हिन्दू मै तेरी गाइ ॥
नामदेव सभु रह्या समाइ। मिलि हिंदू सभ नामे पहि जाहि ॥
जौ अब की बार न जीवै गाइ। त नामदेव का पतिया जाइ ॥
नामे की कीरति रही संसारि। भगत जना ले उधर्‍या पारि ॥
सगल कलेसा निदक भया खेदु। नामे नारायन नाही भेदु ॥"

नामदेव की बानी यद्यपि सीधी-सादी भाषा में है, तथापि वह भक्तिरस-मयी और अन्तर को भेदनेवाली है। उसमे हम योग-साधना की निर्मलता के साथ-साथ भक्ति की विह्वलता भी पाते हैं। हिन्दी के संत-साहित्य को नामदेव महाराज की अनुभवपूर्ण बानी पर गर्व है।

आधार

१ नाभाकृत भक्तमाल—नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
२ साध-सग्रह—स्वामीबाग, आगरा
३ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्दी सिक्ख मिशन, अमृतसर
४ हिन्दी-साहित्य का इतिहास—रामचन्द्र शुक्ल

नामदेव महाराज

राग आसा

एक, अनेक सु व्यापक पूरक जित देखौ तित सोई।
माया चित्र-विचित्र विमोहिनि बिरला बूझै कोई॥
सब गोबिंदु है सब गोबिंदु है, गोबिंदु बिनु नहिं कोई।
सूतु एक मनि सत सहस्र जैसे, ओतिपोति प्रभु सोई॥
जल, तरंग अरु फेन, बुदबुदा जल ते भिन्न न होई।
इहु प्रपंच ब्रह्म की लीला विचरत आन न होई॥
मिथ्या भ्रम अरु सुपन मनोरथ सत्ति पदारथु जान्या।
सुकिरत-मनसा गुरु-उपदेसे जागत ही मन मान्या॥
कहत नामदेव हरि की रचना देखहु रिदै विचारी।
घट-घट अंतरि सरब निरंतरि केवल एक मुरारी॥१॥

राग आसा

मन मेरो गज, जिहवा मेरी काती।
मपि-मपि काटौं जम की फाँसी॥

---

१ सूतु...सोई=एक धागे मे जैसे सैकडो-हजारो मणियाँ गूँथी जा सकती हैं, वैसे ही परमात्मा जगत् की प्रत्येक वस्तु मे और प्रत्येक वस्तु उसमे समाई हुई है। ओति-पोति=ओतप्रोत, परस्पर इतना उलझा या मिला हुआ कि अलग-अलग करना असभव-सा हो। बुदबुदा=बुलबुला। विचरत=विचार करने पर। आन=अन्य, भिन्न। सुकिरत मनसा=पवित्र मन से। रिदै=हृदय मे

कहा करौ जाती कहा करौं पाँती।
राम को नाम जपौं दिन राती॥
भगति-भाव सूँ सीवनि सीवौं।
राम नाम बिनु घरी न जीवौं॥
भगति करौं हरि के गुन गावौं।
आठ पहर अपने खसम को ध्यावौं॥
सोने की सूई, रूपे का धागा।
नामे का चित हरि सूँ लागा॥२॥

सारंग

काहे रे मन, बिषया-बन जाइ।
भूलौ रे ठग मूरी खाइ॥
जैसे मीन पानी महिं रहै।
काल-जाल की सुधि नहिं लहै॥
जिह्वा-स्वादी लीलति लोह।
ऐसे कनक कामिनी बाँध्यो मोह॥
ज्यूँ मधु माखी संचै अपार।
मधु लीनौं, मुख दीनी छार॥
गऊ बाछ को संचै खीर।
गला बाँधि दुहि लेइ अहीर॥
माया कारन स्रमु अति करै।
सो माया लै गाड़ै धरै॥

---

२ काती=कैंची। मपि-मपि=माप-मापकर। खसम=स्वामी।

३ विषया-बन जाइ=विषय-वासनाओं के वन में भटक रहा है। ठगमूरी=एक ऐसी नशीली जड़ी-बूटी, जिसे ठगलोग राहगीरों को बेहोश करके उन्हें

अति संचै समझै नहिं मूढ़।
धन धरती तनु होइ गयो धूड़॥
काम क्रोध तृसना अति जरै।
साध-सगति कबहूँ नहिं करै।
कहत नामदेव साँची मान।
निरभै होइ भजिलै भगवना॥३॥

सारग

बदहु कि न होइ माधौ, मोसूँ।
ठाकुर ते जन जन ते ठाकुर ख्याल पर्यो है तोसूँ॥
आपन देव देहुरा आपन, आप लगावै पूजा।
जल ते तरंग तरंग ते है जल, कहन सुनन को दूजा॥
आपहि गावै आपहि नाचै, आप बजावै तूरा।
कहत नामदेव तूं मेरो ठाकुर, जन ऊरा तूं पूरा॥४॥

मलार

मो को तूं न बिसारि, तू न बिसारि, तूं न बिसारि रमैया।
तेरे जन की लाज जाहिगी, मुझ ऊपरि सब कोपिला।
सूदु सूदु करि मारि उठायो कहा करौं बाप बीठुला॥

लूटने के लिए खिलाते थे। लीलति=निगल जाती है। सचै=इकट्ठा करती है। मुख दीनी छार=धता बतला देते, या नष्ट कर देते ह। खीर=दूध। धूड=धूल, नष्ट

४ देहुरा=देवालय। तूरा=तुरही, सिघा। ऊरा=अधूरा, न्यून।

५ कोपिला=कुपित हैं, नाराज है। सूद=शूद्र। बीठुला=विट्ठल (विष्णु), पंढरीनाथ भी कहते हैं, जो नामदेव के इष्टदेव थे। मुए परि=मरने पर।

सूए परि जौ मुकति देहुगे, मुकति न जानै कोई।
ए पडिया मो को ढेढ़ कहत तेरी पैज पिछौडी होई॥
तू जु दयालु कृपालु कहियतु हैं अति भुज भयो अपारला।
फेरि दिया देहुरा नामे कौ पंडियन को पिछवारला॥५॥

राग भैरव

मै बौरी मेरा राम भतार।
रचि-रचि ताकों करौ सिंगार॥
भले निंदौ भले निंदो भले निंदौ लोग।
तन मन मेरा राम प्यारे जोग॥
बाद बिबाद काहू सूँ न कीजै।
रसना राम-रसायन पीजै॥
अब जिय जानि ऐसी बनि आई।
मिलौं गुपाल नीसान बजाई॥
अस्तुति निंदा करै नर कोई।
नामे श्रीरँगु भेटल सोई॥६॥

राग भैरव

जैसी भूखे प्रीति अनाज।
त्रिषावंत जल सेती काज॥

ढेढ=अत्यज, अछूत। पैज पिछौडी होई=तेरा प्रण पीछे पड जायगा। अति.. अपारला=भुजा बहुत बढादी। फेरि पिछवारला=मदिर का मुहँ (द्वार) नामदेव की ओर कर दिया, ताकि वह दर्शन ले सके, क्योंकि उसे मंदिर मे प्रवेश नही करने दिया था, और मदिर की पीठ पडों की ओर करदी।

६ भतार=भर्त्ता, स्वामी। श्रीरँग=लक्ष्मीपति विट्ठलनाथ

जैसे मूढ़ कुटब परायण ।
ऐसी नामे प्रीति नारायण ॥
नामे प्रीति नरायण लागी ।
सहज सुभाय भयो बैरागी ॥
जैसी परपुरषारत नारी ।
लोभी नर धन का हितकारी ॥
कामी पुरष कामिनी प्यारी ।
ऐसी नामे प्रीति मुरारी ॥
सोई प्रीति जि आपे लाए ।
गुरपरसादी दुबिधा जाए ॥
कबहुँ न तूटसि रह्या समाइ ।
नामे चित लाया सचि भाइ ॥
जैसी प्रीति बालक अरु माता ।
ऐसा हरि सेती मन राता ॥
प्रणवै नामदेउ लागी प्रीति ।
गोबिंदु बसै हमारे चीति ॥७॥

रामकली

माइ न होती बापु न होता करम न होती काया ।
हम नहिं होते, तुम नहिं होते, कवन कहाँ ते आया ॥
राम कोइ न किसही केरा ।
जैसे तरवर पखि-बसेरा ॥

---

७ सेती=प्रति, से । पुरषा=पुरुष । हितकारी=लोभी । परसादी=कृपा । तूटसि=टूटा । सचि भाइ=सच्चे भाव से । राता=अनुरक्त, लगा हुआ । चीति=चित्त ।

चंद न होता, सूर न होता, पानी पवनु मिलाया।
सास्त्र न होता वेद न होता, करमु कहाँ ते आया।।
खेचरि भूचरि तुलसी माला गुरपरसादी पाया।
नामा प्रणवै परम तत्त कूं सतगुर मोहि लखाया।।८।।

माली गौड

मेरो बाप माधौ तूं धन केसौ, सांवलियो बीठुलराइ।
कर धरे चक्र बैकुंठ ते आयो, तूं रे गज के प्रान उधार्‌यो।।
दुहसासन की सभा द्रोपदी अंबर लेत उबार्‌यो।
गोतम नारि अहल्या तारी, पापिन केतिक तार्‌यो।।
ऐसा अधम अजाति नामदेउ तव सरनागति आयो।।९।।

बिलावल

सफल जनम मो को गुर कीना।
दुख बिसारि सुख अंतर लीना।।
ग्यान-अंजन मो को गुर दीना।
राम नाम बिनु जीवन मनिहीना।।
नामदेव सिमरन करि जाना।
जगजीवन सूँ जीव समाना।।१०।।

---

८ खेचरि=योग-शास्त्र के अनुसार खेचरी नाम की मुद्रा। भूचरि=योग-शास्त्र के अनुसार भूचरी नाम की मुद्रा।

९ केसौ=केशव। दुहसासन=दु:शासन। अंबर लेत=वस्त्र खींचते हुए पापिन.. तार्‌यो=कितने ही पापियो को पवित्र किया और तार दिया।

१० हीन=तुच्छ, व्यर्थ। जगजीवन...समाना=जगत्पति विट्ठल मे मेरा चित्त लीन हो गया।

राग गौड

मोहि लागति तालाबेली।
बछरा बिनु गाइ अकेली ॥
पानी बिनु ज्यूं मीन तलफै।
ऐसे रामनाम बिनु नामा कलपै ॥
जैसे गाइ का बाछा छूटला।
थन चोखता माखन घूटला ॥
नामदेउ नारायन पाया।
गुर भेटत ही अलख लखाया ॥
जैसे बिषै हेत परनारी।
ऐसे नामे प्रीति मुरारी ॥
जैसे ताप ते निरमल घामा।
तैसे रामनाम बिनु बापुरो नामा ॥११॥

राग गौड

भैरों भूत सीतला धावै।
खर बाहन उहु छार उड़ावै ॥
हौं तो एक रमैया लैहौं।
आन देव बदलावनि दैहौं ॥
सिव-सिव करते जो नर ध्यावै।
बरद चढ़े डौरू ढमकावै।
महामाई की पूजा करै ॥

---

११ तालाबेली = बेचैनी। कलपै = व्याकुल हो रहा है। बापुरो = बेचारा।

१२ बदलावनि = बदले मे। बरद = बैल। डौरू = डमरू। ढमकावै =

नर सो नारि होइ औतरै।
तू कहियत ही आदि भवानी ॥
मुकति की बिरियाँ कहाँ छपानी ॥
गुर मति रामनाम गहु मीता।
प्रणवैं नामा औ कहै गीता ॥१२॥

राग गौड

हमरो करता राम सनेही।
काहे रे नर गरब करत है; बिनसि जाइ झूठी देही ॥
मेरी मेरी कैरव करते दुरजोधन से भाई।
बारह जोजन छत्र चलैथा, देही गिरझन खाई ॥
सरब सोने की लंका होती, रावन से अधिकाई।
कहा भयो दर बाँधे हाथी, खिन महिं भई पराई ॥
दुरबासा सूं करत ठगौरी, जादव वे फल पाये।
कृपा करी जन अपने ऊपर नामा हरिगुन गाये ॥१३॥

राग धनाश्री

मारवाड़ि जैसे नीर बालहा, बेलि बालहा करहला।
ज्यूं कुरंग निसि नाद बालहा त्यूं मेरै मनि रमइया ॥
तेरा नाम रूड़ो रूपु रूड़ो अति रंग रूड़ो मेरो रमइया।
ज्यूं धरणी को इन्द्र बालहा कुसम वास जैसे भवँरला।
ज्यूं कोकिल को अंबं बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया ॥

बजाता है। बिरियाँ=समय। छपानी=छिप गई। गीता=विट्ठल का गुण-गान।

१३ गिरझ=गीध। खिन=क्षण, पल। ठगौरी=धोखा।

१४ बालहा=प्रिय। करहला=फूल की कली। कुरंग=मृग। रूडों=सुन्दर।

चकवी कौं जैसे सूर बालहा, मानसरोवर हंसला ।
ज्यूं तरुणी कौं कन्त बालहा, त्यूं मेरै मनि रमइया ॥
वारक कौ जैसे खीर बालहा, चातक मुख जैसे जलधरा ।
मछली कौं जैसे नीर बालहा, त्यूं मेरैं मनि रमइया ॥
साधिक सिद्ध सगल मुनि चाहहिं, बिरले काहू डीठुला ।
सगल भवन तेरो नाम बालहा त्यूं नामे मनि बीठुला ॥१४॥

राग धनाश्री

पतितपावन माधौ बिरदु तेरा ।
धनि धनि ते मुनिजन जिन ध्यायो हरि प्रभु मेरा ॥
मेरे माथे लागीले धूरि गोबिंद चरनन की ।
सुरि नर मुनि जन तिनहु ते दूरि ॥
दीन को दयालु माधौ गरव प्रहारी ।
चरन सरन नामा लि बलि तिहारी ॥१५॥

भाई रे, इन नैनन हरि देखौ ।
हरि की भगति साध की सगति सोई दिन धनि लेखौ ॥
चरन सोइ जे नचत प्रेमसू कर सोई जे पूजा ।
सीस सोइ जो नवै साधकू रसना अवर न दूजा ॥
यह संसार हाट का लेखा, सब कोइ बनिजहिं आया ।
जिन जस लाद्या तिन तस पाया, मूरख मूल गँवाया ॥

ग्रव=ग्राम । सर=सूर्य । वारक=बालक । जलधरा=स्वाति नक्षत्र के मेघ से अभिप्राय है । डीठला=देखा ।

१५ विरद=बडा नाम, यश ।

१६ रसना...दूजा=वही जिह्वा या वाणी धन्य है, जो हरिनाम ही जपती है,

आतमराम देह धरि आया तामे हरि कूं देखौं ।
कहत नामदेव बलि बलि जैहौं, हरि भजि और न लेखौं ॥१६॥

परधन परदारा परिहरै । ताके निकट बसहिं नरहरी ॥
जे न भजंते नारायना । तिनका मैं न करौं दर्सना ॥
जिनके भीतर रहै अंतरा । जैसा पसु तैसा वह नरा ॥
प्रनमत नामदेव ताके बिना । ना सोहै बत्तीस लच्छना ॥१७॥

किसू हूँ पूजूँ दूजा नजर न आई ।
एके पाथर किज्जे भाव । दूजे पाथर धरिये पाव ॥
जो वो देव तो हम बी देव । कहै नामदेव हम हरि की सेव ॥१८॥

अबरीप कूं दियो अभयपद,
राज बिभीषन अधिक कर्‌यो ।
नौ निधि ठाकुर दई सुदामहिं,
ध्रूव जो अटल अजहूँ न टर्‌यो ॥
भगत हेत मार्‌यौ हरनाकुस,
नृसिंह रूप ह्वै देह धर्‌यो ।
नामा कहै भगति बस केसव,
अजहूँ बलि के द्वार खर्‌यौ ॥१९॥

दूसरा शब्द नही बोलती । लेखा=समान । लाद्या=कर्म किया । मूल=पूँजी । आत्मरूप=आत्मस्वरूपी ब्रह्म ।

१७ अंतरा=मंदबुद्धि, द्वैतभाव । बत्तीस लच्छना=
किज्जे=करते हैं ।

१८ भाव=भक्ति-भावना । बी=भी ।

१९ खर्‌यो=खडा है, खड़ा पहरा देता है ।

साखी

हिन्दू पूजै देहुरा, मूसलमान मसीत ।
नामा सोई सेविया, जहँ देहुरा न मसीत ॥१॥

मन मेरा सुई, तन मेरा धागा ।
खेचरजी के चरण पर नामा सिंपी लागा ॥२॥

साखी

१ देहुरा=देवालय मसीत=मसजिद ।

२ खेचर=खेचरनाथ नामक नाथपंथी साधु जिसे नामदेवने अपना गुरु बनाया था । सिंपी=छीपी दरजी ।

कबीर साहब

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१४५६ वि०

जन्म-स्थान—काशी

भारत का तत्कालीन शासक—सिकदर लोदी

माता-पिता के नाम अज्ञात, नीरू जुलाहे और उसकी पत्नी नीमा द्वारा पालित ।

गुरु—स्वामी रामानन्द ।

सत्यलोक-प्रयाण-सवत्—१५७५ वि०

कहते है कि नीरू जुलाहा जब अपनी स्त्री का गौना कराकर घर को वापस आ रहा था, तब रास्ते मे उसे काशी के पास लहरतारा तालाब पर एक हाल का जन्मा बालक पडा हुआ दिखाई दिया । उस नवजात बालक को उठाकर वह घर ले आया, यद्यपि लोकापवाद के डर से नीमा ने पति को ऐसा करने से रोका । यही परित्यक्त बालक कबीर के नाम से प्रसिद्ध हुआ ।

कबीरदास का पालन-पोषण जिस जुलाहे-कुल मे हुआ था वह नव-धर्मान्तरित मुसलमान-कुल था । आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी 'कबीर' पुस्तक मे गहरी गवेषणा के परिणामस्वरूप निम्नलिखित निष्कर्षों पर पहुँचे हैः—

"(१) आज की वयनजीवी जातियों मे से अधिकाश किसी समय ब्राह्मण-श्रेष्ठता को स्वीकार नही करती थी ।

(२) जोगी नामक आश्रमभ्रष्ट घरबारी की एक जाति सारे उत्तर और पूर्व भारत मे फैली थी । ये नाथपथी थे । कपडा बुनकर और सूत कातकर या गोरखनाथ और भरथरी के नाम पर भीख माँगकर ये जीविका चलाया करते थे ।

(३) इनमें निराकार भाव की उपासना प्रचलित थी, जाति-भेद और ब्राह्मण-श्रेष्ठता के प्रति इनकी कोई सहानुभूति नही थी, और न अवतारवाद में ही इनकी कोई आस्था थी।

(४) आसपास के बृहत्तर हिन्दू-समाज की दृष्टि मे ये नीच और अस्पृश्य थे।

(५) मुसल्मानों के आने के बाद ये धीरे-धीरे मुसल्मान होते रहे।

(६) पजाब, युक्त प्रदेश, बिहार और बगाल मे इनकी कई बस्तियो ने सामूहिक रूप से मुसल्मानी धर्म ग्रहण किया था।

(७) कबीरदास इन्ही नव धर्मान्तरित लोगों मे पालित हुए थे।

कबीर यद्यपि नाथपथी योगमत के अनुयायी नही थे, तथापि ऐसे कुल मे पालन-पोषण होने के कारण उक्त योगमत का कुछ-न-कुछ प्रभाव उनकी युक्तियो और तर्क-शैली मे रह गया है।"*

स्वामी रामानन्दजी को कबीरदास ने अपना गुरु स्वीकार किया था— "काशी मे हम प्रगट भये हैं, रामानन्द चेताये।" सद्गुरु के प्रति कबीर ने ज्वलन्त श्रद्धाभाव अनेक साखियो व शब्दों मे प्रकट किया है।

मगर मुसल्मान कबीर-पथी मानते हैं कि कबीर ने सूफी फकीर शेख तकी से गुरु-दीक्षा ली थी। इसके प्रमाण मे यह वाक्य प्रस्तुत किया जाता है—"घट-घट है अविनासी सुनहु तकी तुम शेख।" पर इससे यह बात सिद्ध नही होती कि शेख तकी कबीर के गुरु थे। 'शेख' शब्द का प्रयोग यहॉ विशेष आदरभाव से नही किया गया है, बल्कि शेख तकी को उलटे उपदेश-सा दिया गया है। हॉ, यह सम्भव है कि ऊँजी के पीर शेख तकी का सत्संग कुछ कालतक उन्होने किया हो।

ज्ञानभक्ति की सतत साधना करते हुए भी अपना घरेलू व्यवसाय नही छोड़ा—'हम घर सूत तनहिं नित ताना।' किन्तु कपडा बुनते समय भी लौ उनकी राम से ही लगी रहती थी। ताने-बाने के रूपक के अनेक सुन्दर शब्द कबीर के मिलते हैं।

एक लोक-प्रचलित कथा है। कहते हैं कि एक दिन एक थान बुनकर कबीर साहब उसे बाजार मे बेचने के लिए घर से निकले। रास्ते मे एक

* कबीर, पृष्ठ २२

साधु मिल गया और उसने कहा—'बाबा, ला कुछ दे।' इन्होंने आधा थान फाड़कर दे दिया। 'पर इतने से तो बाबा मेरा काम नहीं चलेगा।' कबीर साहब ने दूसरा आधा थान भी उसे दे दिया, और प्रसन्नचित्त घर लौट आये[१]।

कबीर ने विवाह किया था या नहीं इस विषय में थोड़ा मतभेद-सा है। पर मानते अधिकतर यही हैं और उनकी बानी से भी सिद्ध होता है कि वे गृहस्थ थे, और उनकी स्त्री का नाम लोई था:—

रे, या मे क्या मेरा क्या तेरा,
लाज न मरहि कहत घर मेरा।
कहत कबीर सुनहु रे लोई,
हम तुम बिनसि रहेगा सोई॥

'लोई' का अर्थ, मतांतर से, "हे लोगों" यह भी होता है, पर यहां यह अर्थ संभवतः अभिप्रेत नहीं है। अधिकांश प्रमाणों से कबीर का गृहस्थ होना ही सिद्ध होता है।

अन्य अनेक संत-महात्माओं की तरह कबीर साहब के विषय मे भी कितनी ही अलौकिक चमत्कारपूर्ण लोक-कथाएँ प्रसिद्ध हैं, जैसे—व्यापारी के भेष मे भगवान् का कबीर के घर पर, सन्तो के भण्डारे के लिए, आटा, घी शकर आदि बैलों पर लादकर ले जाना[२], दिव्यदृष्टि से यह देखकर कि जगन्नाथपुरी में जगन्नाथजी का कपड़ा आग से जलना चाहता है, कबीर का दूर से ही पानी डालकर आग को बुझा देना[३], और जब बादशाह सिकन्दर लोदी ने पाया कि कबीर स्वयं अपने को ईश्वर कहता है, तो क्रोध मे आकर उन्हे आग में फेंकवाना, पर उनका उससे साफ बच जाना, फिर उन्हें चिरवाने के लिए हाथी भेजवाना, पर उनके सामने से मारे डर के हाथी का भाग जाना, इत्यादि।

आयु का प्रायः सारा ही भाग मोक्षदायिनी काशीपुरी में कबीर साहब ने बिताया, पर मृत्यु के समय वे मगहर चले आये—

---

१. अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा संपादित कबीर-वचनावली
२. नाभाकृत भक्तमाल—प्रियादास की टीका
३. नाभाकृत भक्तमाल—प्रियादास की टीका

सकल जन्म सिवपुरी बिताया,
मरति बार मगहर उठि धाया ।

प्रसिद्ध है कि काशी मे प्राण छोडने से मुक्ति मिलती है, और मगहर मे मरने से नरक। पर कबीर इस लोकप्रचलित अन्ध धारणा के कायल नही थे। उन्होंने कहा—

जो कासी तन तजै कबीरा ।
तो रामहि कौन निहोरा ?

कहते है कि मगहर मे कबीर साहब के हिन्दू और मुसल्मान शिष्यो मे उनके शव को लेकर झगडा खडा हो गया—हिन्दू कहते थे कि हम दाह-संस्कार करेंगे, और मुसल्मान चाहते थे कि उन्हे वे दफनायेंगे। मगर जब कफन को उठाकर देखा तो वहाँ कबीर साहब का शव नहीं था, उसकी जगह कुछ फूल बिखरे पडे थे। हिन्दू-मुसल्मानों ने उन फूलो को आपस मे आधा-आधा बाँट लिया।

भक्तवर हरिराम व्यास (रचना-काल सवत् १६२०) ने एक पद मे कहा है—

कलि मे साँचो भक्त कबीर ।
पाच तत्त ते देह न पाई, ग्रस्यौ न काल सरीर ।।

कबीर साहब की जैसी बानी अलौकिक, वैसे ही उनकी लोक-प्रसिद्ध जीवन-कथा भी अलौकिक। कबीर एव उनकी कोटि के अन्य सन्तों की जीवन-कथाएँ तथाकथित इतिहास की वस्तु नही हैं। उन्होंने कहाँ, कब, किस कुल मे पचरग चोला धारण किया, और कहाँ और कब उसे उतारकर रख दिया इस सबकी खोज मे उलझना व्यर्थ-सा लगता है। उनका जीवन-दर्शन तो उनकी रसवती बानी के पद-पद मे झलकता है। तो फिर उसीको साधना के सहारे गहरे उतरकर क्यो न खोजा जाये ?

बानी-परिचय

भक्तमाल मे नाभाजी ने कहा है—
'आरूढ दसा ह्वै जगत पर मुख देखी नाहिन भनी'

कबीर ने जो कुछ भी कहा अपने खुद के जीवित-जाग्रत अनुभव से कहा, दूसरों के मुँह की कही बात उन्होंने नहीं कही। पढ़-पढकर भी कोई बात नही कही—

'मसि कागद छूयौ नही, कलम गही नहि हाथ।'

जो कहा अनूठा कहा, किसीका जूठा नही। इसीलिए जिस किसीने केवल शास्त्रीय पाडित्य का सहारा लेकर कबीर के सिद्धातों की गवेषणा और आलोचना की, वह अपने प्रयत्न में प्रायः सफल नही हुआ। कबीर के तत्त्वदर्शन की थाह दार्शनिक विवेचन और विश्लेषण के द्वारा नहीं, प्रत्युत सत्य की सहज साधना के द्वारा ही किया जा सकता है। कबीर की बानी मे जहाँ हम ज्ञान-विज्ञान का सूक्ष्म-से-सूक्ष्म निरूपण पाते है, वहाँ योग का गूढातिगूढ भेद भी हमे मिलता है और भक्ति का गहरे-से-गहरा रहस्यवाद भी। वेदान्त भी उसमे पूरा-पूरा उतरा है, और साथ ही सूफी सिद्धात भी। किन्तु वहाँ उनकी तत्त्वदर्शन की विविध विवेचनाएँ तथा मान्यताएँ उन्ही सब अर्थो मे नही मिलेगी जिन अर्थों मे कि उन्हे हम अनेक शास्त्रों मे सामान्यतया स्थिर पाते हैं, परिणामतः उनके आधार पर कबीर के स्वानुभूत तत्त्व-दर्शन का विवेचन और विश्लेषण एकागी या अधूरा रहता है।

कबीर की निपट गहरी और ऊँचे घाट की बानी के विषय मे ऊपर-ऊपर से कुछ कहा जा सकता है, तो केवल इतना ही कि—

१. उसमे निरपेक्ष ज्ञान-विज्ञान की ओर पद-पद पर गूढ सकेत हैं। पर वह लोगों को धोखे मे नही रखना चाहती। वह 'गुन मे निरगुन की और निरगुन मे गुन' की बाट बताती है—निर्गुण भी उसका अनूठा और सगुण भी उसका अनूठा। उसका प्रतिपाद्य ब्रह्म इसी प्रकार द्वैत और अद्वैत दोनो से परे और ऐसा ही उसका राम भी।

२. उस बानी में जगह-जगह पर योगमार्ग का उल्लेख आया है। पर रास्ता वह वैसा टेढा-मेढा और विकट नही है। तथापि योगी तो उसे फिसलता हुआ ही दिखाई देता है, योग उसका सहजही-सहज है, वैसा ही जैसा कि आत्मा का परमात्मा से मिलन। खुद ही थके-माँदे मार्गदर्शक प्रियतम के निकट कैसे पहुँचा सकते हैं?

३. भक्ति-मार्ग पर चलने की वह सलाह देती है। कहती है बडे चाव से, 'जतन करो सखि पिया मिलन का।' राह रपटीली है, उसपर गिर-गिरकर और उठ-उठकर बडे जतन से चलना पडता है, और जब उस ठौर पर पहुँचते हैं, लाल की लाली मे सब कुछ रंगा हुआ दीखता है। सो, 'भक्तिभार्ग' भी उसका अपना ही है।

४. बाह्याचारों की उसे तनिक भी अपेक्षा नही---उसकी दृष्टि मे वह कुबाट है। भले ही चला करे पडित पाडे और शेख-मुल्ले उस रास्ते से; वह अपने साधु भाई को उसपर कभी नही चलने व भटकने देगी।

५. हिन्दू और मुसल्मान दोनों ही, उसकी नजर मे, सही रास्ते नही जा रहे, दोनो ही अह या खुदी को गले से लगाये उलटी राह जा रहे थे, तो उन्हें तो उसे फटकारना ही था, उन्हे ही जो वेद और कुरान की गहराई मे न पैठकर उनके पन्नों के उलटने-पलटने मे अपनी पडिताई और मुल्लाई को खर्च कर रहे थे।

६. सत्य की राह में जो भी आडे आया, उसे उसने बख्शा नहीं। कर्मकाड, जात-पॉत और छूत-छात को चिपटाये जिसे भी उसने देखा गुमराह पाया, और उसे झकझोर डाला। उसके प्रखर प्रवाह मे तिनके की तरह बह गये सारे बाह्याचार, सारे मिथ्याचार।

७. कुछ उलटबॉसियॉ भी उस बानी मे आई हैं--मौज के अटपटे उद्गार हैं वे। 'सहज'-साधना में उनका वैसे खास महत्त्व नहीं।

८. भाषा को उस बानी का 'अधिनायकत्त्व' स्वीकार करना पडा। उसके विद्युत-वेग को देखकर वह दिङ-मूढ-सी हो गई। उसके एक-एक इंगित पर मोहित भाषा ने अपने रूप को कॉपते हुए साधा और सॅवारा।

ऐसी है कबीर की अनूठी बानी! कौन और कैसे उसका बखान करे! बेचारा पंगु साहित्य-समीक्षक कहॉ पहुँच सकेगा उस अत्यन्त ऊँचे घाटतक!

प्रस्तुत सार-सग्रह मे थोडे-से शब्द और साखिया ही हमने ली हैं, रमैनी नहीं, उलटबॉसी एक भी नही ली। बानी मे ऐसे ही अगों को लिया है, जिनमे सतगुरु और नाम की महिमा, प्रेम और विरह का निरूपण, शील और सदाचार का विवेचन तथा बाह्याचारो और मूढग्राहों का खण्डन किया गया है।

'कबीर-ग्रन्थावली' तथा 'कबीर-वचनावली में से सबदो और साखियो का सग्रह किया गया है। कुछ सबद **'गुरु ग्रन्थ साहब'** मे से भी लिये गये हैं। तीनों ही ग्रन्थों की भाषा मे स्पष्ट अतर है। 'कबीर-ग्रन्थावली' के सबदो और साखियों की भाषा मे पजाबी और राजस्थानी का रूप दिखाई देता है, और 'कबीर-वचनावली' मे सगृहीत बानी की भाषा अधिकाशतः काशी के आसपास बोली-जानेवाली पूर्वी हिन्दी है। कौन पाठ कितना सही है इस विवाद मे न पडकर हम इतना ही कहेंगे कि सतो की बानी गगा के समान है, जिसमे अनेक प्रदेशो या जनपदों मे व्यवहृत शब्द जगह-जगह के जल की तरह समय-समय पर मिलते रहते है, फिर भी बानी के सहज स्वरूप में कोई उल्लेखनीय अतर नही पडता, निज मे वह वैसी की वैसी ही रहती है।

कबीर-ग्रन्थावली—श्यामसुन्दरदास द्वारा सपादित तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित।

कबीर-वचनावली—अयोध्यासिंह उपाध्याय द्वारा सपादित तथा काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा से प्रकाशित।

गुरु ग्रन्थसाहब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर से प्रकाशित।

कबीर—हजारीप्रसाद द्विवेदी, हिन्दी ग्रन्थरत्नाकर कार्यालय, बंबई द्वारा प्रकाशित।

कबीर-पदावली—रामकुमार वर्मा, हिन्दी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग से प्रकाशित।

भक्तमाल—नाभाकृत।

कबीर साहब

सबद

दुलहनी गावहु मंगलचार

हम घरि आये हो राजा राम भरतार ॥

तन रत करि मैं मन रत करिहूँ, पंचतत मोर बराती।

रामदेव मोरै पाँहुने आये, मैं जोबन मैं माती ॥

सरीर सरोबर वेदी करिहू, ब्रह्मा बेद उचारा।

रामदेव संगि भाँवरि लैहूं, धंनि धंनि भाग हमारा ॥

सुर तेतीसूं कौतिग आये, मुनियर सहस अठासी।

कहैं कबीर हम ब्याहि चले हैं, पुरिष एक अबिनासी ॥ १ ॥

अब हम सकल कुसल करि मानां,

स्वान्ति भई तब गोव्यंद जानां ॥

तन मैं होती कोटि उपाधि, उलटि भई सुख सहज समाधि ॥

जम थै उलटि भया है राम, दुख बिसर्‌या सुख कीया विस्राम ॥

बैरी उलटि भये हैं मीता, साषत उलटि सजन भये चीता ॥

सबद

१ भरतार=स्वामी, रस=अनुरक्त, पाहुनैं=अतिथि, वर, भाँवरि=फेरे, अग्नि की परिक्रमा, जो विवाह के समय वर और वधू मिलकरदेते हैं। कौतिग=कौतुक। मुनियर=मुनिवर।

२ कुसल=अच्छा ही अच्छा। स्वाति=स्वात्मस्थ। जम थै‥राम=मृत्यु अब राम की तरह प्रिय और आनन्ददायी हो गई। साषत=शाक्त, शत्रु। सजन=बन्धु। चीता=चित्त में

आपा जांनि उलटि ले आप, तौ नहीं व्यापै तीन्यूं ताप ॥
अब मन उलटि सनातन हूवा, तब हम जांनां जीवत मूवा ॥
कहै कबीर सुख सहज समाऊ, आप न डरौ न और डराऊं ॥२॥

तननां बुनना तज्या कबीर, रांम नांम लिखि लिया सरीर ॥
जब लग भरौं नली का बेह, तब लग टूटै रांम सनेह ॥
ठाढी रोवै कबीर की माय, ए लरिका क्यू जीवै खुदाय ॥
कहै कबीर सुनहु री माई, पूरणहारा त्रिभुवनराई ॥३॥

चलन चलन सबको कहत है, नां जानों बैकुंठ कहां है ॥टेक॥
जोजन एक प्रमिति नही जानै, बातनि ही बैकुंठ बषानै ॥
जब लग है बैकुंठ की आसा, तब लग नहीं हरिचरन-निवासा ॥
कहे सुने कैसै पतिअइये, जब लग तहां आप नही जइये ॥
कहै कबीर यहु कहिये काहि, साध-संगति बैकुंठहि आहि ॥४॥

अपनैं मै रंगि आपनपौ जानूं,
जिहि रंगि जानि ताही कूं मांनूं ॥टेक॥
अभिअंतरि मन रंग समानां, लोग कहै कबीर बौरानां ॥
रंग न चीन्है मूरखि लोई, जिहि रंगि रंग रह्या सब कोई ॥
जे रंग कबहूं न आवै न जाई, कहै कबीर तिहिं रह्या समाई ॥५॥

चित्त मे । आपा··ले आप=देहाभिमान को दूरकर आत्मभाव साधले । सनातन=नित्य, अचचल, आत्मा से भी अभिप्राय है ।

३ नली=नाल, ढरकी के अन्दर की नली, जिसपर तार लपटा रहता है । बेह=छेद । खुदाय=या खुदा । पूरणहारा=पालनेवाला ।

४ प्रमिति=परमिति । पतिअइये=विश्वास करे । आहि=है ।

५ आपनपौ=आत्मस्वरूप । लोई=लोग ।

कैसै होइगा मिलावा हरि सनां,
रे, तू बिपै-बिकारन तजि मनां ॥टेक॥
तै रे, जोग जुगति जान्यां नही, तै गुर का सबद मान्यां नही ॥
गंदी देही देखि न फूलिये, संसार देखि न भूलिये ॥
कहै कबीर मन बहुगुनी, हरिभगति बिनां दुख फुन फुनी ॥६॥

जो पै करता बरण बिचारै,
तौ जनमत तीनि डांडि किन सारै ॥टेक॥
उतपति ब्यंद कहां थै आया, जोति धरी अरु लागी माया ॥
नही को ऊंचा नही को नीचा, जा का प्यड ताही का सींचा ॥
जो तूं बांभन बंभनी जाया, तौ आंन बाट ह्वै काहे न आया ॥
जो तूं तुरक तुरकनी जाया, तौ भीतरि खतनां क्यूं न कराया।
कहै कबीर मधिम नही कोई, सो मधिम जा मुखि रांम न होई ॥७॥

हम न मरै मरिहैं संसारा, हम कूं मिल्या जियावनहारा ॥टेक॥
अब न मरौ, मरनै मन मानां, तेई मुए जिनि रांम न जानां ॥
साकत मरै सन्त जन जीवै, भरि भरि रांम रसांइन पीवै ॥
हरि मरिहैं तौ हमहूं मरिहै, हरि न मरै हम काहे कूं मरिहैं ॥
कहैं कबीर मन मनहि मिलावा, अमर भये सुखसागर पावा ॥८॥

---

६ हरिसना=हरि से। सबद=उपदेश, मत्र। बहुगुनी=अनेक वृत्तियोंवाला। फुनफुनी=पुनः पुनः, बारबार।

७ जोपै ··सारै=यदि सरजनहार ने चार वर्णो के भेद का विचार किया है, तो जन्म से ही एकसमान सबके साथ वह भौतिक, दैहिक और दैविक ये तीन दण्ड क्यो लगा देता ? खतना=सुन्नत, एक मुस्लिम सस्कार, जिसमे मूत्रेन्द्रिय का अगले भाग का चमडा काट देते हैं। भीतर=गर्भ मे ही। मधिम=हलका, उतरकर।

८ साकत=शाक्त, वाममार्गी। रसाइन=प्रेम की मदिरा।

कौन मरै कहु पंडित जनां, सो समझाइ कहौ हम सनां ॥टेक॥
माटी माटी रही समाइ, पवनै पवन लिया संगि लाइ ॥
कहै कबीर सुनि पंडित गुनी, रूप मूवा सब देखै दुनी ॥६॥

लोका जांनि न भूलौ भाई।
खालिक खलक खलक मैं खालिक, सब घट रह्यौ समाई ॥टेक॥
अला एकै नूर उपनाया, ताकी कैसी निंदा।
ता नूर थै सब जग कीया, कौन भला कौन मंदा ॥
ता अला की गति नहीं जांनी, गुरि गुड़ दीया मींठा।
कहै कबीर मैं पूरा पाया, सब घटि साहिब दीठा ॥१०॥

हम तौ एक एक करि जानां।
दोइ कहै तिनहीं कौं दोजग, जिन नाँहिंन पहिचांनां ॥टेक॥
एकै पवन एक ही पानीं, एक जोति संसारा।
एक ही खाक घड़े सब भांडे, एक ही सिरजनहारा ॥
जैसै बाढ़ी काष्ठ ही काटै, अगिनि न काटै कोई।
सब घटि अंतरि तूं ही व्यापक, धरै सरूपै सोई ॥
माया मोहे अर्थ देखि करि, काहे कूं गरबानां।
नरभै भया कछू नहीं व्यापै, कहै कबीर दिवानां ॥११॥

---

९ सनां=से।

१० खालिक=सृष्टिकर्त्ता, परमात्मा। खलक=सृष्टि। अला=अल्लाह, ईश्वर। नूर=आदिज्योति, ईश्वर-अंश जीवात्मा। उपनाया=पैदा किया। दीठा=देखा

११ एक-एक करि=अभेद रूप से। दोजग=दोजख, नरक, दुर्गति। बाढ़ी=बढ़ई दिवाना=दीवाना, मस्त।

अब का डरौं, डर डरहि समानां, जब थैं मोर तोर पहिचानां ॥टेक॥
जब लग मोर तोर करि लीन्हा, भै भै जनमि जनमि दुख दीन्हा ।
आगम निगम एक करि जानां, ते मनवां मन माहि समांनां ।
जब लग ऊंच नीच करि जांना, ते पसुवा भूले भ्रम नानां ।
कहि कबीर मैं मेरी खोई, तबहि रांम अवर नहीं कोई ॥१२॥

बागड़ देश लूवन का घर है,
तहां जिनि जाइ दाझन का डर है ॥टेक॥
सब जग देखौं कोई न धीरा, परस धूरि सिरि कहत अबीरा ॥
न तहां सरवर न तहां पाणी, न तहां सतगुर साधू बांणी ॥
न तहां कोकिल न तहां सूवा, ऊँचै चढ़ि चढि हंसा मूवा ॥
देस मालवा गहर गंभीर, डग डग रोटी पग पग नीर ॥
कहै कबीर घरही मन मानां, गूंगे का गुड़ गूंगै जानां ॥१३॥

हरि ठग जग कौं ठगौरी लाई,
हरि कै बियोग कैसैं जीऊं मेरी माई । टेक ॥
कौन पुरिष को काकी नारी, अभिअंतरि तुम्ह लेहु बिचारी ॥
कौन पूत को काकौ बाप, कौन मरै कौन करै संताप ॥
कहै कबीर ठग सों मनमानां, गई ठगौरी ठग पहिचानां ॥१४॥

---

१२ जबथै ··पहिचाना=जबसे 'मेरा तेरा' की हकीकत जानली, जो निश्चय ही मिथ्या है, जब से अभेद का ज्ञान पा लिया। भै भै=भ्रम-भ्रमकर, अनेक योनियां मे चक्कर लगाकर। पसुवा=मनुष्यरूपी पशु, अत्यंत मूढ।

१३ बागड=मरुभूमि, यहाँ त्रिताप-संतप्त संसार से अभिप्राय है। लूवन का घर=जहाँ दिन-रात लुवे (गरम हवा) चलती हो। दाझन का=जलने का। मालवा=प्रियतम के हरेभरे लोक से अभिप्राय है।

१४ ठग=मन को चुरा लेनेवाला, यहाँ प्रियतम प्रभु को प्रेमातिरेक से 'ठग' कहा है। ठगौरी=मोहिनी।

का मांगूं कुछ थिर न रहाई, देखत नैन चल्या जग जाई ॥टेक॥
इक लप पूत सवा लप नाती, ता रांवन घरि दीवा न बाती ॥
लंका सा कोट समद सी खाई, ता रांवन की षबरि न पाई ॥
आवत संग न जात संगाती, कहा भयौ दरि बांधे हाथी ॥
कहै कबीर अंत की बारी, हाथ झाड़ि जैसैं चले जुवारी ॥१५॥

काहे कूं माया दुख करि जोरी,
हाथि चूंन, गज पांच पछेवरी ॥टेक॥
नां को बंध न भाई साथी, बांधे रहे तुरंगम हाथी ॥
मैड़ी महल बावड़ी छाजा, छाड़ि गये सब भूपति राजा ॥
कहै कबीर रांम ल्यौ लाई, धरी रही माया काहू खाई ॥१६॥

हरि जननी मैं बालिक तेरा, काहे न औगुंण बकसहु मेरा ॥टेक॥
सुत अपराध करै दिन केते, जननी कै चित रहै न तेते ॥
कर गहि केस करै जौ घाता, तऊ न हेत उतारै माता ॥
कहै कबीर एक बुधि बिचारी, बालक दुखी दुखी महतारी ॥१७॥

गोव्यंदे तुम्ह थै डरपौं भारी ।
सरणाई आयौ क्यूं गहिये, यहु कौन बात तुम्हारी ॥टेक॥
धूप दाझतै छांह तकाई, मति तरवर सचिपाऊं ।
तरवरमांहैं ज्वाला निकसै, तौ क्या लेइ बुझाऊं ॥

---

१५ देखत नैन=आँखों के देखते-देखते । संगाती=साथी । दरि=दर, द्वार ।

१६ पछेवरी=पिछौरी, छोटा-सा दोपट्टा । बंध=बंधु । मैडी=मेड, राज्य की सीमा। छाजा=छज्जा ।

१७ बकसहु= माफ करो । न हेत उतारै=स्नेहभाव मे कमी नहीं करती है ।

१८ सरणाई ' गहिये=शरणागत को कैसे अपनाया जाय इस प्रकार का सोच-

जे बन जलै त जल कूं धावै, मति जल सीतल होई।
जलही मांहि अगिनि जे निकसै, और न दूजा कोई॥
तारणतिरण तिरण तू तारण, और न दूजा जानौं।
कहै कबीर सरनांई आयौ, आंन देव नहीं मानौं॥१८॥

मै गुलाम मोहि बेचि गुसाईं, तन मन धन मेरा रांमजी कै ताईं॥
आनि कबीरा हाटि उतारा, सोई गाहक सोई बेचनहारा॥
बेचै राम तौ राखै कौन, राखै राम तौ बेचै कौन॥
कहै कबीर मै तन मन जार्‌या, साहिब अपना छिन न बिसार्‌या॥

अब मोहि राम भरोसा तेरा, और कौन का करौं निहोरा॥टेक॥
जाकै राम सरीखा साहिब भाई, सो क्यूं अनत पुकारन जाई॥
जा सिरि तीनि लोक कौ भारा, सो क्यू न करै जन का प्रतिपारा।
कहै कबीर सेवौ बनवारी, सींचौ पेड़ पीवै सब डारी॥२०॥

हरि मेरा पीव माई, हरि मेरा पीव,
हरि बिन रहि न सकै मेरा जीव॥टेक॥
हरि मेरा पीव मैं हरि की बहुरिया, राम बड़े मैं छुटक लहुरिया॥
किया स्यंगार मिलन कै ताईं, काहे न मिलौ राजा रांम गुसाईं॥
अब की बेर मिलन जो पाऊं, कहै कबीर भौ-जलि नहीं आऊं॥२१॥

विचार करना। दाझतै=जलते हुए। मति=नहीं। रुचि=चैन, शान्ति। तरुवर और जल से यहाँ सासारिक आश्रय-स्थान अथवा शान्ति पाने के उपायों से अभिप्राय है।

२० निहोरा=विनती, चिरौरी। अनत=अन्यत्र, दूसरी जगह। प्रतिपारा=प्रतिपाल। बनवारी=वनमाली, परमात्मा।

२१ बहुरिया=वधू। लहुरिया=उम्र मे छोटी। स्यंगार=शृंगार।

राम बान अन्ययाले तीर, जाहि लागैं सो जानैं पीर ।।टेक।।
तन मन खोजौं चोट न पाऊं, औषध मूली कहां घसि लाऊं ।।
एकहीं रूप दीसै सब नारी, ना जानौ को पीयहि पियारी ।।
कहै कबीर जा मस्तकि भाग, ना जानूं काहू देई सुहाग ।।२२।।

रांम बिन तन की ताप न जाई,
जल मैं अगिनि उठी अधिकाई ।।टेक।।
तुम्ह जलनिधि मैं जलकर मीनां,
जल मैं रहौ जलहि बिन षींना ।।
तुम्ह प्यंजरा मैं सुवनां तोरा,
दरसन देहु भाग बड़ मोरा ।।
तुम्ह सतगुर मैं नौतम चेला,
कहै कबीर रांम रमूं अकेला ।।२३।।

राम भणि राम भणि राम चिंतामणि,
भाग बड़े पायो छाडै जिनि ।।टेक।।
असंत संगति जिनि जाइ रे भुलाइ,
साध संगति मिलि हरि गुण गाइ ।।
रिदा कवल मैं राखि लुकाइ,
प्रेम गांठ दे ज्यूं छूटि न जाइ ।।
अठ सिधि नव निधि नांव मंझारि,
कहै कबीर भजि चरन मुरारि ।।२४।।

---

२२ अन्ययाले=अनियारे, तेज नोकवाले। नारी=स्त्री, जीवात्मा। काहू=किसको।

२३ षीना=क्षीण, दुर्बल। सुवना=तोता। नौतम=बिल्कुल नया।

२४ भणि=कह, जप। रिदा कवल=हृदय-कमल। राखि लुकाइ=छिपाकर रख। ज्यू=जिससे कि। नाव मझारि=रामनाम मे ही।

रांम बिनां ध्रिग ध्रिग नर नारी, कहा तैं आइ कियो संसारी ॥टेक।
रज बिनां कैसो रजपूत, ग्यांन बिना फोकट अवधूत ॥
गनिका कौ पूत पिता कासौं कहै, गुर बिन चेला ग्यांन न लहै ॥
कवारी कंन्यां करै स्यगार, सोभ न पावै बिन भरतार ॥
कहै कबीर हूं कहता डरूं, सुपदेव कहै तौ मैं क्या करूं ॥२५॥

डगमग छाड़ि दे मन बौरा।
अब तौ जरे बरें बनि आवै, लीन्हों हाथ सिंधौरा ॥टेक॥
होइ निसंक मगन ह्वै नाचौ, लोभ मोह भ्रम छाडौ।
सूरौ कहा मरन थैं डरपै, सती न संचै भांडौ।
लोक बेद कुल की मरजादा, इहै गलै मैं पासी।
आधा चलिकरि पीछा फिरिहै, ह्वै है जग मैं हासी ॥
यहु ससार सकल है मैला, राम कहै ते सूचा।
कहै कबीर नाव नहीं छाड़ौ, गिरत परत चढ़ि ऊंचा ॥२६॥

ते हरि के आवैहिं किहि कामां, जे नहीं चीन्हैं आतमरामां ।टेक।
थोरी भगति बहुत अहकारा, ऐसे भगता मिलै अपारा ॥
भाव न चीन्है हरि गोपाला, जांनि क अरहट कै गति माला ॥
कहै कबीर जिनि गया अभिमांनां, सो भगता भगवत समांनां ॥२७।

जौ पै पिय के मनि नही भाये, तौ का परोसनि कै हुलराये ॥
का चूरा पाइल झमकांयै कहा भयो विछवा ठमकांयै ॥

---

२५ रज=राज्य। अवधूत=संन्यासी। सुपदेव करूं=यह मै नही कहता हूँ, यह तो परमहस शुकदेवने भागवत मे कहा है।

२६ डगमग=दुविधा। सिंधौरा=सिंदोरा, सौभाग्य सूचक सिंदूर रखने की डिबिया, जिसे लेकर सती अपने पति के शव के साथ जाती थी। न सचै भाडौं= शरीर को रखने का लोभ नही करती है। पासी=फाँसी। सूचा=पवित्र। चढि ऊँचा=ऊँचे ब्रह्मपद पर पहुँच जाओ।

का काजल स्यंदूर के दीयैं, सोलह स्यंगार कहा भयौ कीयैं ॥
अंजन संजन करै ठगौरी, का पचि मरै निगौड़ी बौरी ॥
जौ पैं पतिव्रता है नारी, कैसै ही रहौ सो पियहि पियारी ॥
तन मन जोबन सौंपि शरीरा, ताहि सुहागनि कहै कबीरा ॥२८॥

है हरिजन थै चूक परी, जे कछु आहि तुम्हारौ हरी ॥टेक॥
मोर तोर जब लग मैं कीन्हां, तब लग त्रास बहुत दुख दीन्हां ॥
सिध साधिक कहैं हम सिधि पाई, रांम नाम बिन सबै गवाई ।
जे वैरागी आस पियासी, तिनकी माया कदे न नासी ॥
कहै कबीर मैं दास तुम्हारा, माया खंडन करहु हमारा ॥२९॥

सब दुनी संयांनी मैं बौरा, हंम विगरे बिगरौ जिनि औरा ॥टेक॥
मैं नहीं बौरा राम कियौ बौरा, सतगुर जारि गयौ भ्रम मोरा ॥
विद्या न पढ़ूं बाद नहीं जानूं, हरि गुन कहत सुनत बौरानूं ॥
कांम क्रोध दोऊ भये बिकारा, आपहिं आप जरैं संसारा ॥
मींठो कहा जाहि जो भावै, दास कबीर रांम गुन गावै ॥३०॥

बहुरि हम काहे कूं आवहिंगे ।
बिछुरे पचतत्त की रचनां, तब हम रांमहि पावहिंगे ॥टेक॥
पृथी का गुण पांणी सोष्या पांणी तेज मिलावहिंगे ।

---

२८ तो का हुलराये=तब पडोसिन के पुत्र को दुलार प्यार करने से क्या होता है ? चूरा=चूडा, कडा । पाइल=पाजेब । झमकायै=बजाना और चमकाना । बिछुवा=पैर की अगुलियो मे पहनने का गहना । ठगौरी=मोहिनी । निगोडी=जिसके आगे-पीछे कोई न हो, अभागिनी ।

२९ कदे=कभी ।

३० बौरा=बावला, पागल । औरा=और कोई । बौरानू=पागल हो गया ।

३१ सबद=आकाश से तात्पर्य है । गालि तवावहिगे=तपकर गल जायेगे ।

तेज पवन मिलि, पवन सबद मिलि, सहज समाधि लगावहिंगे।
जैसै बहुकंचन के भूषन, ये कहि गालि तवांवहिंगे।
ऐसै हम लोकं बेद के बिछुरें सुन्निहि मांहिं समांवहिंगे॥
जैसैं जलहि तरंग तरंगनी ऐसै हम दिखलांवहिंगे।
कहै कबीर स्वांमी सुखसागर हंसहि हंस मिलांवहिंगे॥३१॥

कहा करौ कैसै तिरौ भौजल अति भारी।
तुम्ह सरणागति केसवा राखि राखि मुरारी॥टेक॥
घर तजि बनखंडि जाइये, खनि खइये कंदा।
बिषै बिकार न छूटई, ऐसा मन गंदा॥
बिष बिषिया की बासना, तजौ तजी नहीं जाई।
अनेक जतन करि सुरझिहौं, फुनि फुनि उरझाई॥
जीव अछित जोबन गया, कछू कीया न नीका।
यहु हीरा निरमोलिका, कौड़ी पर बीका॥
कहैं कबीर सुनि केसवा, तूं सकल बियापी।
तुम्ह समांनि दाता नहीं, हम से नहीं पापी॥३२॥

पषा-पषी कै पेपणै सब जगत भुलांनां।
निरपष होइ हरि भजै, सो साध सयांनां॥टेक॥
ज्यूं पर सूं षर बधिया यूं बधे सब लोई।
जाकै आत्म द्रिष्टि है साचा जन सोई॥

सुन्निहि मांहि=शून्य मे ही। समावहिंगे=लय हो जायेंगे। हंसहि हंस मिलावहिंगे=मुक्तात्मा को मुक्तात्मा से मिला देंगे।

३२ खनि=खोदकर। बिष-बिषिया=इन्द्रियों के विषैले भोग। फुनि फुनि=पुनः पुनः, फिर फिर।

३३ पषापषी के पेषणे=पक्ष और विपक्ष के विचार मे। निरपष=निष्पक्ष।

एक एक जिनि जाणियां, तिनही सचुपाया ।
प्रेमप्रीति ल्यौलीन मन ते बहुरि न आया ।
पूरे की पूरी द्रिष्टि पूरा करि देखै ॥
कहै कबीर कछू समझि न परई या कछू बात अलेखै ॥३३॥

तेरा जन एक आध है कोई ।
कांम क्रोध अरु लोभ बिबर्जित हरिपद चीन्है सोई ॥टेक॥
राजस तांमस सातिग तीन्यूं, ये सब तेरी माया ।
चौथे पद कौं जे जन चीन्है तिनहि परमपद पाया ॥
असतुति निंद्या आसा छांडै, तजै मांन अभिमांनां ।
लोहा कचन समि करि देखै, ते मूरति भगवानां ॥
च्यतै तो माधो च्यंतामणि, हरिपद रमै उदासा ।
त्रिस्नां अरु अभिमांन रहित है, कहै कबीर सो दासा ॥३४॥

तूं माया रघुनाथ की खेलण चली अहेड़ै ।
चतुर चिकारे चुणि चुणि मारे, कोई न छोड्या नेड़ै ॥टेक॥
मुनियर पीर डिगम्बर मारे, जतन करता जोगी ।
जंगल महिं के जगम मारे, तू रे फिरै बलिवर्ती ॥
वेद पढता बांम्हण मारा, सेवा करतां स्वांमी ।
अरथ करंता मिसर पछाड्या, तूं रे फिरै मैमती ॥

पर=तिनका, घास । लोई=लोग । एक-एक=अभेदरूप । बहुरि न आया=पुनर्जन्म नहीं हुआ । अलेपै=जिसका चिंतन न किया जा सके ।

३४ बिबर्जित=रहित । सातिग=सात्त्विक । चौथा पद=गुणातीत, समाधि-अवस्था । उदासा=अनासक्त ।

३५ अहेड़ै=अहेर, शिकार । चिकारा=छिकरा, हिरन की जाति का एक फुर्तीला जानवर । नेड़ै=पास । डिगम्बर=दिगम्बर, नग्न साधु ।

सापित कै तूं हरता करता, हरि-भगतन कै चेरी ।
दास कबीर रांम कै सरनैं, ज्यूं लागी त्यूं तोरी ॥३५॥

जग सूं प्रीति न कीजिये, समझि मन मेरा ।
स्वाद हेत लपटाइए, को निकसै सूरा ॥
एक कनक अरु कांमिनी जग मैं दोइ फंदा ।
इनपै जो न बधावई ताका मैं बंदा ॥
देह धरे इन मांहि वास कहु कैसै छूटे ॥
सीव भये ते ऊबरे जीवत ते लूटे ॥
एक एक सूं मिलि रह्या तिनहीं सचुपाया ।
प्रेम मगन लैलीन मन सो बहुरि न आया ॥
कहै कबीर निहचल भया, निरभै पद पाया ।
ससा ता दिन का गया, सतगुर समझाया ॥३६॥

माधौ, मैं ऐसा अपराधी। तेरी भगति हेत नहीं साधी ।।टेक॥
कारनि कवन आइ जग जनम्यां जनमि कवन सचुपाया ।
भौजल-तिरण चरण च्यंतामंणि ता चित घड़ी न लाया ॥
परनिंद्या परधन परदारा परअपवादै सूरा ।
ताथैं आवागमन होइ फुनि फुनि ता पर सग न चूरा ॥
कांम क्रोध माया मद मछर ए संतति हम मांही ।

जगम=चलता-फिरता साधु। मिसर=कथावाचक से अभिप्राय है। मैमती=मतवाली। सापित=वाममार्गी, हरि-विमुख । ज्यूं लागी त्यूं तोरी=आसक्ति को तत्काल तोड दिया ।

६ सीव भये ते ऊबरे=जो शव अर्थात् जीवन-मृतक हो गये, वे ही बचे। सचुपाया=शान्ति पाई ।

१७ मंछर=मत्सर, डाह । संतति=सतत, सदा । धीर मति राखहु=देर न

दया धरम ग्यांन गुर सेवा ए प्रभु सुपिनैं नांहीं ॥
तुम्ह कृपाल दयाल दमोदर, भगत-बछल भौ-हारी ।
कहै कबीर धीर मति राखहु, सासति करौ हमांरी ।।३७।।

कब देखूं मेरे राम सनेही । जा बिन दुख पावै मेरी देही ।।टेक।।
हूँ तेरा पंथ निहारूं स्वामी, कब रमि लहुगे अंतरजामी ॥
जैसै जल बिन मीन तलपै, ऐसै हरि बिन मेरा जियरा कलपै ॥
निसदिन हरि बिन नींद न आवै, दरसपियासी रांम क्यूं सचुपावै ॥
कहै कबीर अब विलंब न कीजै, अपनौ जांनि मोहिं दरसन दीजै ॥३८॥

मैं जन भूला तूं समझाइ ।
चित चंचल रहै न अटक्यौ विषै-बन कूं जाइ ॥
संसार सागर मांहिं भूल्यो थक्यौ करत उपाइ ।
मोहिनी माया बाघिनी थैं, राखिलै रांमराइ ॥
गोपाल सुनि एक बीनती, सुमति तन ठहराइ ।
कहै कबीर यह काम रिपु है, मारै सबकूं ढाइ ॥३९॥

जाइ रे दिन ही दिन देहा । करिलै बौरी रांम सनेहा ।।टेक।।
बालापन गयौ, जोबन जासी । जुरा मरण भौ संकट आसी ॥
पलटे केस नैन जल छाया । मूरिख चेति बुढ़ापा आया ॥
रांम कहत लज्या क्यूं कीजे । पल पल आउ घटै तन छीजै ॥
लज्या कहै हूँ जम को दासी । एकै हाथि मुदिगर, दूजै हाथि पासी ॥
कहै कबीर तिनहूं सब हार्‍या । रांम नांम जिनि मनहु बिसार्‍या ।४०।

करो, माफ न करो । सासति=यातना, दंड ।
३८ रमि लहुगे=हृदय में बसकर मुझे अपनाओगे । कलपै=बिलखता है ।
४० जासी=जायेगा । जुरा=जरा, बुढापा । भौ=भय । आसी=आयेगा । पलटे केस=काले बाल सफेद हो गये । आउ=आयु । छीजै=क्षीण होता जाता है ।

कहु पांड़े सुचि कवन ठावं, जिहि घरि भोजन बैठि खाव ।।टेक।।
माता जूठी पिता पुनि जूठा, जूठे फल चित लागे ।
जूठा आंवन जूठा जानां, चेतहु क्यूं न अभागे ।।
अंन जूठा पांनी पुनि जूठा, जूठे बैठि पकाया ।
जूठी कड़छी अंन परोस्या, जूठे जूठा खाया ।।
चौका जूठा गोबर जूठा, जूठी सभी पसारा ।
कहै कबीर तेइ जन सूचे, जे हरि भज तजहिं बिकारा ।।४१।।

अलह रांम जीऊं तेरे नाई, बंदे ऊपरि मिहर करौ मेरे सांई ।।टेक।।
क्या ले माटी भुंइ सूं मारै, क्या जल देह न्हवाये ।
जोर करै मसकीन सतावै, गुन ही रहै छिपाये ।।
क्या तु जू जप मंजन कीये, क्या मसीति सिर नांये ।
रोजा करै निमाज गुजारै, क्या हज कावै जाये ।।
बांम्हण ग्यारसि करै चौबीसौं, काजी मुहरम जांन ।
ग्यारह मास जुदे क्यूं कीये, एकहि मांहि समांन ।।
जौ रे खुदाइ मसीति बसत है, और मुलिक किस केरा ।
तीरथ मूरति रांम-निवासा, दुहु मैं किनहूं न हेरा ।।
पूरब दिसा हरी का बासा, पच्छिम अलह मुकामां ।
दिल ही खोजि दिलै दिल भीतरि, इहां रांम रहिमांनां ।।

---

४१ आवन=जन्म । जाना=मरण । कडछी=चम्मच । पसारा=सृष्टि ।
सूचे=पवित्र ।

४२ नाई=नाम पर । जोर=जुल्म । मसकीन=गरीब, वेचारा । तु जू=तो जो ।
मसीति=मसजिद । ग्यारसि=एकादशी । मुहरम=मोहर्रम । ग्यारह समान=
यदि एक रमजान का महीना ही धर्म का महीना है, तो फिर अलग ग्यारह

जेती औरति मरदां कहिये, सब मैं रूप तुम्हारा ।
कबीर पंगुड़ा अलह रांम का, हरि गुर पीर हमारा ॥४२॥

मन रे, जब तै राम कह्यौ,
पीछै कहिबे कौ कछू न रह्यौ ॥टेक॥
का जोग जगि तप दानां, जौ तै रांम नांम नहीं जांनां ॥
कांम क्रोध दोऊ भारे, ताथै गुर प्रसादि सब जारे ॥
कहै कबीर भ्रम नासी, राजा रांम मिले अबिनासी ॥४३॥

तुम्ह घरि जाहु हमांरी बहनां, बिष लागै तुम्हारे नैनां ॥
अंजन छाड़ि निरंजन राते, नां किसही का दैनां ।
बलि जाउं ताकी जिनि तुम्ह पठई, एक माइ एक बहनां ॥
राती खांडो देखि कबीरा, देखि हमारा सिंगारौ ।
सरग लोक थैं हम चलि आई, करन कबीर भरतारौ ॥
सर्ग लोक मैं क्या दुख पड़िया, तुम आई कलि मांहीं ।
जाति जुलाहा नाम कबीरा, अजहूं पतीज्यौ नांहीं ॥
तहां जाहु जहां पाट पटंबर, अगर चंदन घसि लीनां ।
आइ हमारैं कहा करौगी, हम तौ जाति कमीनां ॥

महीने क्यो रचे, फिर तो एक ही मास होना चाहिए था । हेरा=देखा, समझा । पगुडा=मूर्ख शिष्य ।

४३ जगि=यज्ञ । भारे=भारी (शत्रु) । प्रसादि=कृपा से ।

४४ बहना=बहिन, मोहिनी माया से अभिप्राय है । अजन=नाशवान ससार । निरंजन=अक्षय पुरुष, माया से निर्लिप्त ईश्वर । एक माइ एक बहना=तुम मा और बहिन के बराबर हो । राती खाडी=रक्त से रँगी तलवार, घातक मोहिनी डालनेवाली । पतीज्यौ नाही=विश्वास नही करती हो । जिनि···धागै=जिसने हमे रचा, और सब कुछ देकर हमे उपकृत किया, उसीके प्रेम के कच्चे धागे से हम बँधे हुए हैं, हम उसी मालिक के

जिनि हम साजे साज्य निवाजे, बांधे काचै धागै ।
जे तुम्ह जतन करौ वहुतेरा, पांणी आगि न लागै ॥
साहिब मेरा लेखा मांगै, लेखा क्यूं करि दीजै ।
जे तुम जतन करौ बहुतेरा, तौ पाहण नीर न भीजै ॥
जाकी मै मछी सो मेरा मछा, सो मेरा रखवालू ।
टुक एक तुम्हारै हाथ लगाऊं, तौ राजा रांम रिसालू ॥
जाति जुलाहा नाम कबीरा, बनि बनि फिरौ उदासी ।
आसिपासि तुम्ह फिरि फिरि बैसौ, एक माउ एक मासी ॥४४॥

रे सुख इब मोहि बिष भरि लागा ।
इनि सुख डहके मोटे मोटे केतिक छत्रपति राजा ॥टेक॥
उपजै-बिनसै जाइ बिलाई, सपति काहू कै सगि न जाई ॥
धन-जोबन गरव्यौ ससारा, यहु तन जरिबरि ह्वै है छारा ॥
चरन कवल मन राखिले धीरा, रांम रमत सुख, कहै कबीरा ॥४५॥

रांम राइ भई बिगूचनि भारी,
भले इन ग्यांनियन थैं संसारी ॥टेक॥
इक तप तीरथ औगांहै, इक मांनि महातम चाहैं ॥
इक मैं-मेरी मै बीझै, इक अहमेव मै रीझै ॥
इक कथि-कथि भरम लगावैं, संमिता सी बस्त न पावै ॥
कहै कबीर का कीजै, हरि सूझै सो अजन दीजै ॥४६॥

अनन्य सेवक हैं। पाहण नीर न भीजै=पत्थर के अंदर पानी नहीं पैठ सकता, मोहिनी माया की दाल गलने की नहीं। उदासी=विरक्त। रिसालू=नाराज होगे। वैसौ=बैठती हो। एक माउ एक मासी=तुम मा और मौसी के बराबर हो।

४५ इब=अब। बिष भरि=विष के जैसा। डहके=ठग लिये।

४६ बिगूचनि=अड़चन, असमजस। ससारी=दुनियादार। औगाहैं=अवगाहन अर्थात् स्नान करते हैं। बीझै=लिप्त होते हैं, फँसते हैं।

बिरहिनी फिरै है नाथ अधीरा ।
उपजि बिनां कछू समझि न परई, बांझ न जांनै पीरा ॥
या बड़ बिथा सोई भल जांनै, रांम-बिरह-सर मारी ।
कै सो जांनै, जिनि यहु लाई, कै जिनि चोट सहा री ॥
सग की बिछुरी मिलन न पावै, सोच करै अरु काहै ।
जतन करै अरु जुगति विचारै, रटै रांम कूं चाहै ॥
दीन भई बूझै सखियन कौं, कोई मोहि रांम मिलावै ।
दास कबीर मीन ज्यूं कलपै, मिलै भलै सचु पावै ॥४७॥

तुम्ह बिन राम कवन सौं कहिये, लागी चोट बहुत दुख सहिये ॥
बेध्यौ जीव बिरह कै भालै, राति दिवस मेरे उर सालै ॥
को जांनै मेरे तन की पीरा सतगुर सबद बहि गयौ सरीरा ।
तुम्ह से बैद न हम से रोगी, उपजी बिथा कैसै जीवै बियोगी ॥
निस बासुरि मोहि चितवत जाई, अजहूँ न आइ मिले रांमराई॥
कहत कबीर हमकौं दुख भारी, बिन दरसन क्यूं जीवहि मुरारी ।४८।

चलौ सखी जाइये तहां जहं गयें पाइये परमानंद ॥टेक॥
यहु मन आमन धूमनां, मेरौ तन छीजत नित जाइ ।
च्यंतामणि चित चोरियौ, ताथै कछू न सुहाइ ॥
सुनि सखि सुपिनै की गति ऐसी, हरि आये हम पास ।
सोवत ही जगाइया, जागत भये उदास ॥

---

४७ उपजि=आत्मज्ञान की उपलब्धि । काहै=कराहती है । भल=भली भाँति ।

४८ सालै=कसकता है, चुभता है । बहि गयौ=वेध गया, आरपार हो गया । बासुरि=वासर, दिन । चितवत जाई=राह देखते जाता है ।

४९ आमन=अनमना, खिन्न । धूमना=मलिन । च्यंतामणि=सब चिताओं

चलु सखी बिलम न कीजिये, जब लग सांस सरीर।
मिलि रहिये जगनाथ सूं, यूं कहै दास कबीर ॥४६॥

हौं बलियां कब देखौंगी तोहि ।
अहनिस आतुर दरसन कारनि ऐसी व्यापै मोहि।टेक॥
नैन हमारे तुम्ह कूं चाहै, रती न मानै हारि ।
बिरह-अगिन तन अधिक जरावै, ऐसी लेहु बिचारि ॥
सुनहु हमारी दादि गुसांईं, अब जिन होहु वधीर ।
तुम्ह धीरज मैं आतुर स्वामी, काचै भांडै नीर ॥
बहुत दिनन के बिछुरे माधौ, मन नहीं बाँधै धीर ।
देह छतां तुम्ह मिलहु कृपाकरि, आरतिवत कबीर ॥५०॥

वै दिन कब आवैंगे माइ ।
जा कारनि हम देह धरी है, मिलिबौ अंगि लगाइ ॥टेक॥
हौं जांनूं जे हिलमिलि खेलूं, तन मन प्रांन समाइ ।
या कामनां करौ परपूरन, समरथ हौ रांमराइ ॥
मांहिं उदासी माधौ चाहै, चितवत रैंनि बिहाइ ।
सेज हमारी स्यंघ भई है, जब सोऊं तब खाइ ॥
यहु अरदास दास की सुनिये, तन की तपति बुझाइ ।
कहै कबीर मिलै जो सोई मिलि करि मगल गाइ ॥५१॥

वाल्हा आव हमारे ग्रेह रे, तुम्ह बिन दुखिया देह रे ॥टेक॥
सब को कहै तुम्हारी नारी, मोकौं इहै अदेह रे।
एकमेक ह्वै सेज न सोवै, तबलग कैसा नेह रे॥

को हर लेनेवाले स्वामी से अभिप्राय है ।

५० बलियाँ=बलैयाँ, कुर्बान । रती=जरा भी। दादि=न्याय कराने की प्रार्थना । बधीर=बधिर, बहरा । छता=रहते हुए (गुजराती प्रयोग)

५१ माहिं=अतर मे । स्यघ=सिंह । अरदास=अर्जदास्त, विनती ।

आंन न भावै नींद न आवै ग्रिह बिन धरै न धीर रे।
ज्यूं कांमी कौ कांम पियारा, ज्यूं प्यासे कूं नीर रे॥
है कोई ऐसा पर-उपगारी, हरि सूं कहै सुनाइ रे।
ऐसे हाल कबीर भये है, बिन देखे जीव जाइ रे॥५२॥

चलत कत टेढौ टेढौ रे।
नऊं दुवार नरक धरि मूंदे, तू दुरगंधि कौ बेढौ रे ॥टेक॥
जे जारै तौ होइ भसम तन, रहित किरम उहि खाई।
सूकर स्वांन काग को भखिन, तामैं कहा भलाई॥
फूटे नैन हिरदै नही सूझै, मति एकै नही जांनी।
माया मोह ममिता सूं बांध्यो, बूडि मूवौ बिन पांनीं॥
बारू के घरवा मैं बैठो, चेतत नहीं अयांनां॥
कहै कबीर एक रांम भगति बिन, बूडे बहुत सयांनां॥५३॥

भयौ रे मन पांहुनड़ौ दिन चारि।
आजिक काल्हिक मांहि चलैगौ, ले किन हाथ सँवारि ॥टेक॥
सौंज पराई जिनि अपनावै, ऐसी सुणि किन लेह।
यहु ससार इसौ रे प्रांणी, जैसो धूँवरि मेह॥
तन धन जोबन अँजुरी को पांनीं, जात न लागै वार।
सैंबल के फूलन परि फूल्यौ, गरब्यौ कहा गँवार॥

---

५२ बाल्हा=प्यारे। अदेह=अदेशा, संदेह। आन=अन्न, भोजन।

५३ टेढ़ो-टेढ़ौ=ऐंठता हुआ। बेढौ=घेरा, स्थान। रहित=यदि रखा रहे, या गाड़ दिया जाये। किरम=कृमि, कीड़े। भखिन=भक्ष्य, भोजन।

५४ पाहुनड़ो=मेहमान। सौंज=साज-सामान। धूँवरि=धुवें का।

खोटी साटै खरा न लीया, कछू न जांनी साटि।
कहै कबीर कछू बनिज न कीयौ, आयौ थौ इहि हाटि ॥५४॥

कहूं रे जे कहिबे की होहिं।
नां को जांनै नां को मांनै, ताथैं अचिरज मोहि ॥टेक॥
अपने-अपने रंग के राजा, मांनत नाही कोइ।
अति अभिमांन लोभ के घाले, चले अपनपौ खोइ ॥
मैं-मेरी करि यहु तन खोयौ, समझत नही गॅवार।
भौजलि अधफर थाकि रहे हैं बूड़े बहुत अपार ॥
मोहि आग्या दई दयाल दया करि, काहू कूं समझाइ।
कहै कबीर मैं कहि-कहि हार्यौ, अब मोहि दोस न लाइ ॥५५॥

राग मारू

मन रे रांम सुमिरि रांम सुमिरि, रांम सुमिरि, भाई।
राम नांम सुमिरन बिना, बूड़त है अधिकाई ॥टेक॥
दारा सुत ग्रेह नेह, संपति अधिकाई।
यामैं कछु नांहि तेरौ, काल अवधि आई ॥
अजामेल गज गनिका, पतित करम कीन्हां।
तेऊ उतरि पारि गये, रांम नांम लीन्हा ॥
स्वांन सूकर काग कीन्हौ, तऊ लाज न आई।
रांम नांम अमृत छाड़ि, काहे बिष खाई ॥
तजि भरम करम बिधि नखेद, रांम नांम लेही।
जन कबीर गुर प्रसादि, राम करि सनेही ॥५६॥

साटि=बेच-खरीद, गोलतोल। हाटि=पैंठ, ससार से अभिप्राय है।
५५ घाले=मारे हुए। अपनपौ=आत्मा का स्वरूप। अधफर=बीचोबीच
५६ पतित=पापमय। नखेद=निषिद्ध, वे कर्म जिनके करने से रोका गया है, जैसे चोरी, हिसा, व्यभिचार आदि। प्रसादि=कृपा से।

राग भैरू

भलै नींदौ भलै नीदौ, भलै नीदौ लोग,
तन मन रांम पियारे जोग ॥टेक॥
मैं बौरी मेरे रांम भरतार, ता कांरनि रचि करौं स्यंगार ॥
जैसैं धुबिया रज मल धोवै, हरत परत सब निंदक खोवै ॥
न्यंदक मेरे माई बाप, जन्म जन्म के काटे पाप ॥
न्यंदक मेरे प्रांन अधार, बिन बेगारि चलावै भार ॥
कहै कबीर न्यदक बलिहारी, आप रहै, जन पार उतारी ॥५७॥

क्या ह्वै तेरे न्हांई धोई, आतम रांम न चीन्हां सोई ॥टेक॥
क्या घट ऊपरि मजन कीयैं, भीतरि मैल अपारा।
रांम नांम बिन नरक न छूटै, जे धोवै सौ बारा ॥
का नट भेष भगवां बस्तर, भसम लगावै लोई।
ज्यूं दादुर सुरसुरी जल भीतरि, हरि बिन मुकति न होई ॥
परहरि काम रांम कहि बौरे, सुनि सिख बंधू मोरी।
हरि कौ नांव अभै-पद-दाता, कहै कबीरा कोरी ॥५८॥

आसण पवन कियै दिढ रहु रे, मन का मैल छाड़िदे बौरे ॥टेक॥
क्या सींगी मुद्रा चमकायैं, क्या भिभूति सब अंगि लगायैं ॥

---

५७ भलै नीदौ=भले ही निदा करें। ता कारनि=उसी स्वामी को रिझाने के लिए। हरत-परत=मैल के दाग व शिकन याने कपट। आप रहै जन पार उतारी=पर-निदा के पाप से खुद तो ससार-सागर मे पडा रहता है, पर जिन हरि-भक्तो की वह निदा करता है उन्हे सहिष्णु बना-बनाकर पार उतार देता है।

५८ भगवा वस्तर=संन्यासी का गेरुवा कपडा। सुरसुरी=सुरसरि, गगा। दादुर=मेढक। काम=विषय-वासना। कोरी=जुलाहा।

५९ सीगी=हरिन के सीग का बना बाजा, जिसे मुहँ से बजाते हैं।

सो हिंदू सो मुसलमांन, जिसका दुरस रहै ईमांन ॥
सो ब्रह्मा जो कथै ब्रह्म गियांन, काजी सो जानै रहिमांन ॥
कहै कबीर कछू आंन न कीजै, रांम नांम जपि लाहा लीजै ॥५६॥

ताथैं कहिये लोकाचार, वेद कतेब कथै व्यौहार ॥टेक॥
जारि बारि करि आवै देहा, मूवां पीछै प्रीति-सनेहा ॥
जीवत पित्रहि मारहि डगा, मूवां पित्र ले घालैं गगा ॥
जीवत पित्र कूं अन न ख्वांवै, मूवां पीछै प्यंड भरांवै ॥
जीवत पित्र कू बोलै अपराध, मूवा पीछै देहि सराध ॥
कहि कबीर मोहि अचिरज आवै, कऊवा खाइ पित्र क्यू खावै ॥६०॥

रैनि गई मति दिन भी जाइ, भवर उड़े बग बैठे आइ ॥
काचै करवै रहै न पांनी, हंस उड्या काया कुमिलांनी ॥
थरहर थरहर कंपै जीव, नां जांनूं का करिहै पीव ॥
कऊवा उड़ावत मेरी बहियां पिरांनीं,
कहै कबीर मेरी कथा सिरांनी ॥६१॥

काहे कूं भीति बनांऊ टाटी, का जानू कहां परिहै माटी ॥टेक॥
काहे कूं मंदिर महल चिणांऊं, मूवां पीछै घड़ी एक रहण न पाऊं ।

दुरस=दुरुस्त । ब्रह्मा=ब्राह्मण से आशय है । लाहा=लाभ ।

६० प्रीति=प्रेत । डगा=डक । मूवा ' गगा=मरने के बाद पिता की अस्थियाँ गंगा मे डालते हैं । ख्वावैं=खिलाते हैं । प्यड भरावै=पिडदान देते हैं । बोलै अपराध=दुर्वचन कहते हैं ।

६१ काचा करवा=अनपका मिट्टी का टोटीदार लोटा , यहाँ अनित्य देह से अभिप्राय हे । हस=जीव, प्राण । कऊवा' 'पिरानी=बिना प्राण की देह पर से कौए उडाते-उडाते मेरी बाँह दर्द करने लगी । सिरानी=समाप्त हो गई ।

६२ टाटी=छप्पर । माटी=शरीर से अभिप्राय है । साढे ' 'मेरा=मेरा

काहे कूं छांऊं ऊच उसेरा, साढ़े तीनि हाथ घर मेरा ॥
कहै कबीर नर गरब न कीजै, जेता तन तेती भुंइ लीजै ॥६२॥

राग बिलावल

रांम भजै सो जांनिये, जाकै आतुर नांही।
संत संतोष लीयै रहै, धीरज मन मांहीं ॥टेक॥
जन कौं कांम क्रोध व्यापै नहीं, त्रिष्णां न जरावै।
प्रफुलित आनंद मैं रहै, गोव्यंद गुण गावै ॥
जन कौं परनिंद्या भावै नहीं, अरु असति न भाषै।
काल कलपनां मेटि करि, चरनूं चित राषै ॥
जन समद्रिष्टि सीतल सदा, दुबिधा नहीं आनैं।
कहै कबीर ता दास सूं, मेरा मन मानै ॥६३॥

माधौ सो न मिलै जासौं मिलि रहिये।
ता कारनिवर बहु दुख सहिये ॥टेक॥
छत्रधार देखत ढहि जाइ, अधिक गरब थैं खाक मिलाइ ॥
अगम अगोचर लखी न जाइ, जहां का सहज फिरि तहां समाइ ॥
कहै कबीर झूठे अभिमांन, सो हम सो तुम्ह एक समांन ॥६४॥

रांम चरन जाकै रिदै बसत है, ता जन को मन क्यूं डोलै ॥
मानौं अठ सिधि नवनिधि ताकै, हरपि हरपि जस बोलै ॥
जहां जहां जाइ तहां सचु पावै, माया ताहि न झोलै।

असली घर याने कब्र या मरकट तो साढे तीन हाथ लंबा है।

६३ आतुर=अधीरता। सत=सत्य। जनकौं=हरि-भक्त को। दुबिधा=द्वैत-भाव।

६४ कारनिवर=कारण से।

६५ रिदै=हृदय में। जस बोलै=हरि कीर्तन करता है। सचु=शान्ति।

बारंबार बरजि विपिया तै, लै नर जौ मन तोलै ॥
ऐसी जे उपजै या जीय कै, कुटिल गांठि सब खोलै ।
कहै कबीर जब मन परचो भयौ, रहै रांम कै बोलै ॥६५॥

राग ललित

रसनां रांम गुन रमि रस पीजै,
गुन अतीत निरमोलिक लीजै ॥टेक॥
निरगुन ब्रह्म कथौ रे भाई, जा सुमिरत सुधि बुधि मति पाई ॥
विप तजि रांम न जपसि अभागे, का बूड़े लालच के लागे ॥
ते सब तिरे रामरस स्वादी, कहै कबीर बूड़े बकबादी ॥६६॥

नहीं छाडौं बाबा रांम नांम,
मोहिं और पढ़न सूं कौन कांम ॥टेक॥
प्रहलाद पधारे पढ़न साल, संग सखा लीये बहुत बाल ॥
मोहि कहा पढ़ावै आल जाल, मेरी पाटी मैं लिखि दे श्रीगोपाल ॥
तब सनां मुरकां कह्यौ जाइ, प्रहिलाद बंधायौ वेगि आइ ॥
तूं रांम कहन की छाड़ि बांनि, बेगि छुड़ाऊं मेरौ कह्यौ मांनि ॥
मोहि कहा डरावै बारबार, जिनि जलथल गिर कौ कियो प्रहार ॥
बांधि मारि भावै देह जारि, जे हूं रांम छाड़ौं तौ मेरे गुरहि गारि ॥
तब काढ़ि खड़ग कोप्यौ रिसाइ, तोहि राखनहारौ मोहि बताइ ॥
खंभा मैं तै प्रगट्यौ गिलारि, हरनाकस मार्‌यौ नख बेंदारि ॥

झोलै=जलाती है । बोलै=आज्ञा म ।

६६ गुन अतीत=मायात्मक त्रिगुण से परे, निर्गुण । विप=विषय-भोग ।

६७ साल=पाठशाला । आल जाल=झंझट-बखेड़ा । सना मुरका=शंडा और मर्क, शुक्राचार्य के पुत्र जो असुरों के पुरोहित थे । बानि=आदत ।

महापुरुष देवाधिदेव, नरस्यंघ प्रगट कियौ भगति भेव ॥
कहै कबीर कोई लहै न पार, प्रहिलाद उबार्‌यौ अनेक बार ॥६७॥

राग सारंग

धंनि सो घरी महूरत्य दिनां।
जब ग्रिह आये हरि के जनां ॥टेक॥
दरसन देखत यहु फल भया, नैनां पटल दूरि ह्वै गया ॥
सब्द सुनत संसा सब छूटा, स्रवन कपाट बजर था तूटा ॥
परसत घाट फेरि करि घड्या, काया कर्म सकल झड़ि पड्या ॥
कहै कबीर संत भल भाया, सकल-सिरोमनि घट मैं पाया ॥६८॥

राग धनाश्री

कहा नर गरबसि थोरी बात!
मन दस नाज, टका दस गंठिया, टेढौ टेढौ जात ॥टेक॥
कहा लै आयौ यहु धन कोऊ, कहा कोऊ लै जात।
दिवस चारि की है पतिसाही, ज्यूं बनि हरियल पात ॥
राजा भयौ गांव सौ पाये, टका लाख दस ब्रात।
रावन होत लंक कौ छत्रपति, पल मैं गई बिहात ॥
माता पिता लोक सुत बनिता, अंति न चले संगात।
कहै कबीर रांम भजि बौरे, जनम अकारथ जात ॥६९॥

लोका मति के भोरा रे।
जौ कासी तन तजै कबीरा, तौ रांमहिं कहा निहोरा रे ॥

गिलारि=सिंह से आशय है। नख बिदारि=नखों से चीरकर। भेव=भेद, रहस्य।

६८ महूरत्य=मुहूर्त्त। पटल=अज्ञान का परदा। बजर=वज्र। परसत. घड्या=हाथ लगाकर मिट्टी के शरीर को कंचन का बना दिया।

६९ पतिसाही=बादशाही। हरियल पात=हरे पत्ते। सँगात=साथ।

तब हम यैसे अब हम ऐसे, इहै जनम का लाहा।
ज्यूं जल मैं जल पैसि न निकसै, यूं ढुरि मिल्या जुलाहा ॥
रांम-भगति परि जाकौ हित चित, ताकौ अचिरज काहा।
गुर प्रसाद साध की संगति, जग जीते जाइ जुलाहा ॥
कहै कबीर सुनहु रे सन्तो, भरमि परै जिनि कोई।
जस कासी तस मगहर ऊसर, रिदै रांम सति होई ॥७०॥

अग्नि न दहै पवन नहीं मगनै तस्कर नेरि न आवै।
रांम नांम धन करि संचौनी सो धन कतही न जावै ॥
हमरा धन माधव गोबिंद, धरनीधर इहै सार धन कहियै।
जो सुख प्रभु गोबिंद की सेवा, सो सुख राज न लहियै ॥
इसु धन कारन सिव सनकादिक, खोजत भये उदासी।
मन मुकुंद जिह्वा नारायन परै न जम की फाँसी ॥
निज धन ग्यांन भगति गुर दीनी तासु सुमति मन लागी।
जलत अग थभि मन धावत भरम बधन भौ भागी ॥
कहै कबीर मदन के माते हिरदै देखु बिचारी।
तुम घर लाख कोटि अस्व हस्ती, हम घर एक मुरारी ॥७१॥

अब मोहि जलत राम जल पाइया।
राम उदक तन जलत बुझाइया ॥
मन मारन कारन वन जाइयै।
सो जल बिन भगवंत न पाइयै ॥

---

७० निहोरा = एहसान। लाहा = लाभ। पैसि = पैठकर, मिलकर। मगहर= एक स्थान, जो बस्ती जिले मे है, मगहर को मगध का भी अपभ्रंश माना जाता है। ऊसर=यहाँ निष्फल से अभिप्राय है।

७१ झुरवै=सुखाती है। तस्कर = चोर। नेरि=पास। सचौनी=सञ्चय। उदासी= वैरागी। भौ = भय। मन धावत=मन के वेग से दौडते हैं।

७२ उदक=जल। मन मारन = मन को जीतने। निखुटतं नाही = घटता नहीं है।

जेहि पावक सुर नर हैं जारे।
　　　　राम उदक जन जलत उबारे ॥
भवसागर सुखसागर मांहीं।
　　　　पीव रहे जल निखुटत नांहीं ॥
कहि कबीर भजु सारिंगपानी।
　　　　राम उदक मेरी तिपा बुझानी ॥७२॥

अवर मुये क्या सोग करीजै। तौ कीजै जो आपन जीजै ॥
मैं न मरौं मरिबो संसारा। अब मोहि मिल्यो है जियावनहारा ॥
या देही परमल महकंदा। ता सुख बिसरे परमानंदा ॥
कुअटा एकु पच पनिहारी। टूटी लाजु भरै मतिहारी ॥
कहि कबीर इकु बुद्धि बिचारी। ना ऊ कुअटा ना पनिहारी ॥७३॥

इसु तन मन मध्ये मदनचोर। जिन ग्यांनरतन हरि लीन मोर ॥
मैं अनाथ प्रभु कहौ काहि। की कौन बिगूतो मैं को आहि ॥
माधव दारुन दुख सह्यो न जाइ। मेरो चपल बुद्धि स्यों कहा बसाइ ॥
सनक सनदन सिव सुकादि। नाभि कमल जाने ब्रह्मादि ॥
कबिजन जोगी जटाधारि। सब आपन औसर चले सारि ॥
तू अथाह मोहि थाह नाहि। प्रभु दीनानाथ दुख कहौ काहि ॥७४॥

सारिंगपानी = धनुषधारी राम। तिपा = प्यास।

७३ अवर मुये = और के मरने पर। सोग = शोक। जीजै = जीवे। परमल=सुगध। महकंदा = महकती है। कुअटा = कुआँ, मन से आशय है। पच पनिहारी= पाँचों इन्द्रियों से अभिप्राय है। लाजु = रस्सी।

७४ मदन = कामदेव। बिगूतो = अड़चन, दिक्कत। बसाइ = वश, काबू। चले सारि = समाप्त करके चले।

क्या जप क्या तप क्या व्रत पूजा। जाकै रिदै भाव है दूजा ॥
रे जन, मन माधव स्यों लाइयै। चतुराई न चतुर्भुज पाइयै ॥
परिहरि लोभ अरु लोकाचार। परिहरि काम क्रोध अहंकार ॥
कर्म करत बद्धे अहमेव। मिल पाथर की करही सेव ॥
कहि कबीर भगति कर पाया। भोले भाइ मिले रघुराया ॥७५॥

गंगा के संग सलिता बिगरी। सो सलिता गंगा होइ निबरी ॥
बिगर्‌यो कबीरा राम दुहाई। साचु भयो अन कतहि न जाई ॥
चन्दन कै संगि तरवर बिगर्‌यो। सो तरवर चन्दन ह्वै निबर्‌यो ॥
पारस के सँग ताँबा बिगर्‌यो। सो ताँबा कंचन ह्वै निबर्‌यो ॥
संतन संग कबीरा बिगर्‌यो। सो कबीर रांम ह्वै निबर्‌यो ॥७६॥

जो मैं रूप किये बहुतेरे, अब फुनि रूप न होई।
तागा तंत साज सब थाका, रांम नांम बसि होई ॥
अब मोहि नाचनो न आवै। मेरा मन मंदरिया न बजावै ॥
कांम क्रोध माया लै जारी, तृष्णा-गागरि फूटी।
काम-चोलना भया है पुराना, गया भरम सब छूटी ॥
सर्वभूत एकै करि जान्या, चूके वाद-बिवादा ॥
कहि कबीर मैं पूरा पाया, भये राम-परसादा ॥७७॥

निरधन आदर कोइ न देई। लाख जतन करै ओहु चित न धरेई ॥
जौ निरधन सरधन कै जाई। आगे बैठा पीठ फिराई ॥

---

७५ रिदै = हृदय। चतुराई = पांडित्य। बद्धे = बंधन में पड़े। भाइ = भाव।
७६ सलिता = सरिता, नदी। बिगरी = संगति में अपना रूप खो दिया। निबरी = परिणत हो गई। अन कतहि = कहीं दूसरी जगह।
७७ फुनि = पुनः, फिर। मंदरिया = एक प्रकार का बाजा। चोलना = चोला, लंबा ढीला कुरता, शरीर से भी आशय है।

जो सरधन निर्धन कै जाई। दीया आदर लिया बुलाई॥
निरधन सरधन दोनों भाई। प्रभु की कला न मेटी जाई॥
कहि कबीर निरधन है सोई। जाकै हिरदै नामन होई॥७८॥

पाती तोरै मालिनी, पाती पाती जीउ।
जिसु पाहन को पाती तोरै सो पाहनु निरजीउ॥
भूली मालिनी है एउ। सतिगुरु जागता है देउ॥
ब्रह्म पाती बिस्नु डारी फूल संकर देव।
तीन देव प्रतख्य तोरहिं करहि किसकी सेव॥
पषान गढिकै मूरति कीनी देकै छाती पाउ।
जे एइ मूरति साची है तो गड़णहारे को खाउ॥
भातु पहिति और लापसी करकरा कासारु।
भोगनुहारे भोगिया इसु मूरति के मुख छारु॥
मालिन भूली जग भुलाना हम भुलाने नाहिं।
कहि कबीर हम राम राखे कृपाकरि हरिराइ॥७९॥

राजा रांम तू ऐसा निर्भव तरनतारन रांमराया॥
जब हम होते तब तुम नाही अब तुम हहु हम नाहीं।
अब हम तुम एक भये हहिं एकै देखति मन पतियाही॥

---

७८ चित न धरेई = ध्यान मे नही लाता। सरधन = धनी। कला = लीला।

७९ पाहन = पत्थर की मूर्ति। जागता = सजीव। देउ = देव। प्रतख्य = प्रत्यक्ष। सेव = सेवा-पूजा। देकै = रखकर। गडणहारा = गढनेवाला, शिल्पी। पहिति = दाल। करकरा = खरा, अच्छा भुना हुआ। कासारु = कसार, एक प्रकार का पकवान। भोगनुहारे भोगिया = पुजारी खा गये।

८० निर्भव = निर्भयः अजन्मा से भी अभिप्राय है। हहु = हो। न खटाई = ठहरता नही। बुधि पाई = चतुराई के बदले मे सिद्धि प्राप्त हुई;

जब बुधि होती तब बल कैसा, अब बुधि बल न खटाई।
कहि कबीर बुधि हरि लई मेरी, बुधि बदली सिधि पाई ॥८०॥

सत मिलै किछु सुनियै कहियै। मिले असत मष्ट करि रहियै ॥
बाबा बोलना क्या कहियै। जैसे रामनाम रमि रहियै ॥
संतन स्यों बोले उपकारी। मूरख स्यों बोले झख मारी ॥
बोलत बोलत बढ़हि विकारा। बिनु बोले क्या करहि बिचारा ॥
कहि कबीर छूछा घट बोलै। भरिया होइ सु कबहुँ न डोलै ॥८१॥

स्वर्ग वास न बाछियै, डरियै न नरक-निवासु।
होना है सो होइहै, मनहिं न कीजै आसु ॥
रमय्या गुन गाइयै, जाते पाइयै परमनिधानु ॥
क्या जप क्या तप सयमो क्या व्रत क्या इस्नानु ॥
जब लग जुक्ति न जानियै भाव भक्ति भगवान ॥
सम्पै देखि न हर्षियै विपति देखि न रोइ।
ज्यों सम्पै त्यों विपत है विधि ने रच्या सो होइ ॥
कहि कबीर अब जानिया संतन रिदै मझारि।
सेवक सो सेवा भले जिह घट बसै मुरारि ॥८२॥

सतन जात न पूछो निरगुनियाँ।
साध ब्राह्मन, साध छत्तरी, साधै जाती बनियाँ।
साधन माँ छत्तीस कौम है, टेढ़ी तोर पुछनियाँ।

चतुराई का यहाँ अभिमानपूर्ण पंडिताई अर्थ है।

८१ मष्ट = चुप। स्यों = से। विकारा = बिगाड़, झगड़ा। छूछा = खाली।

८२ बाछियै = इच्छा करे। सम्पै = सम्पत्ति, खुशहाली। रिदै = हृदय।

८३ पुछनियाँ = पूछना, प्रश्न। बरियाँ = बारी, एक जाति जो पत्ते-दोने बनाने

साधै नाऊ, साधै धोबी, साध जाति है बरियाँ।
साधन माँ रैदास संत है सुपच रिषी सो भँगियाँ।
हिन्दु-तुर्क दुइ दीन बने है, कछू नहीं पहचनियाँ॥८३॥

निसदिन खेलत रही सखियन सँग, मोहि बड़ा डर लागै।
मोरे साहब की ऊँची अटरिया, चढ़त में जियरा कांपै॥
जो सुख चहै तो लज्जा त्यागै, पिया सूं हिलमिल लागै।
घूंघट खोल अंगभर भेटे, नैन आरती साजै॥
कहै कबीर सुनो सखि मोरी, प्रेम होय सो जानै।
निज प्रीतम की आस नही है, नाहक काजर पारै॥८४॥

घर घर दीपक बरै, लखै नहिं अन्ध है।
लखत लखत लखि परै कटै जम-फंद है॥
कहन-सुनन कछु नाहिं, नही कछु करन है।
जीते-जी मरि रहै, बहुरि नहिं मरन है॥
जोगी पड़े बियोग कहै घर दूर है।
पासहि बसत हजूर, तू चढ़त खजूर है॥
बाह्मन दिच्छा देत सो घर घर घालिहै।
मूर सजीवन पास, तू पाहन पालिहै॥
ऐसन साहब कबीर, सलोना आप है।
नही जोग नहिं जाप, पुन्न नहिं पाप है॥८५॥

और सेवा का काम करती है। सुपच रिषि = सुदर्शन नामक श्वपच ऋषि से अभिप्राय है, जिनका उल्लेख महाभारत में आया है।

८४ अंग = अंक, छाती। काजर पारै = दीपक के धुवें की कालिख को किसी बरतन में जमाये, व्यर्थ सोहाग दिखाये।

८५ दीपक = आत्मज्योति से आशय है। पाहन पालिहै = पत्थर की मूर्तियों को पूजता है। सलोना = सुन्दर।

सतगुर सोइ दया करि दीन्हा। ताते अन-चिन्हार मैं चीन्हा॥
बिन पग चलना, बिन पर उड़ना, बिना चूंच का चुगना।
बिना नैन का देखन-पेखन, बिन सरवन का सुनना॥
चंद न सूर दिवस नहिं रजनी, तहाँ सुरत लौ लाई।
बिना अन्न अमृत-रस भोजन, बिन जल तृषा बुझाई॥
जहाँ हरष तहाँ पूरन सुख है, यह सुख कासूं कहना।
कहै कबीर बल बल सतगुर की, धन्न सिष्य का लहना॥८६॥

नाचु रे मेरे मन, मत्त होइ।
प्रेम को राग बजाय रैन-दिन, सब्द सुनै सब कोइ।
राहु-केतु यह नवग्रह नाचै, जन्म जन्म आनंद होइ।
गिरी समुन्दर धरती नाचै, लोक नाचै हँस रोइ।
छापा तिलक लगाइ बाँस चढ़, हो रहा जग से न्यारा।
सहस कला कर मन मेरौ नाचै, रीझै सिरजनहारा॥८७॥

मन मस्त हुआ तब क्यों बोले।
हीरा पायो गाँठ गँठियायो, बारबार बाको क्यों खोले।
हलकी थी तब चढ़ी तराजू, पूरी भई तब क्यों तोले॥
सुरत कलारी भई मतवारी, मदवा पी गई बिन तोले।
हंसा पाये मानसरोवर, ताल-तलैया क्यों डोले॥
तेरा साहब है घर माहीं, बाहर नैना क्यों खोले।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, साहब मिल गये तिल-ओले॥८८॥

---

८६ चिन्हार = जान-पहचान। लहना = लाभ।

८७ बाँस चढ़ = प्रेम की सबसे ऊँची सीढ़ी पर चढ़कर, निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था पर पहुँचकर।

८८ सुरत कलारी = ध्यान वा लौरूपी कलवारी। तिल-ओले = आँख के तिल की ओट मे।

मोहिं तोहिं लागी कैसे छूटे ।
जैसे कमलपत्र जल-बासा, ऐसे तुम साहिब हम दासा ॥
जैसे चकोर तकत निस चंदा, ऐसे तुम साहिब हम बंदा ॥
मोहि तोहि आदि अंत बन आई, कैसेकै लगन हम दुराई ॥
कहै कबीर हमरा मन लागा, जैसे सरिता सिंध समाई ॥८६॥

जाग पियारी, अब का सोवै । रैन गई दिन काहेको खोवै ॥
जिन जागा तिन मानिक पाया । तै बौरी सब सोय गँवाया ॥
पिय तेरे चतुर तू मूरख नारी । कबहुँ न पिय की सेज सँवारी ॥
तै बौरी बौरापन कीन्ही । भर-जोबन पिय अपन न चीन्ही ॥
जाग देख पिय सेज न तेरे । तोहि छाँडि उठि गये सवेरे ॥
कहै कबीर सोई धन जागै । सब्द-बान उर-अंतर लागै ॥६०॥

सन्तो, सहज समाधि भली ।
साँई तें मिलन भयो जा दिन तें, सुरत न अन्त चली ॥
आँख न मूँदूँ कान न रूँधूँ, काया कष्ट न धारूँ ।
खुले नैन मैं हँस-हँस देखूँ, सुन्दर रूप निहारूँ ॥
कहूँ सो नाम, सुनूँ सो सुमिरन, जो कछु करूँ सो पूजा ।
गिरह-उद्यान एक सम देखूँ, भाव मिटाऊँ दूजा ॥
जहँ जहँ जाऊँ सोई परिकरमा, जो कछु करूँ सो सेवा ।
जब सोऊँ तब करूँ दण्डवत, पूजूँ और न देवा ॥

---

८६ लागी = लगन, प्रीति । तकत = एकटक देखती है । दुराई = छिपे ।

६० मानिक = लाल रंग का एक रत्न, यहाँ प्रियतम से आशय है । धन = स्त्री ।

६१ अन्त = अनत, अन्यत्र । रूँधूँ = बंद करता हूँ । कहूँ सो नाम = जो कुछ बोलता हूँ, वही नाम-जप हो जाता है । गिरह-उद्यान = घर और वन । भाव दूजा = द्वैतभाव । परिकरमा = परिक्रमा, प्रदक्षिणा । जब सोऊँ

सब्द निरन्तर मनुआ राता, मलिन वचन को त्यागी ।
ऊठत-बैठत कबहुँ न बिसरै, ऐसी तारी लागी ॥
कहै कबीर यह उन्मुनि रहनी, सो परगट कर गाई ।
सुख-दुख के इक परे परमसुख तेहि मे रहा समाई ॥६१॥

भक्ति का मारग झीना रे ।
नहिं अचाह नहिं चाहना, चरनन लौ-लीना रे ॥
साधन के रस-धार में, रहै निस दिन भीना रे ।
राग मे स्रुत ऐसे बसै, जैसे जल मीना रे ॥
सॉई-सेवन मे देत सिर, कुछ बिलम न कीना रे ।
कहै कबीर मत भक्ति का, परगट कर दीना रे ॥६२॥

सॉई से लगन कठिन है भाई ।
जैसे पपीहा प्यासा बूंद का, पिया पिया रट लाई ।
प्यासे प्राण तड़फै दिनराती, और नीर ना भाई ।
जैसे मिरगा सब्द-सनेही, सब्द सुनन को जाई ।
सब्द सुनै और प्रानदान दे, तनिको नाहिं डराई ।
जैसे सती चढी सत-ऊपर, पिया की राह मन भाई ।
पावक देख डरै वह नाहीं, हँसत बैठे सदा माई ।
छोडो तन अपने की आसा, निर्भय ह्वै गुन गाई ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, नाहि तो जन्म नसाई ॥६३॥

दण्डवत = पैर फैलाकर सो जाना ही मेरा दण्डवत् प्रणाम हैं। तारी = समाधि, ध्यान । उन्मुनि योग = उन्मुनी मुद्रा · मौनावस्था । सुख-दुख = सासारिक सुख-दु:ख । परमसुख = ब्रह्म-सुख ।

६२ झीना = बडा बारीक । भीना = भीगा हुआ, विभोर । राग = अनुराग, परम प्रेम । स्रुत = सुरत, ध्यान, लौ ।

६३ माई = उमाह या उमग से ।

जब मैं भूला रे भाई, मेरे सतगुरु जुगत लखाई ।
किरिया-करम-अचार मै छाँडा, छाँडा तीरथ का न्हाना ।
सगरी दुनिया भई सयानी, मै ही इक बौराना ।
ना मै जानूँ सेवा-बंदगी, ना मै घट बजाई ।
ना मैं मूरत धरि सिंघासन, ना मैं पुहुप चढ़ाई ।
ना हरि रीझै जप तप कीन्हे, ना काया के जारे ।
ना हरि रीझै धोती छाँड़े, ना पाँचों के मारे ।
दाया राखि धरम को पालै, जगसूं रहै उदासी ।
अपना-सा जिव सबको जानै, ताहि मिलै अविनासी ।
सहै कुसब्द बाद को त्यागै, छाँडै गर्व गुमांना ।
सत्तनाम ताही को मिलिहै कहै कबीर दिवांना ॥६४॥

मन न रँगाये, रँगाये जोगी कपरा ।
आसन मारि मंदिर मे बैठे, ब्रह्म छाड़ि पूजन लागे पथरा ॥
कनवा फड़ाय जोगी जटवा बढ़ौले, दाढ़ी बढ़ाय जोगी होइ गैले बकरा ।
जंगल जाय जोगी धुनिया रमौले, काम जलाय जोगी होइ गैले हिजरा ॥
मथवा मुँडाय जोगी कपरा रँगैले, गीता बाँचके होइ गैले लबरा ।
कहहिं कबीर सुनो भाई साधो, जम-दरवजवा बाँधल जैबे पकरा ॥६५॥

जो खोदाय मसजीद वसतु है और मुलुक केहिकेरा ।
तीरथ-मूरत रांम-निवासी, बाहर केहिका डेरा ।

---

६४ जुगत=योग-युक्ति । अचार=आचार । धोती छाँडे=धोती उतारकर लँगोटी लगाने से । पाँचो के मारे=पाँचो ज्ञानेन्द्रियो को वश मे करने से । उदासी=अनासक्त ।

६५ धुनिया रमौले=धूनी रमा ली, सामने आग जलाकर शरीर को तपाने या तप करने बैठ गये । लबरा=झूठा, बकवादी ।

पूरब दिसा हरी कौ बासा, पच्छिम अलह मुकांमा ।
दिल में खोज दिलहिमे खोजौ इहै करीमा रांमा ।
जेते औरत-मरद उपानी सो सब रूप तुम्हारा ।
कबीर पोंगड़ा अलह-राम का सो गुरु पीर हमारा ॥६६॥

बेद कहे सरगुन के आगे निरगुन का बिसराम ॥
सरगुन-निरगुन तजहु सोहागिन, देख सबहि निज धाम ।
सुख-दुख वहाँ कछू नहिं व्यापै, दरसन आठों जाम ॥
नूरै ओढ़न नूरै डासन, नूरै का सिरहान ।
कहै कबीर सुनो भई साधो, सतगुरु नूर तमाम ॥६७॥

कहैं कबीर सुनो हो साधो, अंमृत-बचन हमार ।
जो भल चाहो आपनो, परखो, करो बिचार ॥
जे करता ते ऊपजै, तासों परि गयो बीच ।
अपनी बुद्धि बिबेक-बिन सहज बिसाही मीच ॥
यहिमेते सब मत चलै, यही चल्यौ उपदेस ।
निस्चय गहि निर्भय रहो सुन परम तत्त संदेस ॥
केहि गावो केहि धावहू, छोड़ो सकल धमार ।
यहि हिरदे सबकोइ बसै, क्यों सेवो सुन्न-उजाड़ ॥

---

६६ डेरा = निवास । करीम = कृपालु, परमेश्वर । उपानी = उत्पन्न हुए । पोंगडा = मूर्ख चेला ।

६७ सरगुन = सगुण । बिसराम = नित्यस्थान । नूर = दिव्यज्योति । डासन = बिछौना । सिरहान = तकिया ।

६८ जे करता तै = जिस सिरजनहार से । बीच = अंतर, प्रेम । बिसाही = मोल-लेली । केहि धावहू = किसकी आशा मे दौड़ते हो ? धमार = धमा-चौकड़ी,

दूरहि करता थापिकै, करी दूर की आस।
जो करता दूरै हुते, तो को जग सिरजै आन॥
जो जानो यहँ है नहीं, तो तुम धावो दूर।
दूर से दूरहि भ्रमि-भ्रमि निष्फल मरो विसूर॥
दुरलभ दरसन दूर के, नियर सदा सुख वास।
कहै कबीर मोहिं व्यापिया, मति दुख पावै दास॥
आप अपनपौ चीन्हहू नखसिख सहित कबीर।
आनंद मगल गावहू, होहि अपनपौ थीर॥९८॥

सत्त नाम है सबतें न्यारा। निर्गुन सर्गुन सब्द पसारा॥
निर्गुन बीज सर्गुन फल-फूला। साखा ग्यान, नाम है मूला॥
मूल गहे तें सब सुख पावै। डाल पात मे मूल गँवावै॥
साँई मिलानी सुक्ख दिलानी। निर्गुन-सर्गुन भेद मिटानी॥९९॥

नैहर से जियरा फाट रे।
नैहर-नगरी जिसकी बिगड़ी, उसका क्या घर-बाट रे।
तनिक जियरवा मोर न लागै, तनमन बहुत उचाट रे।
या नगरी में लख दरवाजा, बीच समुन्दर घाट रे।
कैसेकै पार उतरिहै सजनी, अगम पथ का पाट रे।
अजब तरह का बना तँबूरा, तार लगे मन मात रे।
खूँटी टूटी तार बिलगाना, कोउ न पूछत बात रे।
हँस हँस पूछै मातुपितासों, भोरे सासुर जाब रे।
जो चाहै सो वोही करिहै, पत वाही के हाथ रे।

उछल-कूद। सुन्न उजाड = निर्जन वन मे। बिसूर = चिंता और दुःख करके। अपनपौ = आत्मस्वरूप। थीर = स्थिर, प्रशान्त।

१०० नैहर = मायका, इस लोक से एव शरीर से अभिप्राय है। पाट = चौडाव

न्हाय-धोय दुल्हिन होय बैठी, जोहै पिय की बाट रे।
तनिक घुँघटवा दिखाव सखी री, आज सोहाग की रात रे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, पिया-मिलन की आस रे।
भोरे होत वदे याद करोगे, नींद न आवे खाट रे ॥१००॥

अवधू, बेगम देस हमारा।
राजा-रंक फकीर-बादसा, सबसे कहौं पुकारा।
जो तुम चाहो परम-पद को, बसिहो देस हमारा।
जो तुम आये झीने होके, तजदो मन की बारा।
ऐसी रहन रहो रे प्यारे, सहजै उतर जावो पारा॥
धरन-अकास-गगन कछु नांही, नहीं चन्द्र नहिं तारा।
सत्त-धर्म की है महताबे, साहेब के दरबारा।
कहै कबीर सुनो हो प्यारे, सत्त-धर्म है सारा ॥१०१॥

माया महा ठगनी हम जानी।
तिरगुन फांसि लिये कर डोलै, बोलै मधुरी बानी।
केसव के कमला होइ बैठी, सिव के भवन भवानी।
पडा के मूरत होइ बैठी, तीरथहू मे पानी।
जोगी के जोगिन होइ बैठी, राजा के घर रानी।

फैलाव। खूटी · बिलगाना = देह से प्राण अलग होने पर। भोरे = सवेरे ही। सासुर = ससुराल, प्रियतम का घर। पत = लाज।

१०१ अवधू = अवधूत, साधु। बेगम = जहाँ गति या पहुँच न हो। झीने हो के = सूक्ष्म अर्थात् अहंकारशून्य होकर। धरन = धरणी, पृथिवी। महताब = एक प्रकार की रंगीन रोशनी, जो काठ की नली में मसाले भर-कर जलाई जाती है।

काहू के हीरा होइ बैठी, काहू के कौड़ी कानी।
भक्तन के भक्तिन होइ बैठी, ब्रह्मा के ब्रह्मानी।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, यह सब अकथ कहानी ॥१०२॥

बहुरि नहिं आवना या देस।
जो-जो गये बहुरि नहिं आये, पठवत नाहिं सँदेस।
सुर-नर-मुनि और पीर औलिया, देवी-देव गनेस।
धरि-धरि जन्म सबै भरमे है, ब्रह्मा-बिस्नु-महेस।
जोगी जगम और संन्यासी, दीगम्बर दरवेस।
चुंडित-मुंडित पंडित लोई, सुर्ग रसातल सेस।
ग्यानी गुनी चतुर औ कबिना, राजा रंक नरेस।
कोइ रहीम कोइ राम बखानै, कोइ कहै आदेस।
नाना भेष बनाय सबै मिलि, ढूंढि फिरे चहुँ देस।
कहै कबीर अंत ना पैहौ, बिन सतगुरु उपदेस ॥१०३॥

पांडे, बूझि पियहु तुम पानी।
जिहि मटिया के घरमहँ बैठे, तामहँ सिस्टि समानी।
छपन कोटि यादव जहँ सीजे, मुनिजन सहस अठासी।
पैग पैग पैगबर गाड़े, सो सब सरि भौ माटी।
तेहि मटिया के भांड़े पाँड़े, बूझि पियहु तुम पानी।

---

१०२ निरगुन = सत्त्व, रज और तम ये तीन गुण। कमला = लक्ष्मी। कानी = फूटी, झझी, छेदवाली।

१०३ औलिया = पहुँचा हुआ फकीर। जगम = घूमनेवाले साधु। दरवेस = फकीर। चुंडित = चोटीवाला। लोई = लोग। आदेस = ईश्वर की आज्ञा, इलहाम।

१०४ सिस्टि = सृष्टि। सीजे = गल गये, खप गये। पैग पैग = पग पग पर।

कच्छ मच्छ-घरियार वियाने, रुधिर नीर जल भरिया।
नदिया नीर नरक बहि आवै, पसु-मानुस सब सरिया॥
हाड़ झरी-झरि गूद गरी-गरि, दूध कहाँ तें आया।
सो लै पाँडे जेवन बैठे, मटियहिं छूति लगाया॥
वेद-किताब छाँडि देउ पाँडे, ई सब मन के भरमा।
कहहिं कबीर सुनहु हो पाँडे, ई तुम्हरे हैं करमा॥१०४॥

साधो, पाँडे निपुन कसाई।
बकरी मारि भेड़ि को धाये, दिल में दरद न आई।
करि अस्नान तिलक दै बैठे, विधि सों देवि पुजाई।
आतम मारि पलक में विनसे, रुधिर की नदी बहाई।
अति पुनीत, ऊँचे कुल कहिये, सभा माहिं अधिकाई।
इनसे दिच्छा सब कोई माँगै, हँसि आवै मोहिं भाई।
पाप-कटन को कथा सुनावैं, करम करावै नीचा।
बूड़त दोउ परस्पर दीखे, गहे बाँहि जम खींचा।
गाय बधै सो तुरुक कहावै यह क्या उनसे छोटे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, क केलि बाम्हन खोटे॥१०५॥

दुलहिन, अँगिया काहे न धोवाई।
बालपने की मैली अँगिया विषय-दाग परि जाई।
बिन धोये पिय रीझत नाहीं सेज ते देत गिराई।

बूझि = जाति पूछकर। वियाने = पैदा हुए। नरक = मल-मूत्र। सरिया = सड़ गये। झरी-झरि = झर-झरकर। गूद = गूदा, हड्डी के भीतर का भेजा। गरी-गरि = गल-गलकर।

१०५ पाँडे = पशु-बलि देनेवाले शाक्त पुजारी से अभिप्राय है। अधिकाई = आदर-प्रतिष्ठा। दिच्छा = मन्त्र दीक्षा। खोटे = नीच।

सुमिरन ध्यान कै साबुन करिले, सत्तनाम दरियाई।
दुविधा के भेद खोल बहुरिया, मन कै मैल धोवाई।
चेत करो तीनों पन बीते, अब तो गवन नगिचाई।
पालनहार द्वार है ठाढ़े अब काहे पछिताई।
कहत कबीर सुनो री बहुरिया, चित अंजन दे आई ॥१०६॥

साधो, देखो जग बौराना।
साँची कहौ तौ मारन धावै, झूठे जग पतियाना ॥
हिन्दू कहत है राम हमारा, मुसलमान रहमाना।
आपसमे दोउ लड़े मरतु हैं, मरम कोइ नहि जाना ॥
बहुत मिले मोहिं नेमी धर्मी, प्रात करै असनाना।
आतम-छोड़ि पषानै पूजै, तिनका थोथा ग्याना ॥
आसन मारि डिंभ धरि बैठे मन मे बहुत गुमाना।
पीपर-पाथर पूजन लागे, तीरथ बर्त्त भुलाना ॥
माला पहिरे टोपी पहिरे, छाप-तिलक अनुमाना।
साखी सब्दै गावत भूले, आतम खबर न जाना ॥
घर घर मंत्र जो देत फिरत है माया के अभिमाना।
गुरुवा सहित सिष्य सब बूड़े अंतकाल पछिताना ॥
बहुतक देखे पीर-औलिया पढ़ै किताब-कुराना।
करै मुरीद कबर बतलावै, उनहूँ खुदा न जाना ॥

---

१०६ अँगिया=चोली, यहाँ मन की मलिन वृत्ति या वासना से आशय है। गवन नगिचाई=गौना; अर्थात् मरण समीप आ गया है। बहुरिया=बहू, वधू।

१०७ पतियाना=विश्वास करता है। मरम=असल भेद। पषानैं=पत्थर की मूर्ति को। थोथा=सारहीन। डिंभ=दंभ, पाखंड। बर्त=व्रत। मुरीद=चेला।

हिन्दु की दया मेहर तुरकन की दोनों घर से भागी।
वह करै जिबह वाँ झटका मारै, आग दोऊ घर लागी।
या बिधि हँसी चलत है हमको आप कहावै स्याना।
कहै कबीर सुनो भई साधो, इनमे कौन दिवाना ॥१०७॥

वै क्यूं कासी तजै मुरारी। तेरी सेवा-चोर भये बनवारी॥
जोगी जती तपी संन्यासी। मठ-देवल बसि परसै कासी॥
तीन बार जे नितप्रति न्हावै। काया भीतरि खबरि न पावै॥
देवल देवल फेरी देही। नाम निरंजन कबहुँ न लेही॥
तरन–बिरद कासी कों न देहूं। कहै कबीर भल नरकहिं जैहूं॥१०८॥

तलफै बिन बालम मोर जिया।
दिन नहिं चैन रात नहिं निंदिया, तलफ-तलफके भोर किया॥
तन-मन मोर रहट-अस डोलै, सून सेज पर जनम छिया।
नैन थकित भये पथ न सूझै, साँई बेदरदी सुध हू न लिया।
कहत कबीर सुनो भई साधो, हरो पीर दुख जोर किया॥१०९॥

नाम-अमल उतरै ना भाई।
और अमल छिन-छिन चढ़ि उतरै, नाम-अमल दिन बढै सवाई।

स्याना=सयाना, समझदार। दिवाना=दीवाना, पागल, मूर्ख।

१०८ बनवारी=वनमाली, विष्णु का एक नाम। काया पावै=पता नही कि शरीर के भीतर कितना मल-मूत्र भरा है। फेरी=परिक्रमा। तरन-बिरद=संसार से मुक्त होने का यश।

१०९ छिया=मलिन, घृणित, धिक्कार, क्षीण हो रहा है–यह अर्थ भी किया जा सकता है।

११० अमल=नशा। सुरत किये=ध्यान या स्मरण करने पर।

देखत चढ़ै सुनत हिय लागै, सुरत किये तन देत घुमाई ।
पियत पियाला भये मतवाला, पायो नाम, मिटी दुचिताई ॥
जो जन नाम अमल-रस चाखा, तर गई गनिका सदन कसाई ।
कहै कबीर गूँगे गुड़ खाया, बिन रसना का करै बड़ाई ॥११०॥

करो जतन सखी साँई मिलन की ।
गुड़िया गुड़वा सूप सुपलिया, तजिदे बुधि लरिकैयाँ खेलन की ॥
देवता पित्तर भुइयाँ भवानी, यह मारग चौरासी चलन की ।
ऊंचा महल अजब रँग बगला, साईं की सेज वहाँ लागी फूलन की ॥
तन मन धन सब अर्पन कर वहाँ, सुरत सम्हार परूँ पइयाँ सजन की ।
कहै कबीर निर्भय होय हंसा, कुंजी बता द्यों ताला खुलन की ॥१११॥

दरस-दिवाना बावरा अलमस्त फकीरा ।
एक अकेला ह्वै रहा अस मत का धीरा ॥
हिरदे में महबूब है हरदम का प्याला ।
पीयेगा कोई जौहरी गुरुमुख मतवाला ॥
पियत पियाला प्रेम का सुधरे सब साथी ।
आठ पहर झूमत रहै जस मैगल हाथी ॥
बंधन काटे मोह के बैठा निरसंका ।
वाके नजर न आवता क्या राजा क्या रंक ॥

देत घुमाई=चक्कर खिला देता है । दुचिताई=चित्त की अस्थिरता, दुविधा ।

१११ गुड़िया ··सुपलिया=लडकियो के खेलने के खिलौने । बुधि=बुद्धि, स्वभाव । चौरासी चलन की=चौरासी लाख योनियों में जन्म लेने की । अजबरँग=अद्भुत शोभा । सजन=स्वामी । हसा=मुक्त जीवात्मा से अभिप्राय है ।

११२ अलमस्त=मतवाला, बेहोश, निर्द्वन्द्व । महबूब=प्रियतम । हरदम का

धरती आसन किया, तबू असमाना ।
चोला पहिरा खाक का, रह पाक समाना ॥
सेवक को सतगुरु मिले कछु रही न तवाही ।
कहै कबीर निज घर चलो, जहँ काल न जाही ॥११२॥

सोच-समुझ अभिमानी, चादर भई है पुरानी ॥
टुकडे-टुकडे जोड़ि जगत सों, सीके अंग लिपटानी ।
कर डारी मैली पापन सों, लोभ-मोह में सानी ॥
ना यहि लग्यो ग्यानकै साबुन, ना धोई भल पानी ।
सारी उमिर ओढ़ते बीती, भली बुरी नहिं जानी ।
सका मान जान जिय अपने, यह है बसतु बिरानी ।
कहत कबीर धरि राखु जतन ते, फेर हाथ नहिं आनी ॥११३॥

पीले प्याला हो मतवाला, प्याला नाम-अमीरस का रे ।
बालपना सब खेलि गँवाया, तरुन भया नारी-बस का रे ।
बिरध भया कफ बायने घेरा, खाट पड़ा न जाय खसका रे ।
नाभिकँवल बिच है कस्तूरी, जैसे मिरग फिरे बन का रे ।
बिन सतगुरु इतना दुख पाया, बैद मिला नहिं इस तन का रे ।
मात-पिता बधू सुत तिरिया, संग नहिं कोई जाय सका रे ।

प्याला=हर साँस से छलकता हुआ प्रेम-रस । रह पाक समाना=पवित्र आत्मा में लीन हो रहा है ।

११३ चादर=देह से अभिप्राय है । बिरानी=पराई । धरि राखु जतन ते=हरि-भजन करके इसे जरा-मरण से बचाले । फेर हाथ नहिं आनी=फिर यह मनुष्य देह मिलने की नहीं ।

११४ बाय=वायु । गुरु गुन लेगा=परमात्मा लगान या कर्मों का लेखा लेगा ।

जवलग जीवै गुरु गुन लेगा, धन जोवन है दिन दस का रे ।
चौरासी जो उबरा चाहे, छोड कामिनी का चसका रे ।
कहै कबीर सुनो भई साधो, नखसिख पूर रहा बिस का रे ॥११४॥

खेल ले नैहरवा दिन चार ।
पहिली पठौनी तीन जन आये, नौवा बाम्हन वारि ।
बावुलजी, मैं पैयाँ तोरी लागौ अबकी गवन दे टारि ॥
दुसरी पठौनी आपै आये, लेके डोलिया कहार ।
धरि वहियाँ डोलिया बैठारिन, कोउ न लागै गोहार ॥
ले डोलिया जाइ बन में उतारनि, कोइ नहीं संगी हमार ।
कहै कवीर सुनो भई साधो, इक घर है दस द्वार ॥११५॥

तोको पीव मिलैगे घूँघट के पट खोल रे ।
घट-घट में वही साईं रमता, कटुक बचन मत बोल रे ॥
धन जोवन का गरव न कीजै, झूठा पंचरग चोल रे ।
सुन्न महल मे दियना बार ले, आसन सों मत डोल रे ॥
जोग जुगत सों रंगमहल मे, पिय पायो अनमोल रे ।
कहैं कवीर आनंद भयो है, वाजत अनहद ढोल रे ॥११६॥

साहेव है रंगरेज चुनरी मेरी रँग डारी ।
स्याही रंग छुड़ायके रे दियो मजीठा रग ।

चसका=चाट, लत ।

११५ नैहरवा=पीहर, मायका, इहलोक एवं शरीर से अभिप्राय है । बावुल=बाबू, पिता । गवन=गौना यहाँ मरण-यात्रा मे अभिप्राय है । धरि बहियाँ= बाहँ पकडकर । गोहार=पुकार । घर=शरीर मे आशय है ।

११६ पचरंग चोल=पचतत्त्व का रचा शरीर ।

धोये से छूटे नही रे, दिन दिन होत सुरंग ॥
भाव के कुण्ड नेह के जल मे प्रेमरंग दई बोर।
दुख देइ मैल छुटाय दे रे, खूब रँगी झकझोर ॥
साहिबने चुनरी रगी रे, पीतम चतुर सुजान।
सब कुछ उनपर वारदूँ रे, तन मन धन औ प्रान ॥
कहैं कबीर रंगरेज पियारे मुझपर हुए दयाल।
सीतल चुनरी ओढ़िके रे, भई हौं मगन निहाल ॥११७॥

अरे, इन दोहुन राह न पाई ॥
हिन्दू अपनी करै बड़ाई, गागर छुवन न देई।
बेस्या के पायन तर सोवै यह देखो हिन्दुआई॥
मुसलमान के पीर औलिया मुर्गी मुर्गा खाई।
खाला केरी बेटी व्याहै घरहिं मे करै सगाई ॥
बाहर से इक मुर्दा लाये धोय-धाय चढ़वाई।
सब सखियाँ मिलि जेमन बैठी, घर-भर करै बड़ाई॥
हिंदुन की हिंदुवाई देखी तुरकन की तुरकाई।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, कौन राह ह्वै जाई ॥११८॥

दुई जगदीस कहाँ ते आया, कहु कवने भरमाया।
अल्लह-राम करीमा केसौ, हरि हजरत नाम धराया ॥

---

११७ मजीठा=एक लता जिसकी सूखी जड और डठलो को उबालकर पक्का लाल रग तैयार किया जाता है। सुरग=लाल, अनुरागमय। सीतल=शान्ति देनेवाली, ताप दूर करनेवाली।

११८ खाला केरी=मौसी की। मुर्दा=हलाल किया हुआ जानवर। चढ़वाई=देगची में पकाया।

गहना एक कनक ते गढ़ना, इनि महँ भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ करि थापिन, इक निमाज इक पूजा ॥
वही महादेव वही महंमद ब्रह्मा-आदम कहिये।
को हिन्दू को तुरक कहावै, एक जिमी पर रहिये।
बेद-किताब पढ़े वे कुतुवा, वे मोलनां वे पाँडे।
बेगरि-बेगरि नाम धराये एक मटिया के भाँडे ॥
कहहि कबीर वे दूनौं भूले, रामहिं किनहुँ न पाया।
वै खस्सी वे गाय कटावैं बादहिं जन्म गवाया ॥११९॥

यह जग अंधा मैं केहि समुझावों ॥
इक-दुइ होंय उन्हैं समुझावौं सब ही भुलाना पेट के धंधा।
पानी के घोड़ा पवन असवरवा ढरकि परै जस ओस के बुंदा ॥
गहिरी नदिया अगम बहै धरवा, खेवनहारा पड़िगा फंदा।
घर की वस्तु निकट नहि आवत दियना बारिके ढूंढ़त अंधा ॥
लागी आग सकल बन जरिगा बिन गुरुग्यान भटकिया बंदा।
कहै कबीर सुनो भई साधो, एक दिन जाय लगोटी झार बंदा ॥१२०॥

तेहि साहब के लागो साथा। दुइ-दुख मेटिके होइ सनाथा ॥
दसरथ-कुल अवतरि नहिं आया। नहिं लंका के राय सताया ॥
नहिं देवकि के गर्भहिं आया। नहीं जसोदा गोद खिलाया ॥

---

११९ कवने भरमाया=किसने भ्रम मे डाल दिया। केसो=केशव। कनक=सोना। दुइ करि थापिन=दो बनाकर खडे कर दिये। बेगरि-बेगरि=अलग-अलग। खस्सी=बकरा। बादहि=व्यर्थ ही।

१२० असवरवा=सवार। पानी के घोडा=क्षणभगुर देह से आशय है। पवन असवरवा=प्राण-वायु से आशय है। धरवा=धार। बंदा=सेवक, जीव।

१२१ दुइ-दुख=द्वैतभाव-जनित दुःख। पृथ्वी-रमन··करिया=राजाओ को

पृथ्वीरमन दमन नहिं करिया। बैठि पताल नही बलि छलिया ॥
नहिं बलिराय सों मॉडी रारी। नहिं हिरनाकुस बधल पछारी ॥
रूप बराह धरणि नहिं धरिया। छत्री मारि निछत्री न करिया ॥
नहिं गोवर्धन कर पर धरिया। नही ग्वाल सॅग बन-बन फिरिया ॥
गंडक सालग्राम न सीला। मत्स्य कच्छ ह्वै नहिं जल हीला ॥
द्वारावती सरीर न छॉडा। लै जगनाथ पिंड नहिं गाड़ा ॥
कहहि कबीर पुकारिकै, वा पंथे तूं मत भूल ॥
जेहि राखे अनुमान करि थूल नही असथूल ॥१२१॥

राम-गुण न्यारो न्यारो न्यारो।
अबुझा लोग कहॉलौ बूझै बूझनहार बिचारो ॥
केते रामचद्र तपसी-से जिन जग यह बिरमाया।
केते कान्ह भये मुरलीधर, तिन भी अत न पाया ॥
मच्छ, कच्छ, वाराहस्वरूपी, बामन नाम धराया।
केते बौध भये निकलंकी, तिन भी अंत न पाया ॥
केतिक सिध साधक संन्यासी जिन बनबास बसाया।
केते मुनिजन गोरख कहिये, तिन भी अत न पाया ॥

पराजित नही किया। बधल पछारी=पछाडकर मारा। गडक ''शीला=गडकी नदी मे पाई जानेवाली शालग्राम-शिला, वह स्वामी नही है। हीला=प्रवेश किया। थूल=स्थूल, वह रूप जिसका निरूपण मन व वाणी से हो सकता है। असथूल=सूक्ष्मतम, वह रूप जहॉ मन-वाणी की गति नही।

१२२ न्यारो=निराला, अलौकिक। अबुझा=मूढ। बिरमाया=मोहित करके फॅसा रखा। बौध=बुद्ध, बोधिसत्त्व। निकलकी=निष्कलक, कल्कि,

जाकी गति ब्रह्मै नहिं पाये सिव सनकादिक हारे।
ताके गुन नर कैसे पैहौ, कहै कबीर पुकारे ॥१२२॥

मोको कहाँ ढूँढ़ो बंदे मैं तो तेरे पास मे।
ना मैं बकरी ना मै भेड़ी, ना मैं छुरी गँड़ास मे॥
नहीं खाल मे नही पोंछ मे, ना हड्डी ना माँस मे।
ना मै देवल ना मै मसजिद, ना काबे कैलास मे॥
ना तो कौनो क्रिया-कर्म मे, नही जोग-बैराग मे।
खोजी होय तौ तुरतै मिलिहौ पलभर की तालास मे॥
मै तो रहौं सहर के बाहर, मेरी पुरी मवास मे।
कहै कबीर सुनो भाई साधो सब साँसों की साँस मे॥१२३॥

चल सतगुरु की हाट, ग्यान बुधि लाइए।
कर साहब सों हेत, परमपद पाइए॥
सतगुरु सब कछु दीन, देन कछु नहिं रह्यो।
हमहिं अभागिन नारि, छोरि सुख दुख लह्यो॥
गई पिया के महल, हिया अँग ना रची।
रह्यो कपट हिय छाय मान लज्जा भरी॥
जहाँ गैल सिलहिली, चढ़ौ गिरि-गिरि परौं।
उहुँठ सम्हारि सम्हारि, चरण आगे धरौं॥
पिया-मिलन की चाह कौन तेरे लाज है।

विष्णु का भावी दसवाँ अवतार।

१२३ गँडास=गंडासा, घास के टुकडे करने का हथयार। खोजी=सत्य-शोधक मवास=दुर्गम गढ़; अंतरात्मा से आशय है। सहर के बाहर=पंच-भौतिक सृष्टि से परे।

१२४ छोरि=छोडकर। रची=प्रेम मे रँगी। गैल=राह। सिलहिली=फिस-

अधर मिलो किन जाय भला दिन आज है ॥
भला बना सजोग प्रेम का चोलना ।
तन मन अरपौ सीस साहब हँस बोलना ॥
जो गुरु रुठे होंय तो तुरत मनाइए ।
हुइए दीन अधीन चूकि बगसाइए ॥
जो गुरु होंय दयाल दया दिल हेरिहै ।
कोटि करम कटि जायँ पलक छिन फेरिहै ॥
कह कबीर समुझाय समुझ हिरदै धरो ।
जुगन-जुगन करु राज, कुमति अस परिहरो ॥१२४॥

जेहि कुल भगत भाग वड़ होई ।
अवरन बरन न गनिय रक धनि, बिमल बास निज सोई ॥
बाम्हन छत्री बैस सूद्र सब भगत समान न कोई ।
धन वह गांव ठांव असथाना ह्वै पुनीत सँग लोई ॥
होत पुनीत जपै सतनामा, आपु तरै तारै कुल दोई ।
जैसे पुरइन रह जल भीतर, कह कबीर जग मे जन सोई ॥१२५॥

कैसे दिन कटिहैं जतन बताये जइयो ।
एहि पार गगा वोही पार जमुना,
बिचवां मढ़इया हमका छवाये जइयो ॥

लनेवाली, रपटीली । अधर=निराधार, शून्य-मंडल, समाधि की सहज अवस्था । चोलना=चोला ।

१२५ लोई=लोग । पुरइन=कमल का पत्ता जो जल मे रहते हुए जल से अलिप्त रहता है । जन सोई=वही सच्चा हरि-भक्त है ।

१२६ एहि पार '' छवाये जइयो=गगा का अर्थ यहाँ इडा नाडी है, और जमुना

अंचरा फारिके कागद बनाइन,
अपनी सुरतिया हियरे लिखाये जइयो ॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बहियां पकरि के रहिया बताये जइयो ॥१२६॥

हूँ बारी, मुख फेरि पिया रे। करवट दे मोहिं काहे को मारे ॥
करवत भला, न करवट तेरी। लाग गरे सुन बिनती मेरी ॥
हम तुम बीच भया नहिं कोई। तुमहि सो कंत, नारि हम सोई ॥
कहत कबीर सुनो नर लोई। अब तुम्हरी परतीत न होई ॥१२७॥

पंडित बाद बदौ सो झूठा।
राम के कहे जगत गति पावै, खाँड कहे मुख मीठा ॥
पावक कहे पाँव जो दाझै, जल कहे तृखा बुझाई।
भोजन कहे भूख जो भागै, तो दुनियां तरि जाई ॥
नर के संग सुवा हरि बोलै, हरि-प्रताप नहिं जानै।
जो कबहूँ उड़िजाय जंगल को, तौ हरि-सुरति न आनै ॥
बिनु देखे बिनु अरस परस बिनु, नाम लिये का होई।
धन के कहे धनिक जो होतो, निरधन रहत न कोई ॥
साँची प्रीति बिषय-माया सों, हरि-भगतन की हाँसी।
कह कबीर एक राम भजे बिन बाँधे जमपुर जासी ॥१२८॥

का अर्थ है पिंगला नाडी। इन दोनो के बीच है सुषुम्णा। यह योगियो की सहज शून्यावस्था है, यहीं पर मढैया छा देने के लिए कहा गया है। सुरतिया=सुध, लौ। रहिया=राह, सुरत-मार्ग।

१२७ हूँ बारी=मै बलैया लेती हूँ। करवत=लकडी चीरने का बडा आरा। बीच=भेद डालनेवाला। लोई=लोगो।

१२८ गति=मोक्ष। दाझै=जले। अरस=मिलन। हाँसी=मजाक, अपमान। जासी=जाओगे।

फिरहु का फूले फूले फूले ।
जो दस मास अरधमुख भूले, सो दिन काहे भूले ।
ज्यों माखी स्वादै लहि बिहरै सॉचि-सॉचि धन कीन्हा ।
त्यौं ही पीछे लेहु लेहु करि भूत रह न कछु दीन्हा ॥
देहरी लौं वर नारि सग है, आगे संग सहेला ।
मृतक-थान सँग दियो खटोला, फिरि पुनि हस अकेला ॥
जारे देह भसम ह्वै जाई, गाडे माटी खाई ।
कॉचे कुम्भ उदक ज्यों भरिया, तन की इहै बड़ाई ॥
राम न रमसि मोह मे माते, पर्‍यो काल वस कूवा ।
कह कबीर नर आप बँधायो ज्यों नलिनी भ्रम सूवा ॥१२६॥

मेरा तेरा मनुआं कैसे इक होइ रे ।
मै कहता हौ ऑखिन देखी, तूं कागद की लेखी रे ।
मै कहता सुरझावनहारी, तूं राख्यो अरुझाइ रे ॥
मैं कहता तूं जागत रहियो, तूं रहता है सोइ रे ।
मै कहता निर्मोही रहियो, तूं जाता है मोहि रे ॥
जुगन-जुगन समझावत हारा, कहा न मानत कोइ रे ।
तू तो रडी फिरै बिहंडी, सब धन डार्‍या खोइ रे ॥
सतगुरु-धारा निरमल बाहै, वा मे काया धोइ रे ।
कहत कबीर सुनो भाई साधो, तबही वैसा होइ रे ॥१३०॥

---

१२६ अरधमुख=अधोमुख, नीचे को मुहँ । झूले=लटकते रहे । सॉचि-सॉचि=सचय कर-कर । सहेला=साथी, मित्र । खटोला=अरथी । हंस=जीव । कुंभ=घडा । उदक=पानी । कूवा = भ्रम का कुआँ ।

१३० बिहडी=नाश करनेवाली । बाहै=बहती है । वैसा होई रे=अरे, तभी तू सद्गुरु के समान निर्मल होगा ।

अरे मन, समझ कै लादु लदनियाँ।
काहे क टट्टुवा काहे क पाखर, काहे क भरी गवनियाँ।
मन कै टट्टुवा सुरति कै पाखर, भर पुन-पाप गवनियाँ॥
घर के लोग जगाती लागे, छीन लेयँ कर धनियाँ।
सौदा करु तो यहिं करु भाई, आगे हाट न बनियाँ॥
पानी-पियै तो यही पी भाई, आगे देस निपनियाँ।
कहै कबीर सुनो भाई साधो, सत्तनाम का बनियाँ॥१३१॥

नैहर में दाग लगाय आई चुनरी।
ऊ रँगरेजवा कै मरम न जानै,
नहिं मिलै धोबिया कवन करै उजरी॥
तन कै कूँडी ग्यान कै सउँदन,
साबुन महँग बिकाय या नगरी॥
पहिरि-ओढ़िकै चली ससुररिया,
गौवाँ के लोग कहैं बड़ी फुहरी॥
कहत कबीर सुनो भाई साधो,
बिन सतगुरु कबहूँ नहिं सुधरी॥१३२॥

कौन ठगवा नगरिया लूटल हो।
चंदन-काठ कै बनल खटोलना ता पर दुलहिन सूतल हो॥

---

१३१ टट्टुवा = छोटा घोड़ा, जिसपर माल लादते हैं। पाखर = टाट की झूल। गवनियाँ = गोन, टाट का थैला, खास। पुन = पुण्य, सत्कर्म। जगाती = महसूल उगाहनेवाला। कर धनियाँ = हाथ का धन या पूँजी। निपनियाँ = बिना पानी का।

१३२ कूँडी = छोटी नाँद। सउँदन = रेह-मिला पानी, जिसमें धोने से पहले धोबी कपड़ों को भिगोता है। फुहरी = फूहड़, गँवार।

उठो सखी मोरी माँग सँवारो, दुलहा मोसे रूसल हो।
आये जमराज पलँग चढ़ि बैठे नैनन आँसू टूटल हो॥
चारि जने मिलि खाट उठाइन चहुँ दिसि धूधू ऊठल हो।
कहत कबीर सुनो भाइ साधो जग से नाता छूटल हो॥१३३॥

रमैया कै दुलहिन लूटा बजार।
सुरपुर लूट नागपुर लूटा, तीन लोक मचा हाहाकार॥
ब्रह्मा लूटे महादेव लूटे, नारद मुनि कै परी पिछार।
स्रिंगी की मिंगी करि डारी, पारासर कै उदर बिदार॥
कनफूँका चिदकासी लूटे, लूटे जोगेसर करत बिचार।
हम तो बचिगे साहब दया से, सब्द-डार गहि उतरे पार॥१३४॥

---

१३३ नगरिया=नगरी, देह से आशय है। दुलहिन=जीव। सूतल=सोगई। रूसल=रूठ गया। टूटल=निकल पडे। धूधू=आग के दहकने का शब्द।

१३४ रमैया कै दुलहिन=माया से अभिप्राय है। स्रिंगी=शृंगी ऋषि। मिंगी=गिरी, चूरचूर। चिदकासी=आकाश के समान निर्लिप्त चेतनरूप।

साखी

गुरुदेव कौ अंग

राम नाम कै पंटतरै, देवै को कुछ नांहिं।
क्या ले गुर संतोपिए, हौंस रही मन मांहिं ॥१॥

सतगुर लई कमांण करि, बांहण लागा तीर।
एक जु बाह्या प्रीति सूं, भीतर रह्या सरीर ॥२॥

हँसै न बोलै उनमुनी, चंचल मेल्या मारि।
कहै कबीर भीतरि भिद्या, सतगुर कै हथियारि ॥३॥

गूँगा हूवा बावला, बहरा हूवा कान।
पाऊँ थै पंगुल भया, सतगुर मार्‍या बाण ॥४॥

दीपक दीया तेल भरि, वाती दई अघट्ट।
पूरा किया बिसाहुणां, बहुरि न आवौं हट्ट ॥५॥

गुरुदेव कौ अंग

१ पटतरै = तुलना, उपमा। हौंस = साहसरूपी इच्छा, हौसला।

२ कमाण = धनुष। बाहण लागा = चलाने लगा।

३ उनमुनी = मौन, चुपचाप।

५ अघट्ट = जो कभी न घटे, अक्षय। बिसाहुणा = सौदा लेना। हट्ट=हाट, पेठ।

ग्यान प्रकास्या गुर मिल्या, सो जिनि बीसरि जाइ।
जब गोविंद कृपा करी, तब गुर मिलिया आइ ॥६॥

चौसठि दीवा जोइ करि, चौदह चंदा मांहिं।
तिहिं घरि किसकौ चानिणौ, जिहि घरि गोबिंद नांहिं ॥७॥

माया दीपक नर पतँग, भ्रमि-भ्रमि इवै पडंत।
कहै कबीर गुर-ग्यान थै, एक आध उबरंत ॥८॥

गुर गोबिंद तौ एक है, दूजा यहु आकार।
आप मेट जीवत मरै, तौ पावै करतार ॥९॥

कबीर सतगुर नां मिल्या, रही अधूरी सीप।
स्वांग जती का पहरि करि, घरि-घरि मांगै भीप ॥१०॥

पासा पकड्या प्रेम का, सारी किया सरीर।
सतगुर दाव बताइया, खेलै दास कबीर ॥११॥

कबीर बादल प्रेम का हम परि बरष्या आइ।
अंतरि भीगी आत्मां, हरी भई बनराइ ॥१२॥

पूरे सूं परचा भया, सब दुख मेल्या दूरि।
निर्मल कीन्हीं आत्मां, ताथै सदा हजूरि ॥१३॥

---

७ चानिणो = चाँदना, उँजेला।

८ इवै = इस तरह। उबरंत = बच जाता है।

९ आप मेट जीवत मरे = अहंभाव को नष्टकर देहभाव की भूल जाये।

१० जती = यति, सन्यासी। स्वाग = भेष।

११ सारी = चौपड।

१३ मेल्या = फेक दिया।

गुरु गोविंद दोऊ खडे, काके लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने, गोविंद दियो बताय ॥१४॥

तन मन दिया तो क्या भया, निज मन दिया न जाय।
कह कबीर ता दास सों, कैसे मन पतियाय ॥१५॥

गुरु धोबी सिष कापड़ा, साबुन सिरजनहार।
सुरति-सिला पर धोइए, निकसै जोति अपार ॥१६॥

कबिरा ते नर अंध है, गुरु को कहते और।
हरि रूठै गुरु ठौर है, गुरु रूठे नहिं ठौर ॥१७॥

कबिरा हरि के रूठते, गुरु के सरने जाय।
कह कबीर गुरु रुठते, हरि नहिं होत सहाय ॥१८॥

यह तन विष की बेलरी, गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले, तौ भी सस्ता जान ॥१९॥

ताका पूरा क्यों परै, गुरु न लखाई बाट।
ताको बेड़ा बूड़िहै, फिर फिर औघट घाट ॥२०॥

सुमिरण कौ अंग

कबीर कहै मैं कथि गया, कथि गया ब्रह्म महेस।
राम नाँव ततसार है, सब काहू उपदेस ॥१॥

---

१६ सुरति = ध्यान, लय।

१९ बेलरी = लता।

२० औघट = अडबड, विकट।

सुमिरण कौ अंग

१ तत सार = तत्व का सार, इसका एक अर्थ "तपाने का स्थान" भी होता है, जैसे, "कसनी दे कन्चन किया, ताय लिया ततसार।"

तत्त-तिलक तिहुँ लोक मैं, राम नाँव निज सार ।
जन कबीर मस्तक दिया, सोभा अधिक अपार ॥२॥

मेरा मन सुमिरै राम कूँ, मेरा मन रामहिं आहि ।
अब मन रामहिं ह्वै रह्या, सीस नवावौं काहि ॥३॥

कबीर सूता क्या करै, उठि ना रोवै दुक्ख ।
जाका बासा गोर मैं, सो क्यूँ सोवै सुक्ख ॥४॥

जिहि घटि प्रीति न प्रेमरस, फुनि रसना नहीं राम ।
ते नर इस संसार मैं, उपजि षये बेकाम ॥५॥

जिहि हरि जैसा जांणियां, तिनकूँ तैसा लाभ ।
ओसों प्यास न भाजई, जबलग धसै न आभ ॥६॥

राम पियारा छाडिकरि, करै आन का जाप ।
बेस्वा केरा पूत ज्यूँ, कहै कौन सूं बाप ॥७॥

लूटि सकै तो लूटियौ, राम नाम भडार ।
काल कठ तै गहैगा, रूँधै दसूँ दुवार ॥८॥

---

३ रामहि आहि = राम के ही लिए है ।

४ गोर = कब्र ।

५ फुनि = पुनः, फिर । षये = क्षय हो गये ।

६ आभ = आब, पानी ।

७ वेस्वा = वेश्या ।

८ दसूँ दुवार = दसो इन्द्रियों से अभिप्राय है ।

कबीर राम रिझाइ लै, मुखि अंमृत गुण गाइ ।
फूटा नग ज्यूँ जोड़ि मन, संधे सँधि मिलाइ ॥९॥

सुख मे सुमिरन ना किया, दुख में कीया याद ॥
कह कबीर ता दास की कौन सुनै फरियाद ॥१०॥

सुमिरन सुरत लगाइके मुख ते कछू न बोल ।
बाहर के पट देइके अंतर के पट खोल ॥११॥

माला फेरत जुग भया, फिरा न मन का फेर ।
कर का मनका डारिदे, मन का मनका फेर ॥१२॥

कबिरा माला मनहिं की, और संसारी भेख ।
माला फेरे हरि मिलै, गले रहँट के देख ॥१३॥

माला तो कर मे फिरै, जीभ फिरै मुख माहिं ।
मनुवां तो दहुँदिसि फिरै, यह तो सुमिरन नाहिं ॥१४॥

जाप मरै अजपा मरै, अनहद भी मर जाय ।
सुरत समानी सब्द मे, ताहिं काल नहिं खाय ॥१५॥

तूँ तूँ करता तूँ भया, मुझमे रही न हूँ ।
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तूँ ॥१६॥

---

९ संधे सधि = जोड से जोड ।

११ बाहर ... खोल = विषयो के लिए इन्द्रियों के द्वार बंद करदे और अतर के किवाड स्वरूप-दर्शन के लिए खोलदे ।

१२ फेर = (१) भेद, द्वैतभाव (२) माला जपना । मनका = गुरिया, सुमिरनी ।

१४ दहुँ = दसों ।

१६ वारी = बलिहारी ।

बिरह कौ अंग

चकवी बिछुटी रैणि की, आइ मिली परभाति ।
जे जन बिछुटे राम सूँ, ते दिन मिले न राति ॥१॥

बिरहनि ऊभी पथ सिरि, पंथी बूझै धाइ ।
एक सबद कहि पीव का, कब रे मिलैंगे आइ ॥२॥

बिरहनि ऊठै भी पड़ै, दरसन कारनि राम ।
मूवां पीछै देहुगे, सो दरसन किहि काम ॥३॥

अंदेसड़ा न भाजिसी, सदेसौ कहियां ।
कै हरि आयां भाजिसी, कै हरि ही पासि गयां ॥४॥

जबहूँ मार्‌या खैंचिकरि, तब मैं पाई जांणि ।
लागी चोट मरम्म की, गई कलेजा छांणि ॥५॥

जिहि सरि मारी काल्हि, सो सर मेरे मन बस्या ।
तिहि सरि अजहूँ मारि, सर बिन सचु पाऊँ नहीं ॥६॥

बिरह-भुवगम तन बसै, मन्त्र न लागै कोइ ।
राम-बियोगी ना जिवै, जिवै त बौरा होइ ॥७॥

बिरह कौ अंग

१ बिछुटी=बिछुड़ी । परभाति=प्रभात, सवेरे ।

२ ऊभी=खड़ी । पथ सिरि=प्रेम-पथ की चोटी पर ।

४ अदेसड़ा न भाजिसी=अदेशा नहीं जायेगा ।

५ गई छाणि=भेदकर पार कर गई ।

६ सर=सद्गुरु के शब्द-बाण से आशय है । सचु=चैन ।

७ बियोगी=वियोगी ।

सब रग तंत रबाब तन, बिरह बजावै नित्त ।
और न कोई सुणि सकै, कै सांई कै चित्त ॥८॥

अंषड़ियाँ झाँई पड़ी, पंथ निहारि-निहारि ।
जीभड़ियाँ छाला पड़्या, राम पुकारि-पुकारि ॥९॥

इस तन का दीवा करौं, बाती मेल्यूं जीव ।
लोही सींचौं तेल ज्यूँ, कब मुख देखौं पीव ॥१०॥

अंषड़ियाँ प्रेम कसाइयाँ, लोग जांणै दुखड़ियां ।
सांई अपणै कारणै, रोइ-रोइ रतड़ियां ॥११॥

जौ रोऊँ तौ बल घटै, हँसौं तौ राम रिसाइ ।
मनही मांहिं बिसूरणां, ज्यूँ घुण काठहि खाइ ॥१२॥

हँसि-हँसि कंत न पाइए, जिनि पाया तिनि रोइ ।
जे हाँसेही हरि मिलै, तौ नहीं दुहागनि कोइ ॥१३॥

नैंनां अंतरि आचरूँ, निसदिन निरखौं तोहिं ।
कब हरि दरसन देहुगे, सो दिन आवै मोहिं ॥१४॥

कै बिरहनि कूँ मीच दै, कै आपहिं दिखलाइ ।
आठ पहर का दाझणां, मोपै सह्या न जाइ ॥१५॥

---

८ तत=तार । रबाब=एक प्रकार का बाजा, इसरार ।

९ झाँई=अँधेरा ।

११ कसाइयाँ=कसक रही है, पीड़ा दे रही हैं । दुखड़ियाँ=दुखने को आई हैं । रतड़ियाँ=लाल हो रही हैं ।

१२ बिसूरणा=मन मे दुःख मानना, चिता करना ।

१३ दुहागनि=अभागिनी, विधवा ।

१५ दाझणा=जलना ।

हौं बिरहा की लाकड़ी, समझि समझि धूँधाउँ ।
छूटि पड़ौं या बिरह तैं, जे सारीही जलि जाउँ ॥१६॥

सुखिया सब संसार है, खायै अरू सोवै ।
दुखिया दास कबीर है, जागै अरु रोवै ॥१७॥

बिरहिन देय संदेसरा, सुनो हमारे पीव ।
जल बिन मच्छी क्यों जियै, पानी में का जीव ॥१८॥

नैनन तो झरि लाइया, रहँट बहै निसु-बास ।
पपिहा ज्यों पिउ-पिउ रटै, पिया-मिलन की आस ॥१९॥

बिरह भुवंगम पैठिकै किया कलेजे घाव ।
बिरही अंग न मोड़िहै, ज्यों भावे त्यों खाव ॥२०॥

बिरहिन ओदी लाकड़ी, सपचै औ धुँधुआय ।
छूट पड़ौं या बिरह से, जो सगरो जरि जाय ॥२१॥

हिरदे भीतर दव बलै, धुआँ न परगट होय ।
जाके लागी सो लखै, की जिन लागी सोय ॥२२॥

सांई सेवत जल गई, माँस न रहिया देह ।
साँई जबलगि सेइहौं, यह तन होइ न खेह ॥२३॥

मूए पाछे मत मिलौ, कहै कबीरा राम ।
लोहा माटी मिलि गया, तब पारस केहि काम ॥२४॥

---

१६ बास=वासर, दिन ।

२१ ओदी=गीली । सपचै=सुलगे ।

२२ दव=आग । लागी=(१) लगी है (२) लगाई है ।

२३ सेवत=राह देखते-देखते । खेह=भस्म, मिट्टी ।

बिरह-अगिन तन मन जला, लागि रहा तत जीव ।
कै वा जाने बिरहिनी, कै जिन भेटा पीव ॥२५॥

कबिरा बैद बुलाइया, पकरिके देखी बाहिं ।
बैद न वेदन जानई, करक कलेजे माहिं ॥२६॥

ग्यान बिरह कौ अंग

दौं लागी साइर जल्या, पंषी बैठे आइ ।
दाधी देह न पालवै, सतगुर गया लगाइ ॥१॥

अहेड़ी दौं लाइया, मृगा पुकारे रोइ ।
जा बन मैं क्रीला करी, दाझत है बन सोइ ॥२॥

परचा कौ अंग

कबीर तेज अनंत का, मानौ ऊगी सूरज सेणि ।
पति सँगि जागी सुंदरी, कौतिग दीठा तेणि ॥१॥

---

२६ वेदन = वेदना, पीडा । करक = कसक, दर्द ।

ग्यान बिरह कौ अंग

१ दौं = वन की आग । साइर = जलाशय । दाधी = जली । न पालवै = पल्लवित अर्थात् हरी नही होती ।

२ अहेडी = अहेरी, शिकारी, काल से तात्पर्य है । क्रीला = क्रीडा । दाझत है = जल रहा है । वन = देह से आशय है ।

परचा कौ अंग

१ सेणि = श्रेणी । सुन्दरी = प्रेम-लक्षणा भक्ति की साधिका जीवात्मा से आशय है । कौतिग = कौतुक, लीला ।

पारब्रह्म के तेज का, कैसा है उनमान।
कहिबे कूँ सोभा नहीं, देख्याही परवान ॥२॥

अगम अगोचर गमि नहीं, तहाँ जगमगै जोति।
जहाँ कबीरा बंदिगी, (तहाँ) पाप पुन्य नहीं छोति ॥३॥

अंतरि-कँवल प्रकासिया, ब्रह्म वास तहाँ होइ।
मन-भँवरा तहाँ लुबधिया, जाणैगा जन कोइ ॥४॥

देखौ कर्म कबीर का, कछु पूरब जनम का लेख।
जाका महल न मुनि लहैं, सो दोसत किया अलेख ॥५॥

पाणी ही तै हिम भया, हिम ह्वै गया बिलाइ।
जो कुछ था सोई भया, अब कछु कह्या न जाइ ॥६॥

भली भई जो भै पड्या, गई दसा सब भूलि।
पाला गलि पाणी भया, ढुलि मिलिया उस कूलि ॥७॥

अक भरे भरि भेटिया, मन मैं नांहीं धीर।
कहै कबीर ते क्यूँ मिलै, जबलग दोइ सरीर ॥८॥

---

२ उनमान = अनुमान, उपमा। परवान = प्रमाण। सोभा = उपमा।

३ छोति = छूत, प्रवेश।

५ दोसत = दोस्त, मित्र। अलेख = अलख, जिसका वर्णन न किया जा सके।

६ पाणी···बिलाइ = आशय यह है कि जीवात्मा परमात्मा का अंश थी, सो उसीमें लीन हो गई, जैसे पानी से बनी बरफ और वह गलकर पानी में ही मिल गई, पानी ही हो गई।

७ दसा = जीव-दशा। पाला = बरफ।

८ माहि = घट के अंदर।

जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि है मैं नांहिं।
सब अँधियारा मिटि गया, जब दीपक देख्या मांहिं ॥९॥

जा कारणि मै ढूँढता, सनमुख मिलिया आइ।
धन मैली पिव ऊजला, लागि न सकौं पाइ ॥१०॥

जा कारणि मै जाइ था, सोई पाई ठौर।
सोई फिरि आपण भया, जासूँ कहता और ॥११॥

लाली मेरे लाल की जित देखों तित लाल।
लाली देखन मै गई, मै भी हो गई लाल ॥१२॥

उलटि सामना आप से, प्रगटी जोति अनंत।
साहेब सेवक एक सँग खेलै सदा बसंत ॥१३॥

पंजर प्रेम प्रकासिया, अतर भया उजास।
सुख करि सूती महल में, बानी फूटी बास ॥१४॥

कबीरा देखा एक अँग, महिमा कही न जाइ।
तेजपुंज परसा धनी, नैनों रहा समाइ ॥१५॥

गगन गरजि बरसै अमी, बादल गहरि गँभीर।
चहुँदिसि दमकै दामिनी, भींजै दास कबीर ॥१६॥

---

१० धन = स्त्री, जीवात्मा।

१४ पंजर = शरीर। उजास = प्रकाश।

१५ परसा = भेटा। धनी = स्वामी।

१६ गगन = समाधि की शून्यास्थिति से आशय है। गरजि = अनाहत नाद से अभिप्राय हैं।

कबिरा भरम न भाजिया, बहुबिधि धरिया भेख।
सॉई के परिचय बिना, अंतर रहिया रेख ॥१७॥

रस कौ अंग

कबीर हरि-रस यौं पिया, बाकी रही न थाकि।
पाका कलस कुँभार का, बहुरि न चढ़ई चाकि ॥१॥

राम-रसाइन प्रेम-रस, पीवत अधिक रसाल।
कबीर पीवन दुलभ है, मॉगै सीस कलाल ॥२॥

कबीर भाठी कलाल की, बहुतक बैठे आइ।
सिर सौंपै सोई पिवै, नही तौ पिया न जाइ ॥३॥

सबै रसांइण मैं किया, हरि सा और न कोइ।
तिल इक घट मैं संचरै, तौ सब तन कचन होइ ॥४॥

लांवि कौ अंग

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ।
बूँद समानी समँद मैं, सो कत हेरी जाइ ॥१॥

---

१७ रेख = भ्रम अर्थात् भेद-बुद्धि की रेखा।

रस कौ अंग

१ थाकि = अतृप्ति, भूख।

२ सीस = अहभाव से तात्पर्य है। कलाल = सद्‌गुरु से आशय है।

लांवि कौ अंग

१ गया हिराइ = खो गया, लीन हो गया। बूँद = जीवात्मा। समँद = परमात्मा। हेरी जाइ = खोजी जाये।

हेरत हेरत हे सखी, रह्या कबीर हिराइ ।
समँद समाना बूँद मैं, सो कत हेर्‌या जाइ ॥२॥

जर्णा कौ अंग

दीठा है तौ कस कहूँ, कह्यां न को पतियाइ ।
हरि जैसा तैसा रहौ, तूँ हरषि-हरषि गुण गाइ ॥१॥

करता की गति अगम है, तूँ चलि अपणे उनमान ।
धीरै-धीरै पाव दे, पहुँचैगे परवान ॥२॥

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

कबीर प्रीतड़ी तौ तुझसौ, बहु गुणियाले कंत ।
जे हँसि बोलौं और सौं, तौ नील रँगाऊँ दंत ॥१॥

नैनां अतरि आव तूँ, ज्यूँ हौं नैन झँपेऊँ ।
ना हौं देखौं औरकूँ, ना तुझ देखन देऊँ ॥२॥

कबीर रेख स्यंदूर की, काजल दिया न जाइ ।
नैनूँ रमइया रमि रह्या, दूजा कहाँ समाइ ॥३॥

कबीर एक न जांणिया, तौ बहु जांण्यां क्या होइ ।
एक तै सब होत है, सब तैं एक न होइ ॥४॥

जर्णा कौ अंग

२ परवान = प्रमाण, लक्ष्य-स्थान

निहकर्मी पतिव्रता कौ अंग

१ नील रँगाऊँ दंत = मुहँ काला करूँ, अपने आपको कलंक लगाऊँ ।

२ झँपेऊँ = मूँदलूँ ।

मन प्रतीति न प्रेम रस, ना इस तन मैं ढग ।
क्या जाणौं उस पीव सूँ, कैसै रहसी रंग ॥५॥

उस संम्रथ का दास हौं, कदे न होइ अकाज ।
पतिव्रता नांगी रहै, तौ उसही पुरिस कौ लाज ॥६॥

पतिवरता मैली भली, काली कुचिल कुरूप ।
पतिवरता के रूप पर वारों कोटि सरूप ॥७॥

पतिवरता पति को भजै, और न आन सुहाय ।
सिंह बचा जो लंघना तौ भी घास न खाय ॥८॥

सुंदरि तो साँई भजै, तजै आन की आस ।
ताहि न कबहूँ परिहरै, पलक न छाँडै पास ॥९॥

पतिबरता मैली भली, गले कांच की पोत ।
सब सखियन मे यों दिपै ज्यों रवि-ससि की जोत ॥१०॥

नाम न रटा तो क्या हुआ जो अंतर है हेत ।
पतिबरता पति कों भजै मुख से नाम न लेत ॥११॥

सती बिचारी सत किया, काँटों सेज बिछाय ।
लै सूती पिया आपना, चहुँदिस अगिन लगाय ॥१२॥

---

५ कैसै रहसी रग = कैसे प्रेम रहेगा या मिलेगा ।

६ पुरिस = पुरुष, स्वामी ।

७ कुचिल = मैले वस्त्रवाली ।

८ बचा = बच्चा । लंघना = भूखा ।

चितावणी कौ अंग

कबीर नौबति आपणी, दिन दस लेहु बजाइ।
ए पुर पट्टन ए गलीं, बहुरि न देखन आइ ॥१॥

सातों सबद जु बाजते, घरि-घरि होते राग।
ते मंदिर खाली पड़े, बैसण लागे काग ॥२॥

कबीर कहा गरबियौ, इस जोबन की आस।
केसू फूले दिवस चारि, खंखर भये पलास ॥३॥

कबीर कहा गरबियौ, देही देखि सुरंग।
बीछड़ियाँ मिलिबो नहीं, ज्यूँ काँचली भुवंग ॥४॥

कबीर कहा गरबियौ, चाम-लपेटे हड्ड।
हैवर ऊपरि छत्र सिरि, ते भी देबा खड्ड ॥५॥

यहु ऐसा संसार है, जैसा सैंबल फूल।
दिन दस के व्यौहार कौं, झूठै रंगि न भूल ॥६॥

चितावणीं कौ अंग

२ सातों सबद = सातों स्वर। बैसण लागे = बैठने लगे।

३ केसू = टेसू के फूल। खंखर = खखड, उजाड।

५ हैवर = बढ़िया घोड़ा। खड्ड = कब्र से मतलब है।

६ सैंबल = सेमल, एक बड़ा पेड़, जिसमें बड़े-बड़े लाल फूल लगते हैं, और जिसके फलों या डोडों में केवल रुई होती है गूदा नहीं होता. यौवन और सौन्दर्य तत्त्वतः निस्सार है यह अभिप्राय है।

हाड़ जलै ज्यूँ लाकड़ी, केस जलै ज्यूँ घास।
सब तन जलता देखिकरि, भया कबीर उदास ॥७॥

कबीर मंदिर लाप का, जड़िया हीरैं लालि।
दिवस चारि का पेषणां, बिनस जाइगा कालिह ॥८॥

आजि कि कालिह कि पंचे दिन, जगल होइगा बास।
ऊपरि ऊपरि फिरहिंगे, ढोर चरंदे घास ॥९॥

कहा कियौ हम आइकरि, कहा कहैंगे जाइ।
इतके भए न उतके, चाले मूल गँवाइ ॥१०॥

कबीर हरि की भगति बिन, ध्रिग जीमण संसार।
धूवाँ केरा धौलहर, जात न लागै वार ॥११॥

इहि औसरि चेत्या नहीं, पसु ज्यूँ पाली देह।
रामनाम जाण्या नहीं, अति पड़ी मुख षेह ॥१२॥

मनिषा जनम दुलभ है, देह न बारबार।
तरवर थै फल झड़ि पड्या, बहुरि न लागै डार ॥१३॥

कबीर यहु तन जात है, सकै तौ ठाहर लाइ।
कै सेवा करि साध की, कै गोविंद गुण गाइ ॥१४॥

---

७ उदास = विरक्त।

११ जीमण = जीवन। धौलहर = ऊँचा मीनार। जात न लागै वार = मिटते देर नही लगती।

१२ षेह = धूल।

१४ ठाहर लाइ = अच्छे ठौर पर लगा दे।

कबीर यहु तन जात है, सकै तौ लेहु बहोड़ि ।
नागे हाथूँ ते गये, जिनकै लाप करोड़ि ॥१५॥

यहु तन काचा कुंभ है, लियां फिरै था साथि ।
ढबका लागा फूटि गया, कछू न आया हाथि ॥१६॥

खभा एक गइंद दोइ, क्यूँ करि बंधिसि बारि ।
मानि करै तौ पीव नहीं, पीव तौ मानि निवारि ॥१७॥

दुनियां के धोखै मुवा, चलै जु कुल की कांणि ।
तब कुल किसका लाजसी, जब ले धर्या मसांणि ॥१८॥

काया मंजन क्या करै, कपड़ा धोइम धोइ ।
ऊजल हुवा न छूटिए, सुख नींदड़ीं न सोइ ॥१९॥

ऊजल कपड़ा पहरिकरि, पान सुपारी खांहिं ।
एकै हरि का नाँव बिन, बाँधे जमपुरि जांहिं ॥२०॥

मैं मैं बड़ी बलाइ है, सकै तौ निकसौ भाजि ।
कबलग राखौ हे सखी, रुई-लपेटी आगि ॥२१॥

मैं मै मेरी जिनि करै, मेरी मूल बिनास ।
मेरी पग का पैषड़ा, मेरी गल की पास ॥२२॥

---

१५ लेहु बहोडि = लौटाले, सफल करले ।

१६ ढबका = धक्का, ठोकर ।

१७ मानि = मान, अहभाव ।

२२ मेरी मूल बिनास = ममता विनाश का मूल है । पैषड़ा = पैरों की बेडी । पास = फाँसी ।

कबीर नाव जरजरी, कूड़े खेवणहार ।
हलके-हलके तिरि गये, बूड़े जिनि सिर भार ॥२३॥

कबीर नॉव जरजरी, भरी बिराणै भारि ।
खेवट सौ परचा नही, क्योंकरि उतरै पारि ॥२४॥

झूॅठे सुख को सुख कहै, मानत हैं मन मोद ।
जगत चबेना काल का, कुछ मुख मे कुछ गोद ॥२५॥

पानी केरा बुद्‌बुदा, अस मानुष की जात ।
देखत ही छिप जायगा, ज्यों तारा परभात ॥२६॥

आछे दिन पाछे गये, गुरु से किया न हेत ।
अब पछतावा क्या करै, चिड़ियॉ चुग गई खेत ॥२७॥

पाव पलक की सुध नही, करै काल्ह का साज ।
काल अचानक मारसी, ज्यों तीतर को बाज ॥२८॥

माटी कहै कुम्हार को, तूॅ क्या रूॅदै मोहिं ।
इक दिन ऐसा होयगा, मै रूॅदूॅगी तोहिं ॥२९॥

मोर मोर की जेवरी, बटि बॉधा ससार ।
दास कबीरा क्यों बॅधै, जाके नाम अधार ॥३०॥

आये हैं सो जायॅगे, राजा रंक फकीर ।
इक सिंघासन चढ़ि चले, इक बॅधि जात जॅजीर ॥३१॥

---

२३ कूडे=अनाडी

२४ बिराणे=दूसरे, पराये। खेवट=केवट, खेनेवाला।

२८ साज=तैयारी।

२९ रूॅद=परो से कुचलता है।

३० जेवरी=रस्सी।

तन सराय मन पाहरू, मनसा उतरी आइ ।
कोउ काहू का है नहीं, देखा ठोंक वजाइ ॥३२॥

दीन गॅवायो सॅग दुनी, दुनी न चाली साथ ।
पॉव कुल्हाड़ी मारिया मूरख अपने हाथ ॥३३॥

मैं, भॅवरा तोहिं बरजिया, बन बन वास न लेइ ।
अटकैगा कहुँ वेल से, तड़पि-तड़पि जिय देइ ।।३४॥

इक दिन ऐसा होयगा, कोउ काहू का नाहिं ।
घर की नारी को कहै, तन की नारी जाहि ॥३५॥

चलती चक्की देखिके दिया कबीरा रोय ।
दुइ पट भीतर आइके साबित गया न कोय ॥३६॥

माली आवत देखिके कलियाँ करै पुकार ।
फूली फूली चुनि लई काल्हि हमारी वार ॥३७॥

दव की दाही लाकड़ी ठाढ़ी करै पुकार ।
अब जो जाउँ लोहारघर डाहै दूजी बार ॥३८॥

कबिरा रसरी पाँव मे कह सोवै सुख चैन ।
स्वाँस-नगाड़ा कूँच का बाजत है दिन-रैन ॥३९॥

दस द्वारे का पींजरा, ता मे पछी पौन ।
रहिबे को आचरज है, जाइ त अचरज कौन ।४०॥

---

३२ मनसा = कामना, इच्छा ।

३४ बरजिया = मना किया । वेल = काम सना से तात्पर्य है ।

३५ नारी = (१) स्त्री (२) नाडी ।

३८ दव = जगल की आग । डाहै = जलायेगा ।

४० पंछी पौन = प्राणरूपी पक्षी ।

मन कौ अंग

कबीर मारूँ मन कूँ, टूक-टूक ह्वै जाइ।
बिष की क्यारी बोइकरि लुणत कहा पछिताइ ॥१॥

मन जाणै सब बात, जाणत ही औगुण करै।
काहे की कुसलात, कर दीपक कूवैं पड़ै ॥२॥

हिरदा भीतरि आरसी, मुख देषणां न जाइ।
मुख तौ तौपरि देखिए, जे मन की दुबिधा जाइ ॥३॥

पाणी ही तै पातला, धूवां ही तै झीण।
पवनां बेगि उतावला, सो दोसत कबीरै कीन्ह ॥४॥

कबीर तुरी पलांणियां, चाबक लीया हाथि।
दिवस थकां सांई मिलौ, पीछै पड़िहै राति ॥५॥

मैमंता मन मारि रे, घटही माँहैं घेरि।
जबही चालै पीठि दे, अंकुस दे-दे फेरि ॥६॥

मैमंता मन मारि रे, नांन्हां करि-करि पीसि।
तब सुख पावै सुन्दरी, ब्रह्म झलक्कै सीसि ॥७॥

मन कौ अंग

१ लुणत=फसल काटते हुए।

३ आरसी=दर्पण।

४ झीण=महीन। दोसत=दोस्त।

५ तुरी पलाणिया=(मनरूपी) घोडे पर पलान कस लिया।

६ मैमता=मतवाला (हाथी)।

कबीर मन पंषी भया, बहुतक चढ़्या अकास ।
उहां ही तैं गिरि पड़्या, मन माया के पास ॥८॥

मनह मनोर्थ छाड़िदे, तेरा किया न होइ ।
पाणी मैं घीव नीकसै, तो रूखा खाइ न कोइ ॥६॥

मन-मुरीद संसार है, गुरु-मुरीद कोइ साध ।
जो मानै गुरु-बचन को ताको मता अगाध ॥१०॥

मन पाँचों के बसि पड़ा, मन के बस नहिं पाँच ।
जित देखूँ तित दौ लगी, जित भागूँ तित आँच ॥११॥

मन के मारे बन गए, बन तजि बस्ती माहिं ।
कहा कबीर क्या कीजिए, यह मन ठहरै नाहिं ॥१२॥

पहले यह मन काग था, करता जीवन-घात ।
अब तो मन हंसा भया, मोती चुगि चुगि खात ॥१३॥

मन के बहुतक रंग है, छिन-छिन बदलै सोय ।
एकै रंग मे जो रहै, ऐसा विरला कोय ॥१४॥

अपने-अपने चोर को सब कोइ डारै मार ।
मेरा चोर मुझे मिलै, सरबस डारूँ वार ॥१५॥

मन कुंजर महमत था, फिरता गहिर गंभीर ।
दोहरी तेहरी चौहरी परि गइ प्रेम-जँजीर ॥१६॥

---

१० मुरीद=शिष्य । मता=सिद्धान्त ।

११ पाँचों के=पाँचो ज्ञान-इन्द्रियों के । दौ=आग ।

१५ मेरा चोर=मेरा प्रियतम, जिसने मन को चुरा लिया है ।

१६ गहिर=गह्वर, वन । गंभीर=घना, विकट ।

कबिरा मनहिं गयंद है, आंकुस दै-दै राखु।
बिष की बेली परिहरी, अंमृत का फल चाखु ॥१७॥

मन के हारे हार है, मन के जीते जीत।
कह कबीर पिउ पाइए मनहीं की परतीत ॥१८॥

मन गयंद मानै नहीं, चलै सुरति कै साथ।
दीन महावत क्या करै अंकुस नाहीं हाथ ॥१६॥

सूषिम मारग कौ अंग

उतीथैं कोइ न आवई, जाकूँ बूझौं धाइ।
इतथैं सबै पठाइये, भार लदाइ-लदाइ ॥१॥

चलौ चलौ सबको कहै, मोहि अँदेसा और।
साहिब सूँ पर्चा नही, ए जाहिंगे किस ठौर ॥२॥

कबीर मारिग कठिन है, कोई न सकई जाइ।
गए ते बहुड़े नही, कुसल कहै को आइ ॥३॥

जहाँ न चींटी चढि सकै, राई ना ठहराइ।
मन पवन का गमि नहीं, तहाँ पहूँचे जाइ ॥४॥

सुर नर थाके मुनिजनां, जहाँ न कोई जाइ।
मोटे भाग कबीर के, तहाँ रहे घर छाइ ॥५॥

---

१६ सुरति=यहाँ विषयो की सुध अर्थात् आसक्ति से आशय है।

सूषिम मारग कौ अंग

३ बहुडे=लौटे।

५ मोटे=बडे। तहाँ ''छाइ=वहाँ, अर्थात् निर्विकल्प समाधि की सहज शून्य अवस्था में जाकर रम गये।

यार बुलावै भाव सौं, मोपै गया न जाय।
धन मैली पिउ ऊजला, लागि न सकौं पाय ॥६॥

नाँव न जानू गाँव का, बिन जाने कित जाँव।
चलता-चलता जुग भया, पाव कोस पर गाँव ॥७॥

बाट बिचारी क्या करै, पथी न चलै सुधार।
राह आपनी छाँड़िकै, चलै उजार-उजार ॥८॥

माया कौ अंग

कबीर माया पापणी, फंध ले बैठी हाटि।
सब जग तौ फंधै पड्या, गया कबीरा काटि ॥१॥

जाणौं जे हरि कूं भजौं, मो मनि मोटी आस।
हरि बिचि घालै अंतरा, माया बड़ी बिसास ॥२॥

कबीर माया मोहनी, सब जग घाल्या घांणि।
कोई एक जन ऊबरै, जिनि तोड़ी कुल की कांणि ॥३॥

माया मुई न मन मुवा, मरि-मरि गया सरीर।
आसा त्रिसणां नां मुई, यौं कहि गया कबीर ॥४॥

---

६ भाव=प्रेम। धन=स्त्री।

८ उजार=उजाड, ऊबड-खाबड, वीरान।

माया कौ अंग

१ फंध=फंदा, फाँसी।

२ घालै अंतरा=भेद डाल देती है। बिसास=विश्वासघातिनी।

३ घाल्या घाणि=घानी (कोल्हू) में डाल दिया।

आसा जीवै जग मरै, लोग मरे मरि जाइ।
सोइ मूवे धन संचते, सो उबरे जे खाइ ॥५॥

कबीर सो धन संचिये, जो आगैं कूँ होइ।
सीस चढांये पोटली, ले जात न देख्या कोइ ॥६॥

माया तरवर त्रिबिध का, साखा दुख सताप।
सीतलता सुपिनै नहीं, फल फीकौ तनि ताप ॥७॥

कबीर माया डाकणीं, सब किस ही कूँ खाइ।
दांत उपाडौ पापणीं, जे संतौ नेड़ी जाइ ॥८॥

माया की झल जग जल्या, कनक कांमिणीं लागि।
कहु धौं किहि विधि राखिये, रुई-लपेटी आगि ॥९॥

माया छाया एक सी, विरला जानै कोय।
भगताँ के पीछै फिरै, सनमुख भागै सोय ॥१०॥

माया तो है राम की, मोदी सब ससार।
जाकी चिट्ठी ऊतरी, सोई खरचनहार ॥११॥

आँधी आई ग्यान की, ढही भरम की भीति।
माया टाटी उड़ि गई, लागी नाम से प्रीति ॥१२॥

जिनको साँई रँग दिया, कभी न होइ कुरंग।
दिन-दिन बानी आगरी, चढ़ै सवाया रंग ॥१३॥

---

५ सचते=जमा करते हैं। उबरे=बचगये।
७ त्रिविध का=सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों का।
८ डाकणी=डाइन, चुड़ैल। उपाड़ौ=उखाड़ लूँगा। नेडी=पास।
९ झल=ज्वाला।
१३ बानी=आभा, दमक। आगरी=बढकर, अधिक-अधिक।

माया-दीपक नर-पतँग, भ्रमि-भ्रमि मांहि परंत।
कोइ एक गुरु-ग्यान ते उबरे साधू-संत ॥१४॥

चांणक कौ अंग

इही उदर के कारणै, जग जॉच्यौ बसु जाम।
स्वांमींपणौ जु सिरि चढ्यो, सर्‌या न एको काम ॥१॥

स्वांमीं हूंणां सोहरा, दोद्धा हूंणां दास।
गाडर आंणीं ऊन कूँ, बाँधी चरै कपास ॥२॥

कबीर कलि खोटी भई, मुनियर मिलै न कोइ ;
लालच लोभी मसकरा, तिनकूँ आदर होइ ॥३॥

चारिउं बेद पढ़ाइकरि, हरि सूँ न लाया हेत।
बालि कबीरा ले गया, पंडित ढूँढै खेत ॥४।

बांह्मण गुरू जगत का, साधू का गुरु नाहिं।
उरझि-पुरझिकरि मरि रह्या, चारिउं बेदां मांहिं ॥५॥

चतुराई सूवै पढी, सोई पंजर मांहिं।
फेरि प्रमोधै आंन कूँ, आपण समझै नांहिं ॥६॥

---

१४ परंत=पड़ते हैं, गिरते हैं। गुरु ग्यान से=गुरु के शब्द-उपदेश से।

चांणक कौ अंग

१ बसु जाम=आठों पहर। सर्‌या=पूरा हुआ।

२ हूणा=होना, बनना। सोहरा=सरल। दोद्धा=दुर्लभ, कठिन। गाडर=भेड ; अर्थात् आशा यह की थी कि स्वामीजी ज्ञानोपदेश देंगे, पर वे उलटे दूसरों को लूट रहे और मौज कर रहे हैं।

३ मुनियर=मुनिवर, श्रेष्ठ ज्ञानी। मसकरा=मसखरा।

६ प्रमोधै=प्रबोध अर्थात् ज्ञानोपदेश करता है।

तारां-मंडल बैसिकरि, चंद बड़ाई खाइ।
उदै भया जब सूर का, स्यूँ तारां छिपि जाइ ॥७॥

कासी कांठै घर करै, पीवै निरमल नीर।
मुकति नही हरि-नांव बिन, यूँ कहै दास कबीर ॥८॥

कथणीं बिना करणीं कौ अंग

कबीर पढ़िबा दूरि करि, पुसतक देइ बहाइ।
बांवन आषिर सोधिकरि, ररै ममै चित लाइ ॥१॥

कबीर पढ़िबा दूरि करि, आथि पढ्या संसार।
पीड़ न उपजी प्रीति सूँ, तौ क्यूँ करि करै पुकार ॥२॥

कथनी मीठो खाँड सी, करनी बिष की लोइ।
कथनी तजि करनी करै, बिष से अमृत होइ ॥३॥

पानी मिलै न आपको, औरन बकसत छीर।
आपन मन निसचल नहीं, और बँधावत धीर ॥४॥

पद जोरै साखी कहै, साधन परि गई रौस।
काढ़ा जल पीवै नहीं, काढ़ि पियन की हौस ॥५॥

---

७ स्यूँ=समेत।

८ काठै=किनारे, पास।

कथणीं बिना करणी कौ अंग

१ आपिर=अक्षर। ररै ममै=रकार और मकार ये दो अक्षर, अर्थात् राम।

२ आथि=(अस्ति) है, होना।

३ लोइ=गोली।

५ जोरै=रचता है। रौस=चाल ढाल, रग ढग।

कहता तो बहुता मिला, गहता मिला न कोइ।
सो कहता बहि जानदे जो नहिं गहता होइ ॥६॥

एक एक निरवारिया जो निरवारी जाइ।
दुइ-दुइ मुख का बोलना, घने तमाचा खाय ॥७॥

कामीं नर कौ अंग

परनारी-राता फिरै, चोरी बिढ़ता खांहिं।
दिवस चारि सरसा रहैं, अंति समूला जांहिं ॥१॥

नर नारी सब नरक है, जबलग देह सकाम।
कहै कबीर ते रांम के, जे सुमिरै निहकाम ॥२॥

एक कनक अरु कांमनी, बिष फल कै ये उपाइ।
देखै ही थै बिष चढ़ै, खांये सूँ मरि जाइ ॥३॥

एक कनक अरु कामनी, दोऊ अगनि की झाल।
देखें हीं तन प्रजलै, परस्यां ह्वै पैमाल ॥४॥

भगति बिगाड़ी कांमियां, इन्द्री केरै स्वादि।
हीरा खोया हाथ थैं, जनम गॅवाया बादि ॥५॥

---

६ गहता=सच्चे अर्थ को ग्रहणकर उसके अनुसार आचरण करनेवाला।

कामी नर कौ अंग

१ राता=अनुरक्त। चोरीविढ़ता=चोरी से कमाते हुए। सरसा=प्रसन्न।

२ सकाम=काम-वासना से युक्त।

३ झाल=ज्वाला। पैमाल=नष्ट।

५ वादि=व्यर्थ।

कांमी लज्या नां करै, मन मांहै अहिलाद।
नींद न मांगै सांथरा, भूष न मांगै स्वाद ॥६॥

कबीर कहता जात हौं, चेतै नहीं गँवार।
बैरागी गिरही कहा, कांमीं वार न पार ॥७॥

ग्यांनी मूल गँवाइया, आपण भये करता।
ताथैं संसारी भला, मन मैं रहै डरता ॥८॥

चलौ चलौ सब कोइ कहै, पहुँचै बिरला कोइ।
एक कनक औ कामिनी, दुरगम घाटी दोइ ॥९॥

परनारी पैनी छुरी, मति कोइ लाओ अंग।
रावन के दस सिर गए परनारी के संग ॥१०॥

साँच कौ अंग

लेखा देणां सोहरा, जे दिल सांचो होइ।
उस चंगे दीवांन मैं, पला न पकड़ै कोइ ॥१॥

काजी मुंलां भ्रंमया, चल्या दुनी कै साथि।
दिलथै दीन बिसारिया, करद लई जब हाथि ॥२॥

---

६ अहिलाद=आह्लाद, आनन्द। सांथरा=बिस्तर।

७ वार न पार=न इस लोक मे ठिकाना, न परलोक मे।

८ आपण भये करता=अहंकारवश अपने आपको सबका कर्त्ता मान बैठे। ताथैं=उससे।

साँच कौ अंग

१ सोहरा=सहल। दीवान=दरबार, कचहरी।

२ दीन=धर्म। करद=बड़ी छुरी।

जोरी करि जिबहै करै, कहते हैं ज हलाल ।
जब दफतर देखैगा दई, तब ह्वैगा कौण हवाल ॥३॥

साँई सेती चोरिया, चोरां सेती गुझ ।
जांणैंगा रे जीवड़ा, मार पड़ैगी तुझ ॥४॥

खूब खांड है खीचड़ी, मांहिं पड़ै टुक लूँण ।
पेड़ा रोटी खाइकरि, गला कटावै कूँण ॥५॥

झूठे कूँ झूठा मिलै, दूणां बधै सनेह ।
झूठे कूँ सांचा मिलै, तब ही तूटै नेह ॥६॥

सांच बराबर तप नही, झूठ बराबर पाप ।
जाके हिरदे सांच है, ता हिरदे गुरु आप ॥७॥

प्रेम-प्रीति का चोलना, पहिरि कबीरा नाच ।
तन मन तापर वार हूँ, जो कोई बोलै सांच ॥८॥

सांच कहूँ तो मारिहैं, झूठे जग पतियाइ ।
ये जग काली कूकरी, जो छेड़ै तो खाइ ॥९॥

---

३ जोरी=जुल्म । जिबहै=प्राणियां का वध । हलाल=मुस्लिम धर्मशास्त्रोक्त पशु-वध । दफतर=कर्मों की मिसल ।

४ गुझ=गुह्य, गुप्त भेद या सलाह ।

५ खूब=बड़ी बढ़िया, स्वादिष्ट । टुक लूँण=जरा-सा नमक । कूँण=कौन ।

६ बधै=बढे । तूटै=टूट जाये ।

८ चोलना=लंबा ढीला-ढाला कुरता, जिसे फकीर पहनते हैं ।

भ्रम बिधौंसण कौ अंग

जेती देषौ आत्मा, तेता सालिगरांम ।
साधू प्रतषि देव है, नही पाथर सूँ काम ॥१॥

सेवै सालिगरांम कूँ, मन की भ्रांति न जाइ ।
सीतलता सुपिनै नहीं, दिन दिन अधिकी लाइ ॥२॥

मन मथुरा दिल द्वारिका, काया कासी जाणि ।
दसवां द्वारा देहुरा, तामै जोति पिछाणि ॥३॥

कबीर दुनियां देहुरै, सीस नवांवण जाइ ।
हिरदा भीतरि हरि बसै, तूँ ताही सूँ ल्यौ लाइ ॥४॥

पाथर ही का देहुरा, पाथर ही का देव ।
पूजणहारा अधला, लागा खोटी सेव ॥५॥

भेष कौ अंग

कबीर माला मन की, और सँसारी भेष ।
माला पहर्‌याँ हरि मिलै, तौ अरहट कै गलि देष ॥१॥

भ्रमबिधौंसण कौ अंग

१ प्रतषि=प्रत्यक्ष, सजीव ।

२ लाइ=आग ।

३ दसवा द्वारा=ब्रह्म-रन्ध्र से आशय है । देहुरा=देवालय ।

५ खोटी सेव=झूठी सेवा-पूजा ।

भेप कौ अंग

१ अरहट=रहँट । गलि=गले मे ।

सांई[१] सेती सांच चलि, औरां सूँ सुध भाइ।
भावै लंबे केस करि, भावै घुरड़ि मुड़ाइ॥२॥

तन कौं जोगी सब करै, मन कौं बिरला कोइ।
सब सिधि सहजै पाइए, जे मन जोगी होइ॥३॥

पष ले बूड़ी पृथमीं, झूठी कुल की लार।
अलप बिसार्‌या भेष मै, बूड़े काली धार॥४॥

चतुराई हरि नां मिलै, ए बातां की बात।
एक निसप्रेही निरधार का गाहक गोपीनाथ॥५॥

जबलग पीव परचा नहीं, कन्या कँवारी जांणि।
हथलेवा हौंसै लिया, मुसकल पड़ी पिछांणि॥६॥

मन माला तन मेखला, भय की करै भभूत।
अलख मिला सब देखता, सो जोगी अवधूत॥७॥

हम तो जोगी मनहिं के, तन के हैं ते और।
मन का जोग लगावते दसा भई कछु और॥८॥

---

२ औरा सूँ=दूसरों के साथ। सुधि भाइ=शुद्ध या सरल भाव। घुरडि-मुडाइ=घुटाकर मुँडादे।

४ पष=पक्ष, संप्रदायवाद। बूडी पृथमी=दुनिया डूब गई। लार=साथ, संबंध।

५ बाता की बात=सौ बात की एक बात। निसप्रेही=निस्पृह, जिसे कोई इच्छा नहीं, कोई स्वार्थ नहीं।

६ हथलेवा=विवाह मे वर द्वारा कन्या का हाथ अपने हाथ मे लेने की रीति, पाणिग्रहण। हौंसै=साहसपूर्ण इच्छा या हौंसले से।

७ मेखला=कमर मे लपेटने की मूँज की डोरी, कफनी या अलफी भी अर्थ होता है। अवधूत=योगी।

संगति कौ अंग

देखादेखी भगति है, कदे न चढ़ई रंग।
बिपति पड्यां यूँ छाड़सी, ज्यूँ कंचुली भवंग ।।१।।

कबीर तन पषी भया, जहाँ मन तहाँ उड़ि जाइ।
जो जैसी संगति करै, सो तैसे फल खाइ ।।२।।

काजल केरी कोठड़ी, तैसा यहु संसार।
बलिहारी ता दास की, पैसि ज निकसणहार ।।३।।

कबिरा संगत साध की हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाध की, आठों पहर उपाधि ।।४।।

कबिरा संगत साधु की, जौ की भूसी खाइ।
खीर खाँड भोजन मिलै, साकट संग न जाइ ।।५।।

कबिरा खाई कोट की, पानी पिवै न कोइ।
जाइ मिलै जब गंग से, सब गंगोदक होइ ।।६।।

तोहिं पीर जो प्रेम की, पाका सेती खेल।
काँची सरसों पेरिकै खली भया ना तेल ।।७।।

दाग जो लागा नील का, सौ मन साबुन धोइ।
कोटि जतन परबोधिए, कागा हंस न होइ ।।८।।

केरा तबहि न चेतिया, जब ढिग लागी बेर।
अब के चेते क्या भया, काँटन लीन्हों घेरि ।।९।।

संगति कौ अंग

३ पैसि ज निकसणहार = जो पैठकर बिना कालिख लगाये बाहर निकल आये।
५ साकट=शाक्त, वाममार्गी जो मद्य-मास आदि का सेवन करते थे, हरिविमुख।
७ पाका सेती खेल = पक्के साधु की संगति कर । पेरिकै = पेलकर।

साध कौ अंग

मथुरा जावै द्वारिका, भावै जावै जगनाथ।
साध सगति हरिभगति बिन, कछू न आवै हाथ ॥१॥

मेरे सगी दोइ जणां, एक बैष्णों एक रांम।
यो है दाता मुकति का, वो सुमिरावै नांम ॥२॥

कबीर सोई दिन भला, जा दिन सत मिलाहिं।
अक भरे भरि भेंटिया, पाप सरीरौं जांहिं ॥३॥

जांनि बूझि सॉचहि तजै, करै झूॅठ सूँ नेहु।
ताकी संगति रांमजी, सुपिनैं ही जिनि देहु ॥४॥

काजल केरी कोठड़ी, काजल ही का कोट।
बलिहारी ता दास की, जे रहै रांम की ओट ॥५॥

सिहों के लेंहड़े नही, हसों की नहिं पॉत।
लालों की नहिं बोरियां, साध न चलै जमात ॥६॥

साध कहावन कठिन है, लंबा पेड खजूर।
चढ़ै तो चाखै प्रेमरस, गिरै तो चकनाचूर ॥७॥

गाँठी दाम न बॉधई, नहिं नारी सों नेह।
कह कबीर ता साध की हम चरनन की खेह ॥८॥

साध कौ अंग

१ भावै=चाहे।
५ ओट=शरण मे।
६ लैहडे=झुंड।
८ खेह=धूल।

वृच्छ कबहुँ नहिं फल भखै, नदी न सचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर ॥९॥

जाति न पूछो साध की, पूछ लीजिए ग्यान।
मोल करो तरवार का, पड़ा रहन दो म्यान ॥१०॥

हरि सेती हरिजन बड़े, समझि देखु मन माहिं।
कह कबीर जग हरि बिषे, सो हरि हरिजन माहिं ॥११॥

हद चलै सो मानवा, बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै, ता का मता अगाध ॥१२॥

साध साषीभूत कौ अंग

संत न छाड़ै संतई, जे कोटिक मिलै असंत।
चंदन भुवंगा बैठिया, तउ सीतलता न तजंत ॥१॥

कबीर हरि का भावता, दूरै थैं दीसंत।
तन षीणां मन उनमनां, जग रूठड़ा फिरंत ॥२॥

कबीर हरि का भावता, झीणां पजर तास।
रैणि न आवै नींदड़ी, अंगि न चढ़ई मांस ॥३॥

रांम-बियोगी तन बिकल, ताहि न चीन्है कोइ।
तबोली के पांन ज्यूँ, दिन दिन पीला होइ ॥४॥

---

९ सचै=जमा करके रखती है।

११ बिषे=बीच मे।

साध साषीभूत कौ अंग

२ दीसंत=दीख जाता है। भावता=प्यारा भक्त। षीणा=क्षीण, कृश। उनमना=उदासीन। रूठड़ा=विरक्त।

३ पंजर=देह।

जदि बिषै पियारी प्रीति सूँ तब अन्तरि हरि नांहिं।
जब अंतर हरिजी बसै, तब बिषिया सूँ चित नाहिं ॥५॥

जिहि हिरदै हरि आइया, सो क्यू छांनां होइ।
जतन-जतन करि दाबिये, तऊ उजाला सोइ ॥६॥

सब घटि मेरा सांइयां, सूनी सेज न कोइ।
भाग तिन्हों का हे सखी, जिहि घटि परगट होइ ॥७॥

पावकरूपी रांम है, घटि-घटि रह्या समाइ।
चित चकमक लागै नहीं, ताथै धूँवां ह्वै ह्वै जाइ ॥८॥

साधमहिमा कौ अंग

जिहिं घर साध न पूजिये, हरि की सेवा नांहिं।
ते घर मड़हट सारषे, भूत बसै तिन मांहिं ॥१॥

है गै गैंवर सघन धन, छत्र धजा फरराइ।
ता सुख थै भिष्या भली, हरि-सुमिरत दिन जाइ ॥२॥

है गै गैवर सघन धन, छत्रपती की नारि।
तास पटंतर ना तुलै, हरिजन की पनिहारि ॥३॥

---

६ छाना=छिपा, गुप्त।

८ चकमक=एक प्रकार का कड़ा पत्थर, जिसपर चोट पड़ने से फौरन आग निकलती है।

साधमहिमा कौ अंग

१ मड़हट=मरघट। सारषे=समान।

२ है=हय, घोड़ा। गै=गज। गैबर=गजराज। सघन=अत्यधिक, अखूट। फरराइ=फहराये। भिष्या=भिक्षा।

३ पटतर=तुलना, उपमा। पनिहारि=पानी भरनेवाली नौकरानी।

कबीर कुल तौ सो भला, जिहि कुल उपजै दास ।
जिहिं कुल दास न ऊपजै, सो कुल आक-पलास ॥४॥

साषत बांभण मति मिलै, बैसनौं मिलै चँडाल ।
अंकमाल दे भेंटिये, मांनौ मिले गोपाल ॥५॥

बिचार कौ अंग

आगि कह्यां दाझै नही, जे नहीं चपै पाइ ।
जबलग भेद न जांणिये, रांम कह्या तौ कांइ ॥१॥

कबीर सोचि बिचारिया, दूजा कोई नांहि ।
आपा पर जब चीन्हियां, तब उलटि समाना मांहि ॥२॥

कबीर पांणी केरा पूतला, राख्या पवन सँवारि ।
नांनां बांणी बोलिया, जोति धरी करतारि ॥३॥

एक सब्द मे सब कहा, सब ही अर्थ विचार ।
भजिए निर्गुन नाम को, तजिए बिषै-विकार ॥४॥

---

४ दास=भगवान् का सेवक, भगवद्भक्त । आक-पलास=आक का पेड ।

५ साषत=शाक्त, वाममार्गी । अंकमाल=आलिंगन, गले लगाना ।

विचार कौ अंग

१ आगि ˙ पाइ=आग कहदेने मात्र से वह जलाती नहीं है, जबतक कि पैर से दब नही जाती । काइ=क्या होता है ।

२ तब उलटि समाना माहि=विषयो की ओर से मुडकर अंतर्मुखी तथा ब्रह्म-लीन हो जाता है ।

३ पवन=प्राण । जोति=आत्मा से आशय है ।

सहज तराजू आनिकरि सब रस देखा तोल ।
सब रस माहीं जीभ-रस, जो कोइ जानै बोल ॥५॥

मन दीया कहिं और ही, तन साधन के संग ।
कह कबीर कोरी गजी, कैसे लागै रंग ॥६॥

उपदेस कौ अंग

बैरागी बिरकत भला, गिरही चित्त उदार ।
दुहूँ चूकां रीता पड़ै, ताकूं वार न पार ॥१॥

कबीर हरि के नांव सूं, प्रीति रहै इकतारि ।
तौ मुख तै मोती झड़ै, हीरे अंत न पार ॥२॥

ऐसी बांणी बोलिये, मन का आपा खोइ ।
अपना तन सीतल करै, औरन कूँ सुख होइ ॥३॥

जो तोको कांटा बुवै, ताहि बोव तू फूल ।
तोहिं फूल को फूल है, वाको है तिरसूल ॥४॥

दुरबल को न सताइए, जाकी मोटी हाय ।
बिना जीव की स्वाँस से लोह भसम ह्वै जाय ॥५॥

या दुनिया में आइके छांडि देइ तू ऐंठ ।
लेना होइ सो लेइ ले, उठी जात है पैठ ॥६॥

---

५ जीभ-रस = सच्ची मीठी वाणी, प्रभु-नाम का उच्चारण ।

६ गजी = खादी ।

उपदेस कौ अंग

१ बिरकत = विरक्त । गिरही = गृहस्थ । दुहूँ चूका रीता पड़ै = यदि वैरागी में वैराग्य न हो और गृहस्थ में उदारता न हो, तो दोनों ही व्यर्थ हैं ।

६ ऐंठ = अभिमान । पैठ = हाट ।

जग में बैरी कोइ नहीं, जो मन सीतल होय ।
या आपा को डारिदे, दया करै सब कोय ॥७॥

आवत गारी एक है, उलटत होय अनेक ।
कह कबीर नहिं उलटिए, वही एक ही एक ॥८॥

मागन मरन समान है मति कोइ मांगो भीख ।
मांगन ते मरना भला, यह सतगुरु की सीख ॥९॥

उदर समाता अन्न लै तनहिं समाता चीर ।
अधिकहि संग्रह ना करै, ताका नाम फकीर ॥१०॥

बोलत ही पहिचानिये साहु चोर को घाट ।
अंतर की करनी सबै निकसै मुख की बाट ॥११॥

पढ़ि-पढ़िके पत्थर भये, लिखि-लिखि भये जो ईंट ।
कबिरा अंतर प्रेम की लागी नेक न छींट ॥१२॥

न्हाए धोए क्या भया, जो मन मैल न जाय ।
मीन सदा जल में रहै धोए बास न जाय ॥१३॥

ऊँचे गाँव पहाड़ पर, औ मोटे की बांह ।
ऐसो ठाकुर सेइए, उबरिय जाकी छांह ॥१४॥

वोहू तो वैसहि भया, तू मति होय अयान ।
तू गुणवंत वे निरगुणी, मनि एकै मे सान ॥१५॥

---

१० चीर = कपड़ा । समाता = आवश्यकताभर ।

११ घाट = रगत, चालढाल ।

१५ मति एकै मे सान = सब को एक में ही न मिला, सभी धान बाईस पसेरी न समझ ।

बेसास कौ अंग

भूखा-भूखा क्या करै, कहा सुनावै लोग ।
भांडा घड़ि जिनि मुख दिया, सोई पूरण जोग ॥१॥

च्यंतामणि मन मैं बसै, सोई चित मैं आंणि ।
बिन च्यंता च्यता करै, इहै प्रभू की बांणि ॥२॥

जाकौ जेता निरमया, ताकौ तेता होइ ।
रती घटै न तिल वधै, जो सिर कूटै कोइ ॥३॥

संत न बांधै गांठड़ी, पेट समाता लेइ ।
सांई सूँ सनमुष रहै, जहाँ माँगै तहाँ देइ ॥४॥

मीठा खांण मधूकरी, भांति-भांति कौ नाज ।
दावा किसही का नही, बिन बिलाइति बड़ राज ॥५॥

मांगण मरण समान है, बिरला बंचै कोइ ।
कहै कबीर रघुनाथ सूँ मति रे मँगावै मोहि ॥६॥

बेसास कौ अंग

१ भाडा=वर्तन, शरीर से अभिप्राय है । तेता पूरण जोग=वही उसे भरने मे समर्थ ।

२ बाणि=स्वभाव ।

३ निरमया=बनाया । तेता होइ=उतना मिलता है । रंती=रती । बधै=बढे ।

५ मधुकरी=अनेक घरो से मिली हुई भिक्षा ।

पद गांये लैलीन ह्वै, कटी न संसै पास ।
सबै पिछोड़े थोथरे, एक बिनां बेसास ॥७॥

गाया तिनि पाया नही, अणगांयां थै दूरि ।
जिनि गाया बिसवास सूँ, तिन रांम रह्या भरपूरि ॥८॥

कबिरा क्या मै चिंतहूँ, मम चिंते क्या होय ।
मेरी चिंता हरि करै, चिंता मोहिं न कोय ॥९॥

पौ फाटी पगरा भया, जागे जीवा जून ।
सब काहू को देत है चोंच-समाता चून ॥१०॥

साँई इतना दीजिये, जामे कुटुँब समाय ।
मैं भी भूखा ना रहूँ, साधु न भूखा जाय ॥११॥

बिर्कताई कौ अंग

मेरै मन मैं पड गई, ऐसी एक दरार ।
फाटा फटक पषाण ज्यूँ, मिल्या न दूजी बार ॥१॥

नीर पिलावत क्या फिरै, सायर घर-घर बारि ।
जो त्रिषावंत होइगा, सो पीवैगा झषमारि ॥२॥

---

७ संसै-पास = संदेह, अर्थात् दुविधा का फंदा । पिछोड़े थोथरे = फोकट भुस को ही अंततक फटकता रहा, जितने साधन किये सब बेकार गये ।
१० पगरा = सबेरा, तड़का । जून = (प्रभात) समय ।

बिर्कताई कौ अंग

१ फटक = स्फटिक, बिल्लौर, साधारण काँच भी अर्थ होता है ।
२ सायर = सागर, जलाशय ।

सतगठी कोपीन है, साध न मानै संक।
रांम अमलि माता रहै, गिणैं इंद्र कौं रंक ।।३।।

दावै दाभण होत है, निरदावै निसंक।
जे नर निरदावै रहैं, ते गिणै इंद्र कौं रंक ।।४।।

समंथाई कौ अंग

सात समंद की मसि करौं, लेखनि सब बनराइ।
धरती सब कागद करौं, तऊ हरिगुण लिख्या न जाइ ।।१।।

सांई मेरा बांणियां, सहजि करै व्यौपार।
बिन डांडी बिन पालड़ै, तोलै सब संसार ।।२।।

कबीर करणीं क्या करै, जे रांम न करै सहाइ।
जिहिं-जिहिं डाली पग धरै, सोई नवि-नवि जाइ ।।३।।

सांई सूँ सब होत है, बंदे थै कुछ नांहिं।
राई थै परबत करै, परबत राई मांहिं ।।४।।

साहेब-सा समरथ नही, गरुआ गहिर गँभीर।
औगुन छोडै गुन गहै, छिनक उतारै तीर ।।५।।

---

३ सतगठी कोपीन=सौ गाँठवाली लंगोटी। अमलि=नशा।

४ दावै=स्वत्व या अधिकार से, 'दाव' यह द्रव्य का भी अपभ्रंश हो सकता है।

समंथाई कौ अंग

१ बनराइ=वृक्ष-समूह।

३ नवि-नवि जाइ=झुक-झुक जाती है।

जो कुछ किया सो तुम किया, मैं कछु कीया नाहिं।
कहा-कही जो मैं किया, तुम ही थे मुझ माहिं ॥६॥

जाको राखै साँइयाँ मारि न सक्कै कोय।
बाल न बांका करि सकै, जो जग बैरी होय ॥७॥

साँई तुझसे बाहिरा कौड़ी नाहिं बिकाय।
जाके सिर पर धनी तू, लाखों मोल कराय ॥८॥

सबद कौ अंग

कबीर सबद सरीर मैं, बिनि गुण बाजै तति।
बाहरि भीतरि भरि रह्या, ताथैं छूटि भरति ॥१॥

सतगुर ऐसा चाहिए, जैसा सिकलीगर होइ।
सबद मसकला फेरिकरि, देह द्रपन करै सोइ ॥२॥

ज्यूँ-ज्यूँ हरिगुण साँभलौं, त्यूँ-त्यूँ लागै तीर।
लागै थै भागा नहीं, साहणहार कबीर ॥३॥

सब्द-सब्द बहु अंतरा, सार सब्द चित देय।
जा सब्दै साहेब मिलै, सोइ सब्द गहि लेय ॥४॥

---

८ बाहिरा = बिना, रहित।

सबद कौ अंग

१ गुण = तार से तात्पर्य है। तति = तन्त्री, वीणा। भरति = भ्राति।
२ सिकलीगर = छूरी, कैंची आदि की धार को पैनी करनेवाला। मसकला = हँसिया के आकार का एक औजार इससे रगड़ने से धातुओं पर चमक आ जाती है। द्रपन = दर्पण, अत्यंत स्वच्छ।
३ साँभलौं = स्मरण व ध्यान करता हूँ। साहणहार = सहनेवाला।

सब्द बराबर धन नहीं जो कोइ जानै बोल।
हीरा तो दामों मिलै, सब्दहिं मोल न तोल ॥५॥

सीतल सब्द उचारिए, अहम् आनिए नाहिं।
तेरा प्रीतम तुज्झ में, सत्रू भी तुझ माहिं ॥६॥

जीवनमृतक कौ अंग

घर जालौं घर ऊबरै, घर राखौं घर जाइ।
एक अचंभा देखिया, मड़ा काल कौं खाइ ॥१॥

बैद मुवा रोगी मुवा, मुवा सकल संसार।
एक कबीरा ना मुवा, जिनिके राम अधार ॥२॥

जीवन थैं मरिबो भलौ, जौ मरि जानै कोइ।
मरनैं पहली जे मरे, तौ कलि अजरावर होइ ॥३॥

आपा मेट्यां हरि मिलै, हरि मेट्यां सब जाइ।
अकथ कहांणीं प्रेम की, कह्यां न को पत्याइ ॥४॥

कबीर चेरा संत का, दासनि का परदास।
कबीर ऐसै ह्वै रह्या, ज्यूँ पाऊँ तलि घास ॥५॥

जीवनमृतक कौ अंग

१ घर जालौं घर ऊबरै = यदि देहभिमान को नष्ट करदूँ, तो आत्मभाव सुरक्षित रहता है। अथवा, विषय-रस जला दे तो ब्रह्म-रस सुलभ हो जाता है। मडा = मरा हुआ, जिसने अपने अहंभाव को मार दिया है। काल कौं खाइ = अमर हो जाता है।

३ मरनैं ··होइ = मरने से पहले ही जो देह को नाशवान या मृत समझले, वह अजर और अमर हो जाये। कलि = कल, तुरन्त।

५ परदास = दास का भी दास।

मै मरजीव समुन्द्र का, डुबकी मारी एक।
मूठी लाया ग्यान की, जामे वस्तु अनेक ॥६॥

हरि हीरा क्यों पाइहै, जिन जीवे की आस।
गुरु दरिया सो काढ़सी कोइ मरजीवा दास ॥७॥

रोड़ा भया तो क्या भया, पंथी को दुख देय।
साधू ऐसा चाहिए, ज्यों पैंड़े की खेह ॥८॥

खेह भई तो क्या भया, उड़ि-उड़ि लागै अंग।
साधू ऐसा चाहिए, जैसे नीर निपंग ॥९॥

नीर भया तो क्या भया, ताता सीरा जोय।
साधू ऐसा चाहिए, जो हरि जैसा होय ॥१०॥

हरि भया तो क्या भया, करता हरता होय।
साधू ऐसा चाहिए, हरि भज निरमल होय ॥११॥

निरमल भया तो क्या भया, निरमल माँगै ठौर।
मल निरमल से रहित है, ते साधू कोइ और ॥१२॥

गुरसिप हेरा कौ अंग

ऐसा कोई नां मिलै, हम कौ लेइ पिछानि।
अपना करि किरपा करै, ले उतारै मैदानि ॥१॥

---

६ मरजीवा = जो कार्य-सिद्धि के लिए प्राण देने पर उतारू हो जाये।
८ पैंडे की खेह = रास्ते की धूल।
९ निपग = बिना पक का, स्वच्छ।
१० ताता-सीरा = गरम और ठडा।

ऐसा कोई नां मिलै, रांम भगति का मीत ।
तन मन सौंपै मृग ज्यूं, सुनै वधिक का गीत ॥२॥

ऐसा कोई नां मिलै, जासौं रहिये लागि ।
सब जग जलतां देखिये, अपणीं-अपणीं आगि ॥३॥

हम देखत जग जात है, जग देखत हम जांहिं ।
ऐसा कोई नां मिलै, पकड़ि छुड़ावै बांहिं ॥४॥

सारा सूरा बहु मिलै, घाइल मिलै न कोइ ।
प्रेमीं कौ प्रेमी मिलै, तब सब बिष अमृत होइ ॥५॥

हम घर जाल्या आपणां, लिया मुराड़ा हाथि ।
अब घर जालौं तास का, जे चलै हमारे साथि ॥६॥

सूरातन कौ अंग

गगन दमांमां वाजिया, पड्या निसांनै घाव ।
खेत बुहार्या सूरिवै, मुझ मरणे का चाव ॥१॥

सूरा तबही परषिये, लड़ै धणीं कै हेत ।
पुरिजा-पुरिजा ह्वै पड़ै, तऊ न छाड़ै खेत ॥२॥

गुरसिष हेरा कौ अंग

२ वधिक=बहेलिया ।

५ सारा सूरा=आहत न होनेवाले शूरवीर ।

६ मुराडा = जलती हुई लकडी

सूरातन कौ अंग

१ दमामा=नगाडा । पड्या निसानैं घाव=डके पर चोट पडी । सूरिवैं=शूरवीरों ने ।

२ पुरिजा-पुरिजा=टुकडा-टुकडा ।

अब तौ झूझयां हीं बणै, मुड़ि चाल्यां घर दूरि ।
सिर साहिब कौं सौंपतां, सोच न कीजै सूर ॥३॥

जिस मरनै थैं जग डरै, सो मेरे आनंद ।
कब मरिहूं कब देखिहूं, पूरन परमानंद ॥४॥

कायर बहुत पमांवही, बहकि न बोलै सूर ।
कांम पड्यां हीं जांणिये, किसके मुख परि नूर ॥५॥

दूरि भया तौ का भया, सिर दे नेडा होइ ।
जबलग सिर सौंपै नहीं, कारिज सिधि न होइ ॥६॥

कबीर यहु घर प्रेम का, खाला का घर नांहिं ।
सीस उतारै हाथि करि, सो पैसै घर मांहिं ॥७॥

प्रेम न खेतौं नीपजै प्रेम न हाटि बिकाइ ।
राजा परजा जिस रुचै, सिर दे सो ले जाइ ॥८॥

भगति दुहेली राम की, नहिं कायर का कांम ।
सीस उतारै हाथि करि, सो लेसी हरि नांम ॥९॥

भगति दुहेली रांम की, जैसि खांडे की धार ।
जे डोलै तौ कटि पड़ै, नही तौ उतरै पार ॥१०॥

---

३ झूझ्या ही बणैं=जूझना ही होगा ।

५ पमावही=डींग मारते हैं ।

६ नेडा=निकट ।

७ खाला=मौसी । पैसै=पैठे ।

९ दुहेली=कठिन ।

भगति दुहेली रांम की, जैसि अगनि की झाल ।
डाकि पड़े ते ऊबरे, दाधे कौतिगहार ॥११॥

जेते तारे रैणि के, तेतै बैरी मुझ ।
धड़ सूली सिर कगुरै, तऊ न बिसारौं तुझ ॥१२॥

सिर साटै हरि सेविये, छाड़ि जीव की वांणि ।
जे सिर दीयां हरि मिलै, तबलग हांणि न जांणि ॥१३॥

सती जलन को नीकली, पीव का सुमरि सनेह ।
सबद सुनत जीव नीकल्या, भूलि गई सब देह ॥१४॥

हौं तोहि पूछौं हें सखी, जीवत क्यूँ न मराइ ।
मूंवा पीछै सत करै, जीवत क्यूँ न कराइ ॥१५॥

सिर राखे सिर जात है, सिर काटे सिर सोय ।
जैसे बाती दीप की कटि उँजियारा होय ॥१६॥

खोजी को डर बहुत है, पल-पल पड़ै विजोग ।
प्रन राखत जो तन गिरै, सो तन साहेबजोग ॥१७॥

तीर तुपक से जो लड़ै, सो तो सूर न होय ।
माया तजि भक्ती करै, सूर कहावै सोय ॥१८॥

११ झाल=ज्वाला । डाकि पडे=फाँद जाये, लाँघ जाये । कौतिगहार=तमाशा-देखनेवाले ।

१२ मुझ=मेरे ।

१३ साटै=मोल । वाणि=लोभ ।

काल कौ अंग

काल सिहाँणैं यों खड़ा, जागि पियारे म्यंत।
रांम-सनेही बाहिरा, तूँ क्यूँ सोवै नच्यत ॥१॥

आज कहै हरि कालिह भजौंगा, कालिह कहै फिरि कालिह।
आज ही कालिह करतडां, औसर जासी चालि ॥२॥

कबीर पल की सुधि नहीं, करै कालिह का साज।
काल अच्यता झड़पसी, ज्यूँ तीतर कौं बाज ॥३॥

बारी बारी आपणीं, चले पियारे म्यत।
तेरी बारी रे जिया, नेड़ी आवै निंत ॥४॥

मालन आवत देखिकरि, कलियां करी पुकार।
फूले-फूले चुणि लिए, कालिह हमारी बार ॥५॥

फांगुण आवत देखिकरि, बन रूना मन मांहिं।
ऊची डाली पात है, दिन दिन पीले थांहिं ॥६॥

जो पहर्‌या सो फाटिसी, नांव धर्‌या सो जाइ।
कबीर सोई तन्त गहि, जो गुर दिया बताइ ॥७॥

काल कौ अंग

१ सिहाँणै=सिरहाने, सिर के ऊपर। म्यत=मित्र। नच्यंत=निश्चित, बेफिक्र।

२ करतडा=करते-करते। जासी चालि=चला जायेगा।

३ अच्यता=अचानक।

६ रूना=उदास, दुखी। थाहिं=हो रहे है।

जो ऊग्या सो आँथिवै, फूल्या सो कुमिलाइ।
जो चिणियां सो ढहि पड़ै, जो आया सो जाइ ॥८॥

पांणी केरा बुदबुदा, इसी हमारी जाति।
एक दिनां छिप जांहिंगे, तारे ज्यूँ परभाति ॥९॥

कबीर यहु जग कुछ नहीं, षिन पारा षिन मींठ।
काल्हि जो बैठा माड़ियां, आज मसांणां दीठ ॥१०॥

पात पडंता यौं कहै, सुनि तरवर बनराइ।
अब के बिछुड़े नां मिलै, कहिं दूर पड़ैगे जाइ ॥११॥

मेरा बीर लुहारिया, तू जिनि जालै मोहिं।
इक दिन ऐसा होइगा, हूँ जालौंगी तोहिं ॥१२॥

कबीर कहा गरबियौ, काल गहै कर केस।
नां जांणै कहाँ मारिसी, कै घर कै परदेस ॥१३॥

कबीर जंत्र न बाजई, टूटि गये सब तार।
जंत्र बिचारा क्या करै, चला बजावणहार ॥१४॥

काए चिणांवै मालिया, लांबी भीति उसारि।
घर तौ साढ़ी तीनि हथ, घणौं तौ पौणां चारि ॥१५॥

---

८ जो.. आँथिवै=जो उदय हुआ वह अस्त होगा। चिणियां=चिना, बनाया।

१० माड़िया=मढैया, छोटा-सा घर। मसांणा=मरघट।

१२ वीर=भाई।

१५ मालिया=धनी। उसारि=दालान, बरामदा। घर=कब्र या श्मशान से अभिप्राय है।

मछी हुआ न छूटिए, भीवर मेरा काल।
जिहिं-जिहिं डाबर हूँ फिरौ, तिहिं-तिहिं मांडै जाल ॥१६॥

सूकण लागा केवड़ा, तूटी अरहट माल।
पांणी की कल जांणतां, गया ज सीचणहार ॥१७॥

बरियां बीती बल गया, अरु बुरा कमाया।
हरि जिन छाड़ै हाथ थै, दिन नेड़ा आया ॥१८॥

कबीर हरि सूँ हेत करि, कूड़ै चित्त न लाव।
बध्या बार पटीक कै, ता पसु कितीएक आव ॥१९॥

बिष के वन मै घर किया, सरप रहे लपटाइ।
ताथै जियरै डर गह्या, जागत रैणि बिहाइ ॥२०॥

काची काया मन अथिर, थिर-थिर काम करत।
ज्यूँ-ज्यूँ नर निधड़क फिरै, त्यूँ-त्यूँ काल हसंत ॥२१॥

रोवणहारे भी मुए, मुए जलावणहार।
हा हा करते ते मुए, कासनि करौं पुकार ॥२२॥

सजीवनि कौ अंग

जहाँ जरा मरण व्यापै नहीं, मुवा न सुणिये कोइ।
चलि कबीर तिहि देसड़ै, जहाँ बैद बिधाता होइ ॥१॥

---

१६ भीवर=धीवर, मछली पकड़नेवाला। डाबर=पोखरा, तलैया। माडै=डालता है।

१७ अरहट=रहँट। सीचणहार=-जीव से अभिप्राय है।

१८ बरिया=अवसर। बुरा कमाया=बुरे कर्म किये। नेडा=पास।

१९ बार=द्वार। पटीक=कसाई। आव=आयु।

२१ थिर-थिर=धीरे-धीरे

कबीर हरि चरणौं चल्या, माया मोह थै टूटि ।
गगन-मँडल आसण किया, काल गया सिरकूटि ।।२।।

यहु मन पटकि पछाड़िलै, सब आपा मिटि जाइ ।
पगुल ह्वै पिव-पिव करै, पीछै काल न खाइ ।।३।।

तरवर तास बिलंबिए, बारह मास फलंत ।
सीतल छाया गहर फल, पंषी केलि करंत ।।४।।

अपारिष कौ अंग

एक अचंभा देखिया, हीरा हाटि बिकाइ ।
परिषणहारे बाहिरा, कौड़ी बदले जाइ ।।१।।

पैडैं मोती बीखर्‌या, अंधा निकस्या आइ ।
जोति बिनां जगदीस की, जगत उलंघ्यां जाइ ।।२।।

पारिष कौ अंग

हरि हीरा जन जौहरी, ले-ले मांडिय हाटि ।
जब रे मिलैगा पारिषू, तब हीरां की साटि ।।१।।

हीरा तहाँ न खोलिए, जहँ खोटी है हाटि ।
कसकरि बाँधो गाठरी, उठकरि चालो बाटि ।।२।।

सजीवनि कौ अंग

२ गगन-मडल=समाधि की शून्य अवस्था । सिरकूटि=पछताकर, अपना-सा मुहँ लेकर ।

३ पंगुल==निश्चल, परमशान्त ।

४ गहर=अत्यधिक ।

पारिष कौ अंग

१ पारिषू=जौहरी । साटि=मोल ।

हंसा बगुला एक-सा मानसरोवर माहिं।
बगा ढँढोरै माछरी, हंसा मोती खाहिं ॥३॥

चदन गया विदेसड़े, सब कोइ कहै पलास।
ज्यों-ज्यों चूल्हे झोंकिया, त्यों-त्यों अधकी बास ॥४॥

अमृत केरी पूरिया, बहु विधि लीन्ही छोरि।
आप सरीखा जो मिले, ताहि पियाऊँ घोरि ॥५॥

ग्यान-रतन की कोठरी, चुप करि दीन्हों ताल।
पारखि आगे खोलिए, कुंजी वचन रसाल ॥६॥

हीरा परा बजार मे, रहा छार लपटाय।
बहुतक मूरख चलि गए, पारखि लिया उठाय ॥७॥

उपजणि कौ अंग

सोष भई ससार थै, चले जु सांई पास।
अबिनासी मोहि ले चल्या, पुरई मेरी आस ॥१॥

कबीर सुपिनै हरि मिल्या, सूतां लिया जगाइ।
आंषि न मीचौं डरपता, मति सुपिनां ह्वै जाइ ॥२॥

गोव्यद के गुण बहुत है, लिखे जु हिरदै मांहि।
डरता पांणी नां पीऊ, मति वै धोये जांहि ॥३॥

---

३ ढँढोरै=खोजते हैं।

५ पूरिया=पुड़िया।

६ ताल=ताला। कुंजी वचन रसाल=मीठे वचन की चाभी से।

७ छार=धूल।

उपजणि कौ अंग

१ पुरई=पूरी की।

भौ समंद विष-जल भर्या, मन नहीं बाँधै धीर।
सबल सनेहीं हरि मिलै, तब उतरै पारि कबीर ॥४॥

कबीर केसौ की दया, संसा घाल्या खोहि।
जे दिन गये भगति बिन, ते दिन सालैं मोहि ॥५॥

सुन्दरि कौ अंग

कबीर जे को सुन्दरी, जांणि करै विभचार।
ताहि न कबहूँ आदरै, प्रेम पुरिष भरतार ॥१॥

जे सुन्दरि सांईं भजै, तजै आन की आस।
ताहि न कबहूँ परहरै, पलक न छाड़ै पास ॥२॥

हूं रोऊं संसार कौं, मुझे न रोवै कोइ।
मुझकौं सोई रोइसी, जे रामसनेही होइ ॥३॥

मूओं कौं का रोइए, जो अपणैं घर जाइ।
रोइए बंदीवान को, जो हाटै हाट बिकाइ ॥४॥

कस्तूरिया मृग कौ अंग

कबीर खोजी रांम का, गया जु सिंघल दीप।
रांम तौ घर भीतरि रमि रह्या, जौ आवै परतीत ॥१॥

---

५ केसौ = केशव। संसा घाल्या खोहि = संशय अर्थात् द्वैतभाव को नष्ट कर दिया। सालै = कष्ट देते हैं।

सुन्दरि कौ अंग

३ रोइसी = रोयेगा।

४ बंदीवान = कैदी दुनियादारी मे फँसा हुआ।

घटि बधि कहीं न देखिये, ब्रह्म रह्या भरपूरि।
जिन जांन्यां तिनि निकटि है, दूरि कहैं ते दूरि ॥२॥

ज्यूँ नैनूँ मैं पूतली, त्यूँ खालिक घट मांहिं।
मूरिख लोग न जांणहीं, बाहरि ढूँढण जांहिं ॥३॥

निंद्या कौ अंग

दोष पराये देखिकरि चल्या हसंत हसत।
अपनै च्यंति न आवई, जिनकी आदि न अंत ॥१॥

निंदक नेडा राखिये, आंगणि कुटी बँधाइ।
बिन साबण पांणीं बिना, निरमल करै सुभाइ ॥२॥

कबीर घास न नींदिये, जो पाऊँ तलि होइ।
उड़ि पड़ै जब आंखि मैं, खरा दुहेला होइ ॥३॥

कबीर आप ठगाइये, और न ठगिये कोइ।
आप ठग्यां सुख ऊपजै, और ठग्यां दुख होइ ॥४॥

अबकै जे सांई मिलै, तौ सब दुख आषौं रोइ।
चरनूँ ऊपरि सीस धरि, कहूँ ज कहणा होइ ॥५॥

कस्तूरिया मृग कौ अंग

२ घटि-बधि = कम-बढ।

३ खालिक = सृष्टिकर्त्ता, परमात्मा।

निंद्या कौ अंग

१ च्यंति न आवई = ध्यान में नहीं आते है।

२ सुभाइ = सहज ही।

३ न नींदिये=निंदा न करे। खरा दुहेला=बहुत ही मुश्किल, भारी तकलीफ़।

५ आषौं = कहूँ।

सातो सायर मैं फिरा, जंबुदीप दै पीठ।
निंद पराई ना करै सो कोइ परला दीठ ॥६॥

निंदक एकहु मति मिलै, पापी मिलौ हजार।
इक निंदक के सीस पर कोटि पाप को भार ॥७॥

निगुणां कौ अंग

हरिया जाणै रूँखड़ा उस पांणीं का नेह।
सूका काठ न जांणई, कबहूँ बूठा मेह ॥१॥

सरपहि दूध पिलाइये, दूधै विष ह्वै जाइ।
ऐसा कोई नां मिलै, स्यूँ सरपै विष खाइ ॥२॥

ऊँचा कुल कै कारणै, बस बध्या अधिकार।
चंदन बास भेदै नहीं, जाल्या सब परिवार ॥३॥

कबीर चदन कै निड़ै, नींव भि चदन होइ।
बूड़ा बंस बडाइतां, यौं जिनि बूड़ै कोइ ॥४॥

बीनती कौ अंग

कबीर सांइ तौ मिलहिंगे, पूछहिंगे कुसलात।
आदि अति की कहूंगा, उर अतर की बात ॥१॥

---

६ जबुदीप दै पीठ = जबूद्वीप (अपने घर से) चलकर। परला = विरला।

निगुणां कौ अंग

१ रूँखडा = पेड। बूठा = बरसा।

३ बंस = (१) वश, कुल (२) बाँस का पेड, जो लबा ऊँचा होता है।

४ निडै = पास। बडाइता = बडाई से, ऊँचा होने से।

करता केरे बहुत गुण, औगुण कोई नाहिं ।
जे दिल खोजौ आपणी, तौ सब औगुण मुझ मांहिं ॥२॥

कबीर करत है बीनती, भौसागर कै ताईं ।
बड़े ऊपरि जोर होत है, जम कूँ बरजि गुसांईं ॥३॥

ज्यूँ मन मेरा तुझ सौं, यौं जे तेरा होइ ।
ताता लोहा यौं मिलै, सधि न लखई कोइ ॥४॥

सुरति करौ मेरे सांइया, हम है भवजल माहिं ।
आपे ही बहि जायँगे, जो नहिं पकरौ बाहिं ॥५॥

क्या मुख लै बिनती करौं, लाज आवत है मोहिं ।
तुम देखत अवगुन करौं, कैसे भावों तोहिं ॥६॥

अवगुन मेरे बापजी, बकस गरीब-निवाज ।
जो मैं पूत कपूत हौं, तऊ पिता कों लाज ॥७॥

मेरा मन जो तोहिं सों, तेरा मन कहिं और ।
कह कबीर कैसे निभै, एक चित्त दुइ ठौर ॥८॥

मन परतीत न प्रेमरस, ना कछु तन मे ढग ।
ना जानौ उस पीव से क्योंकरि रहसी रग ॥९॥

मेरा मुझ मे कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ॥१०॥

बीनती कौ अंग

३ ताईं=बीच में, प्रति । जोर=जुल्म । बरजि गुसाईं=हे स्वामी, मना करदे ।
४ ताता=गरम । सधि=जोड़ ।
९ रहसीरंग=प्रीति निभेगी ।

तुम तो समरथ साँइयाँ, दृढ़करि पकरो बाँहि ।
धुरही लै पहुँचाइयो, जनि छाँड़ो मग माहिं ॥११॥

बेली कौ अंग

आगै आगै दौं जलै, पीछै हरिया होइ ।
बलिहारी ता बिरष की, जड़ काट्यां फल होइ ॥१॥

जे काटौ तौ डहडही, सींचौ तौ कुमिलाइ ।
इस गुणवंती बेलि का, कुछ गुण कह्या न जाइ ॥२॥

विविध

तरवर सरवर संतजन, चौथे बरसै मेह ।
परमारथ के कारने चारौं धारै देह ॥१॥

ऊँची जाति पपीहरा, पियै न नीचा पीर ।
कै सुरपति को जाँचई, कै दुख सहै सरीर ॥२॥

कबीरा मैं तो तब डरौं, जो मुझ ही में होय ।
मीच बुढ़ापा आपदा, सब काहू में सोय ॥३॥

सात दीप नौ खंड में, तीन लोक ब्रंह्मड ।
कह कबीर सबको लगै देहधरे का दंड ॥४॥

---

११ धुर ही=ठिकाने पर ही ।

बेली कौ अंग

१ दौं=जंगल की आग । बिरष=वृक्ष ।

२ डहडही=लहलही, हरी ।

विविध

२ सुरपति=इन्द्र स्वाति नक्षत्र के मेघ से अभिप्राय है ।

३ मीच=मौत ।

देहधरे का दंड है, सब काहू को होय ।
ग्यानी भुगतै ग्यान करि, मूरख भुगतै रोय ॥५॥

जूआ, चोरी, मुखबिरी, ब्याज, घूस, परनार ।
जो चाहै दीदार को, एती बस्तु निवार ॥६॥

राज-दुवारे साधुजन तीनि वस्तु कों जाय ।
कै मीठा, कै मान को, कै माया की चाय ॥७॥

नाचै गावै पद कहै, नाहीं गुरु सों हेत ।
कह कबीर क्यों नीपजै बीज-विहूनो खेत ॥८॥

बिन देखे वह देस की बात कहै सो कूर ।
आपै खारी खात है, बेचत फिरत कपूर ॥९॥

तौलौं तारा जगमगै जौलौं उगै न सूर ।
तौ लौं जिय जग कर्मबस, जौलौं ग्यान न पूर ॥१०॥

करु बहियाँ बल आपनी, छाँड बिरानी आस ।
जाके आँगन नदी है, सो कस मरै पिआस ॥११॥

गुणिया तो गुण को गहै, निर्गुण गुणहिं घिनाय ।
बैलहिं दीजै जायफर क्या बूझै क्या खाय ॥१२॥

अपनी कह मेरी सुनै, सुनि मिलि एकै दोय ।
मेरे देखत जग गया, ऐसा मिला न कोय ॥१३॥

लिखापढ़ी में परे सब, यह गुण तजै न कोइ ।
सबै परे भ्रम-जाल में, डारा यह जिय खोइ ॥१४॥

---

६ मुखबिरी=भेद की खबर देने का काम, जासूसी । दीदार=ईश्वर का दर्शन ।
९ खारी=खड़िया मिट्टी ।

मानुष तेरा गुण बड़ा, माँस न आवै काज ।
हाड़ न होते आभरण, त्वचा न बाजै बाज ॥१५॥

घर कबीर का सिखर पर, जहाँ सिलिहिली गैल ।
पायँ न टिकै पिपीलिका, खलक न लादै बैल ॥१६॥

ऊपर की दोऊ गई, हिय की गई हेराय ।
कह कबीर चारिउ गई, तासों कहा बसाय ॥१७॥

एकै साधे सब सधै, सब साधे सब जाय ।
जो तू सेवै मूल को, फूलै फलै अघाय ॥१८॥

सब काहू का लीजिये साँचा सब्द निहार ।
पच्छपात ना कीजिए, कहै कबीर बिचार ॥१९॥

रचनहार को चीन्हिले, खाने को क्यों रोय ।
दिल-मंदिर मे पैठकरि तानि पिछौरा सोय ॥२०॥

---

१६ सिलिहिली गैल = पैर रपटनेवाला रास्ता । पिपीलिका = चींटी ।
१७ चारिउ = दो चर्म-चक्षु और दो ज्ञान-चक्षु ।
१९ सब्द = उपदेश ।
२० तानि पिछौरा सोय = चादर फैलाकर सोजा, निश्चिन्त होजा ।

रैदास

जीवन-परिचय

जन्म-संवत्---अज्ञात कबीरदास के सम सामयिक

जन्म-स्थान---काशी

जाति---चमार

पिता---रग्घू

माता---घुरबिनिया

गुरु---स्वामी रामानन्द

आश्रम---गृहस्थ

इतिवृत्त केवल इतना ही कि रैदासजी जाति के चमार थे और काशी के रहनेवाले। रैदासजी ने स्वयं ही अपने को काशी-वासी चमार-कुल का कहा है--

'जाके कुटुंब सब ढोर ढोवत फिरहि अजहुँ बानारसी आसपासा।
आचारसहित विप्र करहि डंडउति तिन तनै रैदास दासानुदासा॥

कबीरदास के यह गुरु-भाई थे, अर्थात् स्वामी रामानन्द के शिष्य। भक्तमाल में वर्णित इनकी कथा अनेक चमत्कारों से भरी हुई है। चमार-कुल में जन्म लेने की कथा तो बड़ी ही विचित्र है, नाभाजी के मूल छप्पय में यद्यपि वैसा कोई उल्लेख नहीं है। टीका में लिखा है कि स्वामी रामानन्दजी का एक शिष्य एक ऐसे बनिये के घर से भिक्षा ले आया था, जिसका कारबार एक चमार के साथ था। स्वामीजी के ठाकुरजी ने उस दिन थाल स्वीकार नहीं किया। पूछने पर जब पता चला कि उनका ब्रह्मचारी शिष्य उस बनिये के यहाँ से सीधा लाया था, तब स्वामीजी ने शाप दिया कि 'जा चमार के

यहाँ जन्म ले।' बेचारे ब्रह्मचारी ने चमारिन के गर्भ से जन्म तो ले लिया, पर उस अछूत के स्तनों का दूध नहीं पिया। जब स्वामी रामानन्द ने पूर्वजन्म के ब्राह्मण ब्रह्मचारी को राममंत्र का उपदेश किया, तब कहीं उसने माता के स्तनों का दूध पिया। पूर्वजन्म मे की हुई अपनी उस महाभूल का स्मरण कर शिशु रैदास को बडा पश्चात्ताप हुआ। इस विचित्र कथा के पीछे जो कल्पना है उसका इतना ही अर्थ समझा जाये कि चमार-कुलोत्पन्न जीव भगवान् का भक्त हो नहीं सकता, भक्ति पर तो द्विजाति का ही एकमात्र अधिकार है। रैदास की गणना इसीलिए भक्तों में हुई कि वे पूर्वजन्म के शापित ब्राह्मण थे। अन्त्यजों के प्रति द्वेषभाव किस सीमातक पहुँचा था, इसका स्पष्ट प्रमाण इस विचित्र कल्पित कथा मे मिलता है। एक ऐसी ही दूसरी कथा के अनुसार रैदासजी ने एक दिन अपने पूर्वजन्म का ब्राह्मणत्व सिद्ध करने के लिए अपने शरीर की त्वचा उधेडकर 'स्वर्ण-यज्ञोपवीत' सबको दिखलाया था।

रैदासजी गृहस्थाश्रम मे रहते हुए भी उच्चकोटि के विरक्त सत थे। जूते सीते-सीते ही उन्होने ज्ञान-भक्ति का ऊँचा पद प्राप्त किया था।

प्रसिद्ध है कि चित्तौर की झाली नाम की एक रानी ने काशी मे जाकर रैदासजी से गुरु-मत्र लिया था। उसकी प्रार्थना पर वे चित्तौर भी गये थे। कहते हैं कि झाली महाराणा उदयसिह की रानी थी, किन्तु इसका कोई पुष्ट प्रमाण उपलब्ध नहीं है।

मीरा बाई को भी रैदासजी की शिष्या कहा जाता है उनके कुछ पदो के आधार पर, जैसे—

"मेरो मन लाग्यो गुरु सों, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदासजी म्हानें, दीनीं ग्यान की गुटकी॥"
"सतगुरु सत मिले रैदासा, दोनी सुरत सहदानी।"

मीरा की अधिक-से-अधिक पद-रचना सगुणोपासना की होने के कारण, तथा काल की दृष्टि से परवर्ती होने से भी यह कथानक विवादास्पद है। मीरा बाई ने चैतन्य महाप्रभु का भी एक-दो पदो मे गुरुवत् स्तवन किया है, जैसे—

"अब तो हरीनाम लौ लागी।
सब जग को यह माखनचोरा, नाम धर्यौ बैरागी॥"

कित छाँड़ी वह मोहन मुरली, कित छाँड़ी वे गोपी ।
मूँड मुँडाइ डोरि कटि बाँधी, माथे मोहन-टोपी ॥
मात जसोमति माखन कारन, बाँधे जाके पाँव ।
स्याम किसोर सोइ तन गोरा, चैतन्य जाको नाँव ॥
पीताबर को भाव दिखावै, कटि कोपीन कसै ।
गौर कृष्ण की दासी मीरा रसना कृष्ण वसै ॥"

इसी प्रकार मीरा बाई को कुछ विद्वानो ने वल्लभ-कुल की भी शिष्या माना है । इसका समाधान इस प्रकार हो जाता है कि रैदासजी के परवर्ती काल मे होते हुए भी मीरा ने उनका पुण्य स्मरण 'सद्गुरु' के रूप में किया है, अथवा किसी रैदासी साधु के प्रति उसका गुरुभाव रहा हो ।

रैदास के समसामयिक तथा परवर्ती सतो ने रैदास को एक बहुत बड़े हरिभक्त के रूप मे स्वीकार किया था । स्वामी दादूदयाल के शिष्य रज्जबजी ने भगवद्-भक्ति के सबध में तो यहाँतक कहा है—

"आदि मिली जयदेव कूँ, रैदास समानी ।"

रैदासजी का प्रभाव दूर-दूरतक फैला हुआ था, और आज भी भारत के अनेक प्रदेशों मे उनके पथ के अनुयायी रविदासी लाखो की संख्या मे मिलते हैं । रैदासजी 'रविदास' नाम से भी प्रसिद्ध हैं ।

बानी-परिचय

रैदासजी की बानी के सबध मे नाभाजी की यह पक्ति प्रसिद्ध है—

"सन्देह-ग्रन्थि खडन-निपुन बानि विमल रैदास की ।"

यह उनकी 'विमल' बानी का ही प्रभाव था कि—

"वर्णाश्रम-अभिमान तजि पद-रज बदहि जासकी ।"

महात्मा रैदास की बडे ऊँचे घाट की बानी है । प्रेमपराभक्ति का कई शब्दों मे बड़ा ही विशद निरूपण उन्होंने किया है । समता और सदाचार पर बहुत बल दिया है । भक्ति-रस का ऐसा सुन्दर परिपाक अन्यत्र कम देखने मे आता है । खडन-मडन की ओर उनका ध्यान नहीं था । सत्य की शुद्ध निर्मल अभिव्यक्ति ही, अपरोक्षानुभूति ही उनका परम ध्येय था । भाषाने भी भाव का मूक अनुसरण किया है । अनेक जनपदो के शब्दो का उनकी बानी मे समावेश हुआ है, फिर भी रस एकरस ही सर्वत्र प्रवाहित दीखता है ।

आधार

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहब——सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ रैदास—बेलवेडियर प्रेस, इलाहाबाद
३ भक्तमाल——नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ
४ भगवान रविदास की सत्य कथा——महात्मा रामचरण कुरील, कानपुर

रैदास

शब्द

भैरव

बिनु देखे उपजै नहिं आसा।
जो दीसै सो होइ बिनासा ॥
बरन सहित जो जापै नामु।
सो जोगी केवल निहकामु ॥
परचै रामु रवै जो कोई।
पारसु परसै न दुबिधा होई ॥
सो मुनि मन की दुबिधा खाइ।
बिनु द्वारे त्रैलोक समाइ ॥
मन का सुभाव सब कोई करै।
करता होइ सु अनभै रहै ॥
फल कारन फूली बनराइ।
फलु लागा तब फूल बिलाइ ॥

शब्द

१ दीसै = दीखता है। निहकामु = निष्काम कामना-रहित। रवै = रमण करता है, प्रत्यक्ष अनुभव करता है। पारसु = ब्रह्मरस से तात्पर्य है। दुबिधा = द्वैतभाव। सो मुनि ... खाइ = जिसके मन में द्वैतभाव का लेश भी नहीं रहा, उसे ही 'मुनि' कहना चाहिए। बिनु ... समाइ = उस मुनि

ग्यानै कारन कर अभ्यासू।
ग्यान भया तहँ करमह नासू॥
घृत कारन दधि मथै सयान।
जीवत मुकत सदा निरबान॥
कहि रविदास परम बैराग।
रिदै रामु को न जपिसि अभाग॥१॥

मलार

मिलत पियारो प्राननाथ कवनि भगति।
साध-संगति पाई परम गति॥
मैले कपरे कहाँ लउ धोवउ।
आवैगी नींद कहाँ लउ सोवउँ॥
जोई-जोई जोर्‌यो सोई-सोई फाट्यो।
झूठै बनजि उठि ही गई हाट्यो॥
कहि रविदास भयो जब लेख्यो।
जोई-जोई कीन्यो सोई-सोई देख्यो॥२॥

बिलावल

जिहि कुल साधु बैसनौ होइ।
बरन अबरन रंक नहीं ईस्वर, बिमल बासु जानिये जग सोइ॥

को त्रिलोक का ज्ञान, बाह्य साधनों के बिना ही, प्राप्त हो जाता है। अनभै रहै=अनुभव-ज्ञान पर स्थित रहता है, अथवा, निर्भय रहता है। बनराइ=वृक्षावली। बिल्हाइ=लुप्त हो जाता है। निरबान=मुक्त। रिदै=हृदय में।

२ परमगति=मोक्ष। जोर्‌यो=संबंध जोड़ा। फाट्यो=बिछुड़ गया। बनजि=व्यापार। हाट्यो=हाट, पेठ।

३ बैसनौ=वैष्णव, हरि-भक्त। ईस्वर=राजा से अभिप्राय है।

बाँभन बैस सूद अरु ख्यत्री डोम चडाल मलेच्छ किन सोइ।
होइ पुनीत भगवत भजन ते आपु तारि तारै कुल दोइ॥
धनि सु गाउँ धनि धनि सो ठाऊँ, धनि पुनीत कुटँब सभ लोइ।
जिनि पिया सार-रस तजे आन रस होइ रसमगन डारे बिषु खोइ॥
पडित सूर छत्रपति राजा भगत बराबरि औरु न कोइ।
जैसे पुरैन-पात जल रहै समीप भनि रविदास जनमे जगि ओइ॥३॥

राग मारू

ऐसी लाल, तुझ बिनु कौन करै।
गरीवनिवाजु गुसैयाँ, मेरे माथे छत्र धरै॥
जाकी छोति जगत कौ लागै, तापर तुही ढरै।
नीचहिं ऊँच करै मेरा गोविंदु, काहू ते न डरै॥
नामदेव, कबीर, तिलोचन, सधना, सैनु तरै।
कहि रविदास सुनहु रे संतो, हरि-जीउ ते सभै सरै॥४॥

सुखसागर सुरतरु, चिंतामनि कामधेनु बसि जाके, रे।
चारि पदारथ, असट महासिधि, नवनिधि करतल ताके, रे।
हरि हरि हरि न जपसि रसना।
अवर सभ छाडि बचन रचना॥

ख्यत्री=क्षत्रिय। किन=क्यों न। लोइ=लोग। सार-रस=प्रेम-लक्षणा भक्ति से आशय है। आन-रस=विषय-भोग। पुरैन पात=कमल का पत्ता, जो जल मे रहते हुए भी भींगता नहीं। जनमे जगि ओइ=जगत में उसीका जन्म लेना सार्थक है।

४ गुसैयाँ=स्वामी। छत्र=राजछत्र। छोति=छूत। ढरै=कृपा करता है। तिलोचन=त्रिलोचन नामका एक भक्त। सदना=सदन नामका एक कसाई भक्त। सैन=सेन भक्त, जो जाति का नाई था।

नाना ख्यान पुरान बेद बिधि चौंतीस अच्छर माहीं।
व्यास विचारि कह्यो परमारथ रांम-नांम सरि नाहीं॥
सहज समाधि उपाधि-रहित होइ बड़े भागि लिव लागी।
कहि रविदास उदास दासमति जनम-मरन-भय भागी॥५॥

राग सूही

सह की सार सुहागनि जानै।
तजि अभिमान सुख रलिया मानै॥
तनु मनु देइ न सुनै अतर राखै।
अवरा देखि न सुनै न माखै॥
सो कत जानै पीर पराई।
जाकै अंतर दरद न पाई॥
दुखी दुहागनि दुइ पखहीनी।
जिनि नाह निरंतरि भगति न कीनी॥
राम-प्रीति का पथ दुहेला।
संगि न साथी गवन अकेला॥
दुखिया दरदमद दरि आया।
बहुतै प्यास जबाब न पाया॥

---

५ बसि = वश में। करतल = हाथ में, अधीन। अमट = अष्ट, आठ। ख्यान = आख्यान, कथाएँ। सरि = बराबर। लिव = लौ। उदास = विरक्त। दास-मति = भक्त-बुद्धि से।

६ सह = मिलन। सार = सेज का सुख आनन्द-तत्त्व। सुख रलिया = एकाकार हो जाने का आनन्द। अवरा = अन्य। दुहागनि = अभागिनी। दुइ-पखहीनी = लोक परलोक जिसके दोनों बिगड़ गये। नाह = नाथ, स्वामी। दुहेला = कठिन, दुःखदायी।

कहि रविदास सरनि प्रभु तेरी।
ज्यूँ जानहु त्यूँ करु गति मेरी ॥६॥*

सूही

जो दिन आवहि सो दिन जाही।
करना कूच रहन थिरु नाही॥
संगु चलत हैं हम भी चलना।
दूरि गवनु सिर ऊपरि मरना॥
क्या तू सोया जाग अयाना।
तै जीवन जगि सचु करि जाना॥
जिनि दिया सु रिजकु अंबरावै।
सभ घट भीतरि हाटु चलावै॥
करि बंदिगी छाँडि मैं मेरा।
हिरदै नामु सम्हारि सवेरा॥
जनमु सिरानो पंथु न सँवारा।
साँझ परी दह दिसि अँधियारा॥
कह रविदास नदान दिवाने।
चेतसि नाही दुनिया फनखाने ॥७॥

---

*इस पद का यह भी पाठ-भेद है :
सो कहा जानै पीर पराई। जाके दिल में दरद न आई॥
दुखी दुहागिनि होइ पिय हीना। नेह निरति करि सेवन कीना॥
स्याम प्रेम का पंथ दुहेला। चलन अकेला कोइ संग न हेला॥
सुख की सार सुहागिनि जानै। तन मन देय अंतर नहि आनै॥
आन सुनाय और नहिं भाखै। राम रसायन रसना चाखै॥
खालिक तौ दरमंद जगाया। बहुत उमेद जबाब न पाया॥
कह रैदास कवन गति मेरी। सेवा बंदगी न जानूँ तेरी॥

७ रिजक=रोजी, जीविका। अंबरावै=जुटाता है। हाटु=पेठ, लेन-देन। सम्हारि=स्मरण कर। सवेरा=जल्दी। दह=दस। नदान=नादान, मूर्ख। फनखाने=नाशवान्।

ऊँचे मंदिर, सालि रसोई।
एक घरी पुनि रहन न होई॥
इह तनु ऐसा जैसे घास की टाटी।
जलि गयो घास रलि गयो माटी॥
भाई बंधरु कुटॅब सहेरा।
ओइ भी लागे काढु सवेरा॥
घर की नारि उरहि तन लागी।
उह तौ भूतु भूतु करि भागी॥
कहि रविदास सबै जग लूट्या।
हम तौ एक राम कहि छूट्या॥८॥

धनाश्री

चित सिमरन करौ नैन अवलोकनो,
स्रवन बानी सुजसु पूरि राखौ।
मनु सु मधुकरु करौं चरण हिरदे धरौ,
रसन अमृत रामनाम भाखौ॥
मेरी प्रीति गोबिंद सिउ जनि घटै।
मैं तौ मोलि महँगी लई जीउ सटै॥
साध संगति बिना भाव नहिं ऊपजै,
भाव बिन भगति नहिं होय तेरी।
कहै रविदास एक बेनती हरि सिउ
पैज राखहु राजाराम मेरी॥९॥

---

८ सालि=चावल, मधुर अन्न। रलिगयो=मिल गया। सहेरा=सहेला, सखा।

९ पूरि राखौ=भरलूँ। रसन=रसना, जिह्वा। जीव सटै=प्राणों के मोल। पैज=टेक।

जैतिश्री

नाथ, कछुवै न जानउ ।
मनु माया कै हाथि बिकानउ ॥
तुम कहियत हौ जगतगुर स्वामी ।
हम कहियत कलिजुग के कामी ॥
इन पचन मेरो मन जु बिगार्‌यो ।
पलु पलु हरिजी ते अंतरु पार्‌यो ॥
जित देखौ तित दुख की रासी ।
अजौं न पत्याइ निगम भये साखी ॥
इन दूतन खलु बध करि मार्‌यो ।
बड़ो निलाजु अजहु नहिं हार्‌यो ॥
कहि रविदास कहा कैसे कीजै ।
बिनु रघुनाथ सरनि काकी लीजै ॥१०॥

गौरी

मेरी सगति पोच सोच दिनु राती ।
मेरा करम-कुटिलता जनमु कुभाँती ॥
राम गुसइयाँ जीउ के जीवना ।
मोहिं न बिसारहु मैं जनु तेरा ॥
हरहु बिपति जन करहु सुभाई ।
चरण न छाडौं सरीर कल जाई ॥

---

१० अंतर पार्‌यौ=भेद डाल दिया । पत्याइ=विश्वास करता है । निगम=वेद । साखी=साक्षी, गवाह ।

११ पोच=नीच । कल=भले कल ही ।

कहि रविदास परौ तेरी साभा ।
वेगि मिलहु जन करि न बिलाँबा ॥११॥

गौरी पूरबी

कूप पर्‌यो जैसे दादिरा कछु देसु बिदेसु न बूझ ।
ऐसे मेरा मनु बिख्या बिमोह्या कछु आरापारु न सूझ ॥
सगल भवन के नायक इकु छिनु दरसु दिखाइ ॥
मलिन भई मति माधवा तेरी गति लखी न जाय ।
करहु कृपा भ्रम चूकई मैं, सुमति देहु समझाय ॥
जोगीसुर पावहिं नहीं तुअ गुण कथनु अपार ।
प्रेम-भगति कै कारणै कहि रविदास चमार ॥१२॥

रामकली

गाइ गाइ अब का कहि गाऊँ ।
गावनहार को निकट बताऊँ ॥
जबलगि है इहि तन की आसा, तबलगि करै पुकारा ।
जब मन मिल्यौ आस नहिं तन की, तब को गावनहारा ॥
जबलगि नदी न समुँद्र समावै, तबलगि बढ़ै हँकारा ।
जब मन मिल्यौ रामसागर सौं, तब यह मिटी पुकारा ॥
जबलगि भगति मुकति की आसा, परमतत्व सुनि गावै ।
जहँ जहँ आस धरत है इहि मन, तहँ-तहँ कछू न पावै ॥
छाँड़ै आस निरास परमपद, तब सुख सति कर होई ।
कहि रैदास जासौ और करत है, परमतत्व अब सोई ॥१३॥

---

१२ दादिरा=दादुर, मेढक । आरापारु=आर-पार । बिख्या=विषयों के । सगल=सकल ।

१३ हँकारा=अहंकार । सति कर=सत्य का, निश्चय ही । निरास=तृष्णा-रहित, अनासक्त ।

राग रामकली

राम-भगत को जन न कहाऊँ, सेवा करूँ न दासा।
जोग जग्य गुन कछू न जानूँ, ताते रहूँ उदासा॥
भगत भया तो चढ़ै बड़ाई, जोग करूँ जग मानै।
जो गुन भया तौ कहैं गुनी जन, गुनी आपको जानै॥
ना मैं ममता मोह न महिया, ये सब जाहिं बिलाई।
दोजख भिस्त दोउ सम करि जानूँ, दुहुँ ते तरक है भाई॥
मैं अरु ममता देखि सकल जग, मैं से मूल गवाँई।
जब मन ममता एक-एक मन, तबहि एक है भाई॥
कृस्न करीम राम हरि राघव, जबलगि एक न पेखा।
बेद कितेब कुरान पुरानन, सहज एक नहिं देखा॥
जोइ-जोइ पूजिय सोइ-सोई काँचो, सहज भाव सति होई।
कहि रैदास मैं ताहि को पूजूँ, जाके ठाँव नाँव नहिं होई॥१४॥

राग रामकली

नरहरि, चचल है मति मेरी। कैसे भगति करूँ मै तेरी॥
तूँ मोहिं देखै हौ तोहि देखूँ, प्रीति परस्पर होई।
तूँ मोहिं देखै तोहि न देखूँ, यह मति सब बुधि खोई॥
सब घट अंतर रमसि निरंतर, मै देखन नहिं जाना।
गुन सब तोर मोर सब औगुन, कृत उपकार न माना॥
मै तै तोरि मोरि असमझि सों, कैसे करि निस्तारा।
कहि रैदास कृस्न करुनामय, जै जै जगत-अधारा॥१५॥

---

१४ बड़ाई=महिमा। महिया=मथा। भिस्त = बहिश्त, स्वर्ग। तरक=असहकार, त्याग।

१५ रमसि=रमता है, व्यापक है। कृत=किया हुआ। असमझि=अज्ञान, भ्रान्ति।

राग रामकली

जब राम नाम कहि गावैगा, तब भेद अभेद समावैगा ॥
जे सुख ह्वै इहि रस के परसे, सो सुख का कहि गावैगा ॥
गुरुपरसाद भई अनुभौ मति, विष अंमित सम धावैगा ॥
कहि रैदास मेटि आपा पर, तब उहि ठौरहिं पावैगा ॥१६॥

राग रामकली

भगती ऐसी सुनहु रे भाई । आइ भगति तब गई बड़ाई ॥
कहा भयो नाचे अरु गाये, कहा भयो तप कीन्हे ।
कहा भयो जे चरन पखारे, जौलौं तत्व न चीन्हे ॥
कहा भयो जे मूँड मुँड़ायो, कहा तीर्थ व्रत कीन्हें ।
स्वामी दास भगत अरु सेवक, परम तत्त्व नहिं चीन्हे ॥
कहि रैदास तेरी भगति दूरि है, भाग बड़े सों पावै ।
तजि अभिमान मेटि आपा पर, पिपिलक ह्वै चुनि खावै ॥१७॥

राग जगली गौडी

अब हम खूब वतन घर पाया । ऊँचा खेर सदा मेरे भाया ।
बेगमपूर सहर का नाम । फिकर अँदेस नही तेहि ग्राम ॥
नहिं जहँ साँसत लानत मार । हैफ न खता न तरस जवाल ॥

---

१६ भेद अभेद समावैगा=सारा मायाकृत द्वैतभाव तब अद्वैतभाव मे लय हो जायेगा । इहिरस=अद्वैतभाव का आनन्द । धावैगा=समझेगा । आपापर=यह अपना है, और वह पराया द्वैतभाव ।

१७ पिपिलक=पिपीलिका, चीटी । धूल मे शकर मिल गई हो तो चीटी ही शकर को अलग करके खा सकती है, यह कार्य हाथी नही कर सकता । रस-प्राप्ति के लिए नन्हे-से-नन्हा बनने की आवश्यकता है ।

१८ खेर=खेडा, गाँव । बेगमपूर=जहाँ पहुँचने की गति नही । अँदेस=डर । साँसत=पीडा । लानत=भर्त्सना । हैफ=अफसोस । खता=धोखा,

आव न जान, रहम औजूद। जहाँ गनी आप बसै माबूद ॥
जोई सैलि करै सोई भावै। महरम महल में को अटकावै ॥
कहि रैदास खलास चमारा। जो उस सहर सो मीत हमारा ॥१८॥

राम मैं पूजा कहा चढ़ाऊँ। फल अरु फूल अनूप न पाऊँ ॥
थनहर दूध जो बछरू जुठारी। पुहुप भँवर जल मीन बिगारी ॥
मलयागिरि बेधियो भुअंगा। विष अम्रित दोउ एकै संगा ॥
मनही पूजा मनही धूप। मनही सेऊँ सहज सरूप ॥
पूजा अरचा न जानूँ तेरी। कहि रैदास कवन गति मेरी ॥१६॥

राग सोरठ

जो तुम तोरौ राम मैं नहिं तोरौं।
तुम सों तोरि कवन सों जोरौं ॥
तीरथ बरत न करौं अँदेसा। तुम्हरे चरनकमल का भरोसा ॥
जहँ-जहँ जावौं तुम्हरी पूजा तुम सा देव और नहिं दूजा ॥
मै अपनो मन हरि सों जोर्‌यो। हरि सों जोरि सबन सों तोर्‌यो ॥
सबही पहर तुम्हारी आसा। मन क्रम बचन कहै रैदासा ॥२०॥

थोथो जनि पछोरौ रे कोई।
जोई रे पछोरौ जा मे निज कन होई ॥
थोथी काया थोथी माया। थोथा हरि बिन जनम गँवाया ॥
थोथा पंडित थोथी बानी। थोथी हरि बिन सबै कहानी ॥

चूक। जवाल=झंझट। औजूद=वजूद, अस्तित्व। गनी=धनी। माबूद=पूज्य, इष्टदेव। महरम=असली भेद का जाननेवाला, रहस्य से सुपरिचित।

१६ थनहर=थन से दुहा हुआ। पुहप=पुष्प, फूल। मलयागिरि=मलय-गिरि का चंदन।

थोथा मंदिर भोग विलासा। थोथी आन देव की आसा ॥
साँचा सुमिरन नाम-विसासा। मन बच कर्म कहै रैदासा ॥२१॥

राग भैरो

भेष लियो पै भेद न जान्यो। अमृत लेइ विषै सों सान्यो ॥
काम क्रोध मे जनम गँवायो। साधु-सगति मिलि राम न गायो ॥
तिलक दियो पै तपनि न जाई। माला पहिरे घनेरी लाई ॥
कहि रैदास मरम जो पाऊँ। देव निरंजन सत करि ध्याऊँ ॥२२॥

राग बिलावल

मै बेदनि कासनि आखूँ,
हरि बिन जिव न रहै कस राखूँ ॥
जिव तरसै ल्यौ आसरु तेरा, करहु सँभाल न सुर मुनि मेरा ॥
बिरह तपै तन अधिक जरावै, नींद न आवै भोज न भावै ॥
सखी सहेली गरब गहेली, पिउ की बात न सुनहु सहेली।
मै रे दुहागिनि अघ करि जानी, गया सो जोबन साध न मानी ॥
तूँ सांई औ साहिब मेरा, खिजमतगार बदा मैं तेरा।
कहि रैदास अँदेसा येही, बिन दरसन क्यों जिवहि सनेही ॥२३॥

राग कानडा

चल मन, हरि-चटसाल पढ़ाऊँ।
गुरु की साटि ग्यान का अच्छर,
बिसरै तौ सहज समाधि लगाऊँ ॥

---

२१ थोथो=पोला, निस्सार। पछोरना=फटकना, सूप मे रखकर अन्न साफ करना। निजकन=आत्म-सुख-कणो से आशय है। बिसासा=विश्वास।
२३ बेदनि=वेदना, पीडा। आखूँ=कहूँ। भोज=भोजन। आसरु=आश्रय, शरण। दुहागिनि=अभागिनी। अघ करि जानी=पाप करना ही जाना।

प्रेम की पाटी सुरति की लेखनि,
ररौ ममौ लिखि आँक लखाऊँ ।
इहि बिधि मुक्त भये सनकादिक,
रिदै विचार-प्रकास दिखाऊँ ॥
कागद कँवल, मति मसि करि निर्मल,
बिन रसना निसिदिन गुन गाऊँ ।
कहि रैदास, राम भजु भाई,
सत साखि दे बहुरि न आऊँ ॥२४॥

राग गौड

आज दिवस लेऊँ बलिहारा ।
मेरे घर आया राम का प्यारा ॥टेक॥
आँगन बँगला भवन भयो पावन ।
हरिजन बैठे हरिजस गावन ॥
करूँ डंडवत, चरन पखारूँ ।
तन मन धन उन ऊपरि वारूँ ॥
कथा कहै अरु अर्थ विचारै ।
आप तरै, औरन कों तारै ॥
कहि रैदास मिलै निज दासा ।
जनम-जनम कै काटै पासा ॥२५॥

---

२४ चटसाल=पाठशाला । साटि=छड़ी । पाटी=तख्ती । ररौ ममौ=रकार, मकार यही दो अक्षर अर्थात् राम । कँवल=हृदय-कमल से आशय है । मति-मसि=बुद्धिरूपी स्याही । बहुरि न आऊँ=फिर जन्म न लूँ ।
२५ पासा=(कर्म के) फंदे ।

राग केदारा

कहु मन रामनाम सँभारि।
माया के भ्रम कहा भूल्यो, जाहुगे कर झारि॥
देखि धौं इहाँ कौन तेरो, सगा सूत नहिं नारि।
तोरि उतँग सब दूरि करिहैं, देहिंगे तन जारि॥
प्रान गये कहो कौन तेरा, देखि सोचि बिचारि।
बहुरि इहि कलिकाल माहीं, जीति भावै हारि॥
यहु माया सब थोथरी रे, भगति दिस प्रति हारि।
कहि रैदास सत बचन गुरु के, सो जिव ते न बिसारि॥२६॥

राग धनाश्री

मैं का जानूँ देव, मैं का जानूँ।
मन माया के हाथ विकानूँ॥
चंचल मनुवाँ चहूँदिसि धावै।
पाँचौ इंद्री थिर न रहावै॥
तुम तौ आहि जगतगुरु स्वामी।
हम कहियत कलिजुग के कामी॥
लोक बेद मेरे सुकृत बड़ाई।
लोक लीक मोपै तजी न जाई॥
इन मिलि मेरा मन जो बिगार्‌यो।
दिन-दिन हरि सों अंतर पार्‌यो॥
सनक सनंदन महामुनि ग्यानी।

---

२६ कर झारि=हाथ झाडकर खाली हाथ। सूत=सुत, पुत्र। उतंग=नाता। भावै=चाहे, अथवा। थोथरी=खोखली, साररहीन। भगति... हारि=अपना सर्वस्व भक्ति की बाजी पर हार दे।

२७ लीक=मर्यादा, नियम। उमापति=शिव। गामी=यहाँ 'गायक' यह

सुख नारद अरु ब्यास बखानी ॥
गावत निगम उमापति स्वामी ।
सेस सहसमुख कीरति-गामी ॥
जहँ जाऊँ तह दुख की रासी ।
जो न पतियाइ साधु है साखी ॥
जमदूतन बहु विधि करि मार्‌यो ।
तऊ निलज अजहूँ नहिं हार्‌यो ॥
हरिपद-बिमुख आस नहिं छूटै ।
ताते तृस्ना दिन दिन लूटै ॥
बहु विधि करम लिये भटकावै ।
तुम्हे दोष हरि कौन लगावै ॥
केवल रामनाम नहिं लीया ।
सतत बिषय-स्वाद चित दीया ॥
कहि रैदास कहाँलगि कहिये ।
बिन रघुनाथ बहुत दुख सहिये ॥२७॥

राग धनाश्री

जन को तारि तारि बाप रमइया ।
कठिन फंद पर्‌यो पंच जमइया ॥
तुम बिन सकल देव मुनि ढूँढूँ,
कहूँ न पाऊँ जमपास छुड़इया ॥
हम से दीन दयाल न तुम से,
चरन-सरन रैदास चमइया ॥२८॥

अर्थ लिया जायेगा । सतत = सदा ।

२८ रमइया = राम । जमइया = यम । चमइया = चमार ।

राग धनाश्री

दरसन दीजै राम दरसन दीजै।
दरसन दीजै बिलँब न कीजै॥
दरसन तोरा जीवन मोरा। बिन दरसन क्यूँ जिवै चकोरा॥
माधो सतगुरु सब जग चेला। अब के बिछुरे मिलन दुहेला॥
धन जोबन की झूठी आसा। सत सत भाषै जन रैदासा॥२६॥

आरती

अब कैसे छूटै नामरट लागी।
प्रभुजी तुम चंदन हम पानी। जाकी अँग-अँग बास समानी॥
प्रभुजी तुम घनबन हम मोरा। जैसे चितवत चंद चकोरा॥
प्रभुजी तुम दीपक हम बाती। जाकी जोति बरै दिनराती॥
प्रभुजी तुम मोती हम धागा। जैसे सोनहिं मिलत सुहागा॥
प्रभुजी तुम स्वामी हम दासा। ऐसो भक्ति करै रैदासा॥३०॥

प्रभुजी तुम संगति सरन तिहारी।
जग-जीवन राम मुरारी॥
गली-गली को जल बहि आयो, सुरसरि जाय समायो।
संगति के परताप महातम, नाम गंगोदक पायो॥
स्वाँति बूँद बरसै फनि ऊपर, सोहि विषै होइ जाई।
ओहि बूँद कै मोती निपजै, संगति की अधिकाई॥
तुम चंदन हम रेंड बापुरे, निकट तुम्हारे आसा।
संगति के परताप महातम, आवै बास सुबासा॥

---

२८ दुहेला = कठिन।
३० बास = सुगन्ध।
३१ फनि = साँप। विषै = विष ही। निपजै = पैदा होता है। अधिकाई = बड़ाई,

जाति भी ओछी करम भी ओछा, ओछा कसब हमारा।
नीचै से प्रभु ऊँच कियो है, कहि रैदास चमारा ॥३१॥

साखी

हरि-सा हीरा छाँड़िकै, करै आन की आस।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भापै रैदास ॥१॥

अंतरगति राचै नहीं, बाहर कथै उदास।
ते नर जमपुर जाहिंगे, सत भापै रैदास ॥२॥

जा देखे घिन ऊपजै, नरककुण्ड मे बास।
प्रेमभगति सों ऊधरे, प्रगटत जन रैदास ॥३॥

रैदास राति न सोइये, दिवस न करिये स्वाद।
अहनिसि हरिजी सुमिरिये, छाँड़ि सकल प्रतिवाद ॥४॥

सब सुख पावै जासुतें, सो हरिजू को दास।
कोउ दुख पावै जासुतें, सो न दास हरिदास ॥५॥

महिमा। रैड=रँडी, अरंड। कसब=पेशा।

साखी

२ राचै=प्रेम से रँगे। उदास=वैराग्य की बात।

३ ऊधरे=उद्धार हो गया।

४ प्रतिवाद=बकवास, झंझट।

गुरु-बानी

"आदि ग्रन्थ" या "गुरु ग्रन्थ साहिब" मे ६ सिक्ख गुरुओं की बानी सग्रहीत है। पॉचवे गुरु अर्जुनदेव ने आदिगुरु बाबा नानकदेव की बानी से लेकर अपनी निज की बानीतक को सग्रह कराके भाई गुरुदास के द्वारा गुरमुखी लिपि मे लिखवाया था। इस महान् सग्रह को आदि ग्रन्थ अथवा गुरु ग्रन्थ-साहिब नाम दिया गया। आदि ग्रन्थ का संकलन भादो सुदी १ सवत् १६६१ को सपूर्ण हुआ। कहते है कि कुछ कोरे पन्ने उन्होने इस विश्वास से छोड़वा दिये थे कि नवे गुरु की जो रचनाएँ होगी, उनको उन पन्नों पर विभिन्न रागो के अनुसार भविष्य मे लिखा जायगा।

गुरु नानक के पश्चात् जिन परवर्ती गुरुओं ने समय-समय पर रचनाएँ की उनके अंत मे अति नम्रभावना से प्रेरित होकर अपने नाम न देकर 'नानक' ही सबने नाम दिया है। यह कठिनाई देखकर कि लोग आखिर कैसे पहचानेंगे कि कौन रचना किस गुरु की है, गुरु अर्जुनदेव ने उस-उस रचना के ऊपर 'महला १' 'महला २' 'महला ३' आदि सकेत लिखा दिये, जिनका अर्थ यह हुआ कि 'महला १' की बानी गुरु नानकदेव की है, 'महला २' की बानी गुरु अगद की है, 'महला ३' की बानी गुरु अमरदास की है, 'महला ४' की बानी गुरु रामदास की है, 'महला ६' की बानी गुरु अर्जुन की है और 'महला ९' की बानी गुरु तेगबहादुर की है। छठे, सातवे और आठवे गुरु ने कोई रचना नही की। 'महला' या महल्ला आदिग्रन्थरूपी नगर के मानो भिन्न-भिन्न भाग है।

इन सब बानियों को गुरुओं के क्रमानुसार न देकर गुरु ग्रन्थ साहिब में निम्नलिखित ३१ रागों के अनुसार संकलित किया गया है—

सिरी (श्री), गउडी, आसा, गूजरी, देव गंधारी, बिहागड़ा, वडहंस, सोरठि, धनासरी, टोडी, बैराडी, तिलंग, सूही, बिलावलु, गौंड, रामकली, नट-नाराइन, गउडा, मारू, तुखारी, केदारा, भैरउ, बसंत, सारंग, मलार, कानड़ा, कलिआन, प्रभाती और जैजावंती।

किन्तु बाबा नानक-रचित जपुजी, सो दरु, सुणि वड्डा और सोहिला इनको रागों में नहीं बाँधा गया है।

इन छह गुरुओं की बानी के अलावा कबीर, नामदेव, रविदास, त्रिलोचन, शेख फरीद आदि कुछ भगतों की भी बानियाँ प्रत्येक राग के अंत में संगृहीत हैं।

गुरु नानक, गुरु अंगद और गुरु अमरदास की रचनाएँ प्रायः पंजाबी भाषा-बहुल हैं। गुरु रामदास की रचनाओं की भाषा कुछ पंजाबी और बहुत-कुछ हिन्दी है। गुरु अर्जुन की भाषा में अपेक्षाकृत हिन्दी के अधिक शब्दों का प्रयोग हुआ है। नवें गुरु तेगबहादुर की सारी रचनाएँ शुद्ध हिंदी में हैं। गुरु नानक के नाम से आज हिंदी-पद-संग्रहों में जितने भी पद मिलते हैं, उनमें से अधिकांश नवें गुरु तेगबहादुर के रचे हुए हैं।

दसवें गुरु श्री गोविंद राय (सिंह) के भी नाम का एक 'ग्रन्थ' है, जिसे उनकी मृत्यु के पश्चात् भाई मानीसिंह ने संकलित किया था। इसमें गुरु गोविंद-सिंह की इन रचनाओं को संगृहीत किया गया है— जापजी, अकाल उस्तत, वचित्तर नाटक, देवी माहात्म्य, ज्ञान परबोध, त्रिया चरित्तर और जफर नामा।

प्रस्तुत ग्रन्थ में हमने केवल गुरु ग्रन्थ साहिब में से ही उक्त छहों गुरुओं की बानियों से पदों व सलोकों का संकलन किया है।

गुरु नानकदेव का जपुजी सबसे अधिक प्रसिद्ध है और यह बड़ी उत्कृष्ट रचना है। इनका 'सो दरु' पद और 'सोहिला' भी बड़े भक्ति-भाव से गाये जाते हैं। गुरु नानक की 'आसा दी वार' भी काफी प्रसिद्ध है।

गुरु अंगद की रची केवल 'वारें' हैं, जो माझु, सोरठि, सूही, रामकली सारंग आदि कई रागों में गाई जाती हैं।

गुरु अमरदास की 'आनन्दु' नामक रचना बड़ी मनोहारिणी और आह्लाद-कारिणी है। उत्सवों पर 'आनन्दु' बड़े चाव से गाया जाता है।

गुरु रामदास के भी अनेक भावपूर्ण पद, वारें और छत हैं। सो पुरखु पद इनका बहुत प्रसिद्ध है।

गुरु अर्जुन की 'सुखमनी' तो लाखो के कठ की मणिमाला बनी हुई है। बडी ऊँची रचना है। इसके अतिरिक्त, गुरु अर्जुन के रचे हजारो भक्ति-भावपूर्ण पद हैं।

गुरु तेगबहादुर के पदो और सलोकों मे ससार की अनित्यता एव वैराग्य की तीव्र अभिव्यंजना हुई है। बडे भाव से सिक्ख इन सलोकों का पाठ मृतक-संस्कार के अवसर पर करते हैं।

'जपुजी' का पाठ प्रातःकाल किया जाता है। इसके बाद प्रायः 'आसा दी वार' को कहते है।

सध्या समय 'रहिरास' के पद गाये जाते हें, और 'कीर्तन सोहिला' का पाठ रात को सोते समय किया जाता है।

गुरु नानकदेव

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१५२६ वि०, वैशाख शु० ३

जन्म स्थान—तलवंडी गॉव

जाति—खत्री

पिता—कालूचद

माता—तृप्ता

भेप—गृहस्थ

निर्वाण-संवत्—१५९५ वि०, आश्विन शु० १०

निर्वाण-स्थान—करतारपुर

नानकदेव का जन्म-स्थान तलवंडी गॉव लाहौर के दक्षिण-पश्चिम लगभग ३० मील दूर है। यह स्थान आजकल नानकाना साहब के नाम से प्रसिद्ध है। सिक्खो का यह बहुत बडा तीर्थ-स्थान माना जाता है।

नानकदेव के पिता कालूचंद तलवडी के पटवारी थे और खेती-बाडी भी करते थे।

गुरु नानक बचपन से ही बडे प्रतिभावान् और शान्तस्वभाव के व्यक्ति थे। पिताने इन्हे पजाबी, हिंदी, सस्कृत और फारसी की शिक्षा दिलाई, और इन्होंने विद्याभ्यास मे असामान्य योग्यता का परिचय दिया। किन्तु इनके चित्त का झुकाव तो एकान्त सेवन, सत्संग और ईश्वर-चिंतन की ओर सदा रहता था।

पिताने इन्हे विवाह-बन्धन मे बॉध दिया। पत्नी का नाम सुलक्खनी था। वह ज्यादातर मायके मे रहती थीं। कालातर मे इन्हे दो पुत्र हुए—श्रीचंद और लक्ष्मीचद। श्रीचद ने सन्यास लेकर सुप्रसिद्ध 'उदासी संप्रदाय' चलाया।

कालू ने अपने पुत्र नानक को एक मोदी के यहॉ नौकरी मे लगाया, पर उसने इनकी लापर्वाही देखकर इन्हें नौकरी से अलग कर दिया। कहते हैं कि

एक दिन यह आटा तोल रहे थे। जब तोलते-तोलते 'तेरह' पर आये तो यह 'तेरा-तेरा' ही करते रह गये, और न जाने कितने सेर आटा ग्राहक को तोलकर दे दिया।

तब खेती-बाड़ी मे लगाया, पर वहाँ भी मन नही लगा। पिता को उलटे सच्ची खेती करने का उपदेश करने लगे—

"इहु तनु धरती बीजु करमा करो,
सलिल आपाउ सारंगपाणी।
मनु किरसाणु हरि रिदै जम्माइ लै,
इउ पावसि पदु निरवाणी ॥–(रागु सिरी)

फिर कुछ बनिज-व्यापार करने के लिए पिताने कहा, जिसका उत्तर यह दिया गया—

"वणजु करहु वणजारि हो वक्खरु लेहु समालि।
तैसी वसतु विसाहीऐ जैसी निबहै नालि॥
अग्गै साहु सुजाणु हैं, लैसी वसतु समालि ॥–(रागु सिरी)

और कहा—"खोटे वणजि वणंजिऐ मनु तनु खोटा होइ।" खोटे बनिज-व्यापार पर उनका चित्त नहीं डोला, वे तो राम-नाम के सच्चे व्यापारी बन चुके थे। पुत्र की यह ऊँचे घाट की वैराग्य-वृत्ति देखकर पिता कालू हैरान थे।

नानकदेव घर से निकल पड़े। देश-विदेश मे भ्रमण करने लगे। साथ में इनका एक पक्का साथी रबाब बाजे पर भजन गानेवाला हो लिया, जिसका नाम मर्दाना था। इनकी यात्रा के कई सुन्दर प्रसंग प्रसिद्ध हैं।

सैयदपुर में, जिसे आजकल अमीनाबाद कहते हैं, ये दोनो गुरु नानक और मर्दाना लालो नामक एक बढ़ई के घर पर जाकर ठहरे। एक शूद्र के घर की रोटी खाते हुए देखकर वहाँ के ब्राह्मण-खत्रियों मे हलचल मच गई। पर गुरु नानक ने उस श्रमजीवी बढ़ई की रोटी को ही श्रेष्ठ ठहराया, और कहा कि, "इस गरीब की रोटी मे दूध-ही-दूध है, क्योंकि यह इसके पसीने की कमाई की रोटी है। तुम्हारे जमींदार मलिक भागो की रोटी मे यह स्वाद और यह पवित्रता कहाँ, वह तो जुल्म की कमाई की रोटी है, जो खून से सनी हुई है।"

कुरुक्षेत्र होते हुए गुरु नानक अपने साथी मर्दाना के साथ हरद्वार पहुँचे। वहाँ देखा कि लोग अपने पितरों को तर्पण कर रहे हैं। नानकदेव भी

वही बैठकर जल उलीचने लगे, मगर पश्चिम की तरफ। पंडितो ने आपत्ति की कि तर्पण पश्चिम की तरफ नही, पूर्व की तरफ किया जाता है। गुरु नानकदेव ने इसपर जवाब दिया—"मै पछाहँ का रहनेवाला हूँ; घर पर एक हरा लहलहा खेत छोड़कर आया हूँ। उसे सीचनेवाला वहाँ कोई आदमी नही। सो मै यही से खेत को सींच रहा हूँ, जिससे वह सूख न जाये। जब तुम लोग लाखों कोस पर रहनेवाले अपने प्यासे पितरों को यहाँ से पानी पहुँचा सकते हो, तो मेरा खेत तो यहाँ से बहुत ही पास है।"

हरद्वार से यह काशी गये। वहाँ से गया और गया से कामरूप व जगन्नाथपुरीतक पूरब के देशो मे घूमते रहे। इस यात्रा मे गुरु नानक मुसलमान फकीरों या कलंदरो की जैसी टोपी पहनते थे, और माथे पर हिन्दू साधुओं की तरह तिलक भी लगाते थे। गले मे माला भी डाल लेते थे। हिन्दू और मुसलमान दोनो की मिली-जुली विचित्र-सी वेश-भूषा रखते थे।

जब ये कामरूप से चले तब, कहते हैं, कलियुग इन्हे डराने व प्रलोभन देने वहाँ पहुँचा। मर्दाना बहुत भयभीत हो गया। गुरु नानक ने उसे धीरज बँधाया और कहा, 'तू कलियुग से डरता है? अरे, किसीसे डरना ही है, तो एक ईश्वर से डरना चाहिए।' और यह शब्द कहा—

"डरि घरु घरि डरु डरि डरु जाइ।
सो डरु केहा जितु डरि डरु पाइ॥
तुधु बिनु दूजी नाही जाइ।
जो किछु वरतै सभ तेरी रजाइ॥
डरीऐ जे डरु होवै होरु।
डरि डरि डरणा मन का सोरु॥"—(रागु गउडी)

पजाब वापस आकर ये दोनो यात्री शेख फरीद से मिलने अजोधन गये, जिसे आजकल पाकपट्टन कहते हैं। शेख फरीद इस पहुँचे हुए फकीर की उपाधि थी। असल नाम शेख ब्रह्म या इब्राहीम था। गुरु नानक और शेख फरीद ने जगल में काफी देरतक अध्यात्म-विषय पर चर्चा की। दोनों महात्माओं ने घटों खूब घनघोर ब्रह्म-रस बरसाया। मर्दाना ने रबाब का सुर छेड़ा और गुरु नानक ने यह शब्द कहा—

"जप तप का बधु बेड़ुला जितु लघहि वहेला।
ना सरवरु ना ऊछलै, ऐसा पंथु सुहेला॥

तेरा एको नामु मंजीठडा रता मेरा चोला सद्‌रंग ढोला ॥
साजन चले पिआरिआ किउ मेला होई।
जे गुण होवहि गंठडीऐ मेलेगा सोई॥
मिलिआ होइ न वीछुड़ै जे मिलिया होई।
आवागउणु निवारिआ है साचा सोई॥
हउमै मारि निवारिआ सीता है चोला।
गुर वचनी फलु पाइआ सह के अंमृत बोला॥
नानकु कहै सहेली हो सहु खरा पिआरा।
हम सह केरीआ दासीआ साचा खसमु हमारा॥–(रागु सूही)

अर्थात्, जप और तप का तू बेडा बनाले, और धार को पार करजा।
न फिर झील है, न प्रवाह; ऐसा सहज पंथ है वह।
प्रभो, तेरा नाम ही वह मजीठ है, जिसमे मै अपना यह चोला रग डालूँ। प्यारे, वही रंग पक्का है।
साजन से तेरी भेंट कैसे होगी फिर?
तेरी गाँठ मे गुण होंगे, तभी तो वह तुझे मिलेगा।
और तुझसे मिलकर एकाकार होकर वह फिर बिछुडेगा नही।
आवागमन से वह सच्चा स्वामी ही छुडा सकता है।
जिसने अहंकार को निकाल बाहर कर दिया, उस सखी ने अपने स्वामी को रिझाने के लिए अपना चोला सी लिया।
गुरु के उपदेश से उसे फल मिल गया अपने स्वामी के साथ अमृत-बोल बोल-बोलकर।
नानक कहता है, हे सहेलियो, वह स्वामी पूरा प्यारा है।
हम सब उसकी दासियाँ हैं, वह हमारा सच्चा स्वामी है।

और फिर इसी मस्ती मे शेख फरीदने कहा—

"दिलहु मुहबति जिन्ह सेई सचिआ।
जिन्ह मनि होरु मुखि होरु सि काढे कचिआ॥
रते इसक खुदाइ रंगि दीदार के।
बिसरिआ जिन्ह नामु ते भुइ भारु थीए॥
आपि लीए लाइ लाइ दर दरवेस से।
तिन्ह धंनु जणेदी माउ आए सफलु से॥

परवदगार अपार अगम वेअत तू ।
जिन्हा पछाता सचु चुंमा पैर मू ॥
तेरी पनह खुदाइ तू बखसंदगी ।
सेख फरीदै खैरु दीजै वंदगी ॥—(रागु आसा)

अर्थात्, जिनकी दिली मुहब्बत है उस परमात्मा के लिए वे ही सच्चे ह। जिनके मन मे कुछ और है, और मुॅ मे कुछ और, उनकी गिनती कच्चो मे की जायेगी।

वे भी सच्चे है, जो खुदा के इश्क मे रॅग गये हैं, और उसके दर्शन के प्यासे हैं।

जिन्होंने उसका नाम भुला दिया, वे भार हैं पृथिवी के।

जो उसके दर के दरवेश हो गये, उनको उस प्रियतम ने अपने दामन से वॉध लिया। धन्य है उन माताओ को जिन्होने कि उन्हे जन्म दिया, उनका ससार में आना सफल है।

हे पालनकर्त्ता, तू अपार है, अगम है और अनत है।

जिन्होंने तुझ सच्चे स्वामी को पहचान लिया, मै उनके पैर चूमता हूॅ।

अय खुदा, मै तेरी शरण चाहता हूॅ, तू बख्शदे मुझे।

शेख फरीद को अपनी सेवा तू खैरात मे देदे।

शेख फरीद से गुरु नानक का इतना अधिक प्रेम हो गया था कि उनसे यह दोबारा भी मिलने गये थे।

गुरु नानक और मर्दाना ने दक्षिण भारत की भी यात्रा की थी। सिंहल द्वीप भी वे पहुॅचे थे। कहा जाता है कि 'प्राण-सगली' ग्रन्थ को उन्होने सिहल में बैठकर रचा था।

इसी प्रकार पश्चिम की यात्रा मे गुरु नानक मक्के तक गये थे। प्रसिद्ध है कि वहाॅ कावे की तरफ पैर फैलाकर यह लेट गये थे। इस वेअदवी को देखकर जब वहाॅ के मुल्ले ने डाटते हुए पूछा कि, "अल्लाह की तरफ तुम क्यों अपने पैर फैलाये हुए हो?" तब इन्होने जवाब मे उससे कहा—"अच्छा भाई, तो जिधर अल्लाह न हो उधर मेरे पैर घुमादो।" पर ऐसी कौन-सी दिशा थी, जहाॅ अल्लाह का वास न हो! मुल्ला हैरान था।

गुरु नानकदेव ने इस प्रकार देश-देशान्तरो मे सत्य और ईश्वर की भक्ति का प्रचार किया और मौज से हरिनाम का अनमोल रस लुटाया। हि-

और मुसलमान दोनों ने उनके ऊँचे व गहरे उपदेशो को प्रेम से सुना और ग्रहण किया।

अपने प्रिय शिष्य लहिणा को, जो बाद को गुरु अगद के नाम से प्रसिद्ध हुए, अपनी गद्दी का उत्तराधिकारी बनाकर गुरु नानकदेव अतिम समय मे एक पेड के नीचे जा बैठे और प्रभु के नाम-स्मरण मे लौलीन हो गये। गुरु अगद चरणो पर गिर पड़े। सब शिष्य और कुटुम्बी विलाप कर रहे थे। गुरु तो आनन्दमग्न थे। हुक्म किया सिक्ख-मंडली को कि 'सोहिला' गाओ। सोहिला समाप्त होने पर 'जपुजी' का जब अतिम सलोक कहा गया, चादर ओढली, और 'वाह गुरु' कहते-कहते चोला छोड दिया, ब्रह्मलीन हो गये।

बानी-परिचय

'महला १' शीर्षक के जितने भी अनेक रागो मे पद 'गुरु ग्रन्थ साहब' मे सगृहीत हैं वे सब गुरु नानकदेव के रचे हुए हैं। ग्रन्थ साहब के आदि मे जो 'जपुजी' है वह इनकी सबसे प्रसिद्ध रचना है। सिक्खो का 'जपुजी' के प्रति वही श्रद्धा-भाव है जो हिन्दुओ का गीता के प्रति, अथवा बौद्धो का 'धम्म पद' के प्रति हैं। 'आसा दी वार' भी इनकी ऊँची रचना है। 'रहिरास' तथा 'सोहिला' नामक पद-संग्रहो में भी गुरु नानक के अनेक पद या पौडियाँ संकलित हैं। फुटकर तो सैकडो ही पद है। 'सोदरु' पद भी इनका बहुत प्रसिद्ध है, और इसी प्रकार 'गगन में थाल' यह आरती भी।

किंतु 'जपुजी' का स्थान इनकी रचनाओ मे सबसे ऊँचा है। इसे हरेक सिक्ख और पंजाब और सिन्ध के अनेक हिन्दू भी कण्ठस्थ कर नित्य प्रातःकाल इसका भक्तिपूर्वक मंगल-पाठ करते हैं। प्रस्तुत ग्रन्थ मे 'जपुजी' को हमने पूरा उद्धृत किया है। अर्थ अधिकतर प्रोफेसर तेजासिहजी की टीका के आधार पर किया हैं, कही-कहीं पर मॅकालीफ महोदय के अंग्रेजी भाषान्तर से भी हमने सहायता ली है। जपुजी के विषय मे प्रोफेसर तेजासिहजी ने नीचे जो लिखा है वह सर्वथा सही है। वस्तुतः यह बहुत ऊँची रचना है --

"जपुजी मे मनुष्य-जीवन का सबसे उच्चकोटि का ज्ञान निहित है। इसमें हमारे जीवन के वास्तविक मनोरथ और इन्हे प्राप्त करने के साधन बतलाये हैं। इसमे, मन को ऐसे साँचे मे ढालने और उसके ऊपर ऐसी अवस्था लाने का ढंग बतलाया है कि जो भी धार्मिक उलझने आ पडे उन्हे हम सुगमता से सुलझा सके।"

जपुजी की रचना सूत्रात्मक-सी है। गुरु नानक ने इसमें बहुत ही थोडे शब्दो मे ऊँच-से-ऊँचे भावों को व्यक्त किया है। प्रो० तेजासिंह के शब्दों मे "बडे विस्तारवाले विचारो को ऐसा कसकर लिखा है कि मानो कूजे मे दरिया बद कर दिया है। पंजाबीभाषा से इतना कठिन काम पहले कभी नही लिया गया था, और न अबतक ही किसीने लिया है।"

दूसरे अनेक शब्द भी बडे ऊँचे और गहरे भावों से भरे हुए हैं। अध्यात्म के विविध अगो का विशद निरूपण चोट करनेवाली भाषा व शैली मे किया गया है। प्रेम और विरह का वर्णन कहीं-कही बडा ही अनूठा मिलता है। नम्रता तो गुरु नानक की प्रसिद्ध ही है। उत्तरी भारत के सत-साहित्य में 'गुरु-बानी' का और उसमे भी गुरु नानकदेव की बानी का एक विशिष्ट स्थान है। अनमोल निधि है हमारी यह। हमे यह पछताव है कि 'गुरु ग्रन्थ साहब' मे से गुरु नानक के जपुजी को छोडकर, बहुत थोडे पद और सलोक स्थान-सकीर्णता के कारण हम ले सके। हैरानी होती है कि इस गुरु-महोदधि मे से किस रत्न को उठाले और किसे छोडदे।

आधार

१ श्री गुरु ग्रन्थ साहिब---सर्व हिंद सिक्ख मिशन, अमृतसर

२ दि सिक्ख रिलिजन (भाग १) मॅकालीफ---ऑक्सफोर्ड

३ श्री जपुजी साहिब (सटीक)---टीकाकार प्रो० तेजासिंह, स्थानिक कमेटी, श्री दरबार साहिब, अमृतसर

जपुजी

१ ॐकार सति नामु करता पुरखु निरभउ
निरवैरु अकाल मूरति अजूनी सैभं गुर प्रसादि ॥ *

आदि सचु जुगादि सचु है भी सचु नानक होसी भी सचु ॥ ·|·

सोचै सोचि न होवई जे सोची लखवार ॥
चुप्पै चुप्प न होवई जे लाइ रहा लिवतार ॥
भुखिआ भुख न उत्तरी जे बंना पुरीआ भार ॥
सहस सिआणपा लख होहि त इक न चल्ले नालि ॥

---

* उस गुरु की कृपा से, जो एक ही है, जिसका नाम सत्य है अर्थात् जो सदा एकरस रहता है, जो सब का सृष्टा है, जो समर्थ पुरुष है, जिसे किसीका भी भय नही, न किसीसे जिसका वैर है, जिसका अस्तित्व काल की पहुँच से परे है, जिसका जन्म नही हैं, जो स्वयभू है ।

यह सिक्ख धर्म का मूल मन्त्र है ।

·|· सब से पहले, जबकि और कुछ भी अस्तित्व मे नही था, केवल सत्यरूप परमात्मा था । जबकि युगो का विभाग होने लगा, तब भी वह सत्य ही था । अब भी वह सत्य है । नानक, आगे भी वह सत्य ही रहेगा ।

१ चितन करने से (सत्य) समझ मे नही आ जाता, भले ही लाखो बार फिर-फिर उसका मै चिन्तन करता रहूँ ।

चुप या मौन रहने से भी मन मे एक-न-एक प्रश्न का उठना रुकता नही है, चाहे मै कितने ही एकाग्र चित्त से ध्यान करूँ ।

किव, सचिआरा होइऐ किव कूड़ै तुट्टै पालि।
हुकमि रजाई चलणा नानक लिखिआ नालि ॥१॥

हुकमी होवनि आकारु, हुकमु न कहिआ जाई॥
हुकमी होवनि जीअ, हुकमि मिलै वडिआई॥
हुकमी उत्तमु नीचु हुकमि लिखि दुख सुख पाईअहि॥
इकना हुकमी बखसीस इकि हुकमी सदा भवाईअहि॥
हुकमै अन्दरि सभु को बाहरि हुकम न कोइ॥
नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ॥ २॥

भूखा रहने से उसके मिलन की भूख शान्त होने की नहीं, भले ही मैं सारे संसार को अपने काबू में करलूँ।

लाखों सयानपन हो, उस सत्यतक एक भी नहीं पहुँचता, तो फिर हम सत्यमय हों तो कैसे? और हमारे उसके बीच में जो दीवार खड़ी है वह कैसे टूटे? परदा कैसे हटे? (एक ही उपाय है) उस आदेश देनेवाले परमेश्वर के आदेश पर चलना, उसकी आज्ञा के अनुसार आचरण करना। और वह आज्ञा हमारे साथ ही लिखी हुई है।

२ उस आज्ञा से सृष्टि के सारे आकार बनते हैं। उस आज्ञा को कहा नहीं जा सकता— अनिर्वचनीय है वह।

उसी आज्ञा से जीवों का सृजन होता है, और उसीसे जीवों को मनुष्य की ऊँची श्रेणी प्राप्त होती है।

उसीसे मनुष्य उत्तम गति पाता है, और उसीसे नीच गति; वह आज्ञा जैसे कर्मों को लिख देती है वैसे ही दुःख और सुख सब पाते हैं।

उस आज्ञा से किसीको मुक्ति का दान मिल जाता है, तो कितने ही अनेक योनियों में चक्कर काटते रहते हैं।

सभी उसकी आज्ञा के अंदर हैं; कोई भी उसकी आज्ञा के बाहर नहीं है।

नानक कहते हैं— इस आज्ञा को यदि कोई अच्छी तरह समझले, तो फिर वह कभी यह नहीं कहेगा कि यह या वह मैंने किया है।

अर्थात्, 'अहंभाव' का उसमें लेश भी नहीं रहेगा।

गावै को ताणु होवै किसै ताणु। गावै को दाति जाणै नीसाणु॥
गावै को गुण वडिआईआ चार। गावै को विदिआ विखमु वीचारु॥
गावै को साजि करे तनु खेह। गावै को जीअ लै फिरि देह॥
गावै को जापै दिसै दूरि। गावै को वेखै हादरा हदूरि॥
कथना कथी न आवै तोटि। कथि कथि कथी कोटी कोटि कोटि॥
देदा दे लैदे थकि पाहि। जुगा जुगतरि खाही खाहि॥
हुकमी हुकमु चलाए राहु। नानक विगसै वेपरवाहु॥ ३॥

साचा साहिबु साचु नाइ भाखिआ भाउ अपारु॥
आखहि मगहि देहि देहि दाति करे दातारु॥

---

३ कोई उसकी शक्ति को गाता है, उसका बखान करता है, जिसे कि उससे शक्ति मिली है,

कोई उसकी दी हुई वस्तुओं को गाता है उसके चिह्न समझकर,

कोई उसके गुणों और उसकी सुन्दर-सुन्दर महिमाओं को गाता है; और कोई कठिन-कठिन विद्याओं के द्वारा उसका गान करता है,

कोई यह समझकर उसका गान करते हैं कि वह देह को बनाकर फिर उसे मिट्टी कर देता है; और कोई-कोई यह समझकर कि वह जीव लेकर फिर दे देता है ।

कोई गाता है कि वह परमात्मा बहुत दूर, परे से परे,प्रतीत होता है; और कोई उसे अपने सामने, बिल्कुल निकट, देखकर गाता है ।

करोडो ने कहा, कहा और फिर कहा, पर उसकी कथनी—उसकी गुण गाथा—कभी समाप्त नहीं हुई ।

वह ऐसा दाता है कि दिये ही जाता है, पर लेनेवाला ही लेते-लेते थक जाता है । युगों युगो से उसका दिया सब खाते ही आये है ।

आज्ञा देनेवाले की आज्ञा यह सबकुछ चला रही है। नानक कहते हैं—वह लापरवाह हमेशा खुद आनन्दमग्न रहता है ।

४ वह स्वामी 'सत्य' है; उसका नाम भी सत्य है । और उसका बखान करने के भाव या ढंग अनगिनती हैं ।

फेरि कि अगै रखीए जितु दिसै दरबारु ॥
मुहौ कि बोलणु बोलीए जितु सुणि धरे पिआरु ॥
अमृत वेला सचु नाउ वडिआई वीचारु ॥
करमी आवै कपड़ा नदरी मोखु दुआरु ॥
नानक एवै जाणीऐ सभु आपे सचिआरु ॥ ४ ॥

थापिआ न जाइ कीता न होइ । आपे आपि निरंजनु सोइ ॥
जिनि सेविआ तिनि पाइआ मानु । नानक गाविऐ गुणी निधानु ॥
गाविऐ सुणिऐ मनि रखी भाउ । दुखु परहरि सुखु घरि लै जाइ ॥
गुरमुखि नादं गुरमुखि वेदं । गुरमुखि रहिआ समाई ॥

लोग निवेदन करते ह और माँगते हैं कि, 'स्वामी, तू हमे देदे ।' और उन्हे वह दाता देता है ।

फिर क्या उसके आगे रखे कि जिससे उसका (मेहर का) दरबार दीख पडे ? और इस मुख से हम क्या बोल बोले कि जिन्हे सुनकर वह स्वामी हमसे प्रेम करे ?

अमृत-वेला मे—मगलमय प्रभात-काल मे, उसके सत्य नाम का, और उसकी महिमा का विचार करो, स्मरण करो ।

कर्मो के अनुसार चोला तो बदल लिया जाता है, किन्तु मोक्ष का द्वार उसकी दया से ही खुलता है ।

नानक कहते हैं—यो जानो तुम कि वह सत्यरूप प्रभु आप ही सब कुछ है ।

५ न वह किसीके द्वारा स्थापित होता है, और न बनाया जाता हे । वह तो स्वयं ही है, और निरंजन है—माया से परे है ।

जिसने उसकी सेवा की है उसे मान-प्रतिष्ठा मिली है । सो हे नानक, उसी गुण-निधान का गुण-गान किया जाये ।

उसके गुण गाने और सुनने चाहिएँ, और भावपूर्वक अपने मन मे रखने चाहिएँ ।

वह प्रभु हमे दुखो से छुडाकर अपने सुखधाम मे ले जायेगा ।

गुरु ईसरु गोरखु बरमा गुरु पारवती माई ॥
जे हउ जाणा आखा नाही कहणा कथनु न जाई ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥५॥

तीरथि नावा जे तिसु भावा विणु भाणे कि नाइ करी ॥
जेती सिरठि उपाई वेखा विणु करमा कि मिलै लई ॥
मति विचि रतन जवाहर माणिक जे इक गुर की सिख सुणी ॥
गुरा इक देहि बुझाई ॥
सभना जीआ का इकु दाता सो मै विसरि न जाई ॥६॥

गुरु की वाणी ही नाद अर्थात् आदि शब्द है, और वही वेद है, कारणकि गुरु के मुख मे परमात्मा स्वय वास करता है।

गुरु ही शिव है, गुरु ही विष्णु (गो अर्थात् पृथिवी के रक्षक) हैं और गुरु ही ब्रह्मा है। पार्वती भी गुरु हैं, और माता लक्ष्मी भी वही हैं।

जो मै उसे जानलूँ तो उसका बखान नहीं कर सकता, क्योंकि वह कथनी से परे है।

किंतु गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नहीं भूलना चाहिए।

६ यदि मै उसे रिझा सकूँ तो तीर्थों मे स्नान करूँ, यदि उसे मै रिझा नही सकता, तो तीर्थों मे नहाने से मेरा क्या बनेगा ?

देखता हूँ, जितनी भी सृष्टि सिरजी गई हैं। इसमें बिना कर्म या साधन किये क्या मिल सकता है, जिसे मै लूँ ? (फिर परमात्मा का मिलना तो बिना जतन के अत्यत कठिन हैं।)

यदि गुरु का उपदेश (ध्यान से) सुनोगे तो तुम्हारी बुद्धि मे से ही हीरे मोती आदि सारे रत्न अर्थात् ऊँचे-से-ऊँचे आध्यात्मिक गुण प्रकट हो पड़ेगे। (तीर्थो मे भटकने की जरूरत नहीं पड़ेगी।)

गुरु ने एक बार मुझे समझा दिया है कि जीव को देनेवाला एक परमात्मा ही है, और मुझे वह कभी नहीं भूलना चाहिए।

जे जुग चारे आरजा होर दसूणी होइ ॥
नवा खंडा विचि जाणीऐ नालि चलै सभु कोइ ॥
जे तिसु नदरि न आवई त वात न पुच्छै केइ ॥
चंगा नाउ रखाइ कै जसु कीरति जगि लेइ ॥
कीटा अंदरि कीटु करि दोसी दोसु धरे ॥
नानक निरगुणि गुणु करे गुणवंतिआ गुणु दे ॥
तेहा कोइ न सुझई जि तिसु गुणु कोइ करे ॥७॥

सुणिऐ सिद्ध पीर सुरिनाथ । सुणिऐ धरति धवल आकास ॥
सुणिऐ दीप लोअ पाताल । सुणिऐ पोहि न सकै कालु ॥
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥८॥

---

७ मनुष्य यदि चारों युग जीये, या इससे भी दसगुनी उसकी आयु हो जाये, और नवों खंडों में वह विख्यात हो जाये, सब लोग उसके साथ चलने लगें,

दुनियाभर के लोग उसे अच्छा कहें, और उसके यश का बखान करें, पर यदि परमात्मा ने उसपर अपनी (कृपा-) दृष्टि नहीं की, तो कोई उसकी बात भी पूछनेवाला नहीं—उसकी कुछ भी कीमत नहीं।

वह तब कीट से भी तुच्छ कीट माना जायेगा। दोषी भी उसपर दोषारोप करेंगे।

नानक कहते हैं—वह निर्गुणी को भी गुणी कर देता है, और जो गुणी है उसे और भी अधिक गुण बख्श देता है।

पर ऐसा कोई भी दृष्टि में नहीं आता, जो परमात्मा को गुण दे सके।

८ गुरु का उपदेश सुनने से सिद्धों, पीरों और बड़े-बड़े नाथों की असलीयत का पता लग जाता है। (अथवा, असली सिद्धों, पीरों और बड़े-बड़े नाथों की अवस्था को वह प्राप्त कर लेता है।)

गुरु का उपदेश सुनने से पृथिवी का, उसे टिकाये रखनेवाले (कल्पित) बैल का, और आकाश का सही-सही ज्ञान हो जाता है।

सुणिऐ ईसरु बरमा इंदु । सुणिऐ मुखि सालाहण मंदु ॥
सुणिऐ जोग-जुगति तनि भेद । सुणिऐ सासत सिमृति वेद ॥
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥९॥

सुणिऐ सतु संतोखु गिआनु । सुणिऐ अठिसठि का इसनानु ॥
सुणिऐ पड़ि पड़ि पावहि मानु । सुणिऐ लागै सहजि धिआनु ॥
नानक भगता सदा विगासु । सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥१०॥

[विशेप—'जपुजी' की १६वी पौडी मे इस 'धवल' अर्थात् बैल का स्पष्टीकरण किया गया है ।]

गुरु की शिक्षा सुनने से द्वीपो, लोकों और पातालों का ठीक-ठीक पता लग जाता है ।

और तब काल की दाल नही गल पाती ।

नानक कहते हैं—(गुरु का उपदेश सुननेवाले) भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं । (गुरु का उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं ।

९ गुरु का उपदेश सुनने से शिव, ब्रह्मा और इन्द्र की दशा का असली पता लग जाता है ।

और मन्दबुद्धि की भी भारी प्रशसा होने लगती है ।

उसे सुनने से योग की युक्ति या मार्ग, और घट के रहस्य खुल जाते है ।

गुरु का उपदेश सुनने से शास्त्रो, स्मृतियो और वेदो की वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है ।

नानक कहते हैं—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं । (गुरु-उपदेश) सुनने से उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं ।

१० गुरु का उपदेश सुनने से सत्य, सतोप और दिव्यज्ञान प्राप्त होता है ।

उसे सुनना अड़सठ तीर्थों मे स्नान करने के समान है ।

गुरु का उपदेश सुनने से ज्यो-ज्यो उसे मनुष्य पढता है, त्यों-त्यों वह मान-प्रतिष्ठा पाता है ।

सुणिए सरा गुणा के गाह। सुणिऐ सेख पीर पातिसाह ॥
सुणिऐ अंधे पावहि राहु। सुणिऐ हाथ होवै असगाहु ॥
नानक भगता सदा विगासु। सुणिऐ दूख पाप का नासु ॥११॥

मंने की गति कही न जाइ। जे को कहै पिछै पछुताइ ॥
कागदि कलम न लिखणहारु। मने का वहि करनि विचारु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ। जे को मनि जाणै मनि कोइ ॥१२॥

उसे सुनने से चित्त का निरोध होकर उसका सहज ध्यान लग जाता है।

नानक कहते हैं—गुरु का उपदेश सुननेवाले भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

११ गुरु का उपदेश सुनने से मनुष्य गुणों के सागर की थाह पा लेता है—गहन-से-गहन गुणों को दृढतापूर्वक ग्रहण कर लेता है।

उसे सुनने से मनुष्य शेख, पीर और बादशाह बन जाते हैं। अथवा यह जान जाते हैं कि धार्मिक तथा सांसारिक दोनों क्षेत्रों का नेता एकसाथ कैसे बना जाता है।

गुरु का उपदेश सुनने से अन्धे को भी रास्ता सूझ जाता है।
उसे सुनने से वह अथाह की भी थाह पा जाता है।

नानक कहते हैं—ऐसे भक्तजन सदा प्रफुल्लित रहते हैं। उनके सारे दुःख और पाप नष्ट हो जाते हैं।

१२ जो उसकी आज्ञा पर चलता है उसकी (पहुँची हुई) अवस्था का वर्णन नहीं हो सकता; यदि कोई वर्णन करने का यत्न करता है, तो उसे पीछे पछताना या लज्जित होना पड़ता है।

लिखने के लिए न कागज है, न कलम, और न लिखनेवाला ही उस अवस्था का, जिसे कि उसकी आज्ञा को माननेवाला प्राप्त कर लेता है।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए है गुरु का नाम—
जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

मने सुरति होवै मनि बुधि । मंनि सगल भवण की सुधि ॥
मने मुहि चोटा ना खाइ । मने जम कै साथि न जाइ ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१३॥

मंने मारगि ठाक न पाइ । मने पति सिउ परगटु जाइ ॥
मने मगु न चलै पंथु । मने धरम सेती सनबधु ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जो को मंनि जाणै मनि कोइ ॥१४॥

मने पावहि मोख दुआरु । मनि परवारै साधारु ॥
मंने तरै तारै गुरु सिख । मंनि नानक भवहि न भिख ॥
ऐसा नामु निरंजनु होइ । जे को मनि जाणै मनि कोइ ॥१५॥

---

१३ उसकी आज्ञा पर चलने से ऊँची (आध्यात्मिक) वृत्ति जाग्रत हो उठती है, अथवा पराबुद्धि विकसित हो जाती है ।

उससे सारे लोकों का ज्ञान हो जाता है ।

उसे मानने से मनुष्य को दण्ड नही मिलता ; और वह यम के मार्ग पर नही जाता—काल की पकड से छूट जाता है ।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम,—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले ।

१४ उसकी आज्ञा पर चलने से रास्ते मे कोई रोक-टोक नही रहती ; मनुष्य फिर मान-प्रतिष्ठा के साथ (सन्मार्ग पर) चलता है ।

उसे जो मानता है वह मामूली रास्ते पर नही, बल्कि राजपथ पर चलता है ।

[विशेष—'मगुन' भी एक पाठ है । तब यह अर्थ किया गया है कि वह भगवत्प्रेम मे मग्न होकर आगे बढ जाता है ।]

उसका धर्म के साथ (दृढ) सबध हो जाता है ।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम,—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले ।

१५ उसकी आज्ञा मान लेने से मनुष्य मोक्ष के द्वार पर पहुँच जाता है ।

वह अपने परिवार का भी उद्धार कर लेता है ।

पंच परवाण पंच परधानु। पंचे पावहि दरगहि मानु ॥
पचे सोहहि दरि राजानु। पंचा का गुरु इकु धिआनु ॥
जे को कहै करै वीचारु। करते कै करणै नाही सुमारु॥
धौलु धरमु दइआ का पूत। संतोखु थापि रखिआ जिनि सूत ॥
जे को बुझै होवै सचिआरु। धवलै उपरि केता भारु ॥
धरती होरु परै होरु होरु। तिसते भारु तलै कवणु जोरु ॥
जीअ जाति रगा के नाव। सभना लिखिआ वुड़ी कलाम ॥
एहु लेखा लिखि जाणै कोइ। लेखा लिखिआ केता होइ ॥
केता ताणु सुआलिहु रूपु। केती दति जाणै कौणु कूतु ॥

उसकी आज्ञा पर चलने से वह स्वयं तर जाता है, और जिसे वैसा उपदेश देता है वह भी तर जाता है।

जो उसकी आज्ञा को मानता है, वह भीख नहीं माँगता फिरता।

ऐसा पवित्र और अकथ है उसके लिए गुरु का नाम—

जो उसकी आज्ञा को हृदय से मानने की रीति जानले।

१६ (ऐसे गुरु-उपदेश पाये हुए) पंच ही प्रमाणरूप हैं, अथवा, परमात्मा की दृष्टि मे 'स्वीकृत' हैं, और वे ही सबमे प्रधान हैं, प्रतिष्ठित हैं। वे ही उस प्रभु के दरबार मे मान पाते हैं।

[विशेष–ग्रन्थ साहब की टीका मे भाई चंदासिह ने 'पच' का अर्थ इस प्रकार किया है—(१) जो ईश्वर की मरजी पर चलते हैं, (२) जो उसे सत्यरूप मानते हैं, (३) जो उसका गुण-गान करते हैं, (४) जो उसका नाम सुनते हैं, और (५) जो उसकी आज्ञा का पालन करते हैं।]

पचों से ही राजा-महाराजाओं के दरबार शोभायमान होते हैं।

इनका गुरु केवल परमात्मा का ध्यान होता है।

यदि कोई मनुष्य कोई बात कहे, तो वे उसपर तात्त्विक विचार करते हैं, उसे बिना विचार किये तुरंत मान नही लेते।

सिरजनहार के कार्यो की कोई गिनती नहीं।

कीता पसाउ एको कवाउ । तिसते होए लख दरीआउ ॥
कुदरति कवरण कहा वीचार । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरकार ॥१६॥

असंख जप असंख भाउ । असंख पूजा असंख तप ताउ ॥
असंख गरंथ मुखि वेदपाठ । असंख जोग मनि रहहि उदास ॥

(जो यह विश्वास किया जाता है कि) नन्दी (शिवजी का बैल) पृथिवी को उठाये हुए है वह नन्दी वस्तुतः धर्म है, प्रभु की कृपा का रचा हुआ 'नियम' है, जिसने सारे ब्रह्माड को धैर्य के सहारे थाम रखा है।

जिसने इसको समझ लिया, वह सत्य का साक्षात्कार कर सकता है।

नन्दी पर कितना बडा भार लदा होगा!

इस पृथिवी से परे पृथिवी है-—उससे भी परे और उससे भी परे पृथिवी है।

यह सारा भार यदि उस नन्दी के ऊपर रखा हुआ है, तो वह नन्दी फिर किसके आधार पर स्थित है?

जीवों की अनेक जातियो और अनेक रगो के नामो को एक चलती हुई कलम ने लिखा है—अर्थात् लेखे-हिसाब का प्रवाह अनन्त है।

इनका कौन लेखा कर सकता है? और वह कितना बडा लेखा बनेगा!

उसकी कितनी बडी शक्ति है, और कैसा सलौना रूप है! उसकी बख्शीसो का कोई पार! कौन कूत सकता है उन्हे?

एक ही शब्द से, एक ही आज्ञा से सृष्टि को विस्तृत कर दिया, उसकी आज्ञा से सृष्टि की लाखो नदियाँ वह निकली।

मेरी क्या बिसात जो मै तेरा बखान कर सकूँ?

मै तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

१७ असंख्य प्रकार के तेरे मत्र-जप है, और असख्य ही भक्ति-भाव के मार्ग।
असख्य प्रकार की तेरी पूजा है, और असख्य तप और साधन।

असख भगत गुण गिआन 'वीचार। असंख सती असख दातार ॥
असंख सूर मुह भख सार। असंख मोनि लिव लाइ तार ॥
कुदरति कवण कहा वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भलीकार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१७॥

असंख मूरख अंध घोर। असंख चोर हरामखोर ॥
असंख अमर करि जाहि जोर। असंख गलवढ हतिआं कमाहि ॥
असंख पापी पाप करि जाहि। असंख कूड़िआर कूड़े फिराहि ॥
असख मलेछ मलु भखि खाहि। असख निंदक सिरि करहि भारु ॥

असख्य लोग वेदों और अन्य पवित्र ग्रन्थों का मुख से पाठ करते हैं। और असख्य योगी मन मे जगत् की ओर से उदासीन रहते है।

असंख्य भक्तजन तेरे गुणों का और तत्त्व-दर्शन का चिंतन करते हैं।

ऐसे ही, सच्चे और दानी असख्य लोग हैं। और असंख्य शूरवीर तलवार की चोटें सामने खाते हैं।

असख्य साधक मौन व्रत धारणकर तुझसे अपनी लौ लगाते हैं।

मेरी क्या बिसात, जो मै तेरा बखान कर सकूँ ?

मै तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार ! तू सदा सलामत रहता है।

१८ असख्य लोग मूर्ख और घोर अन्धे है,
असख्य चोर और पराया धन हरण करनेवाले है,
असख्य लोग ऐसे है, जो बलात्कारपूर्वक राज्य स्थापित कर लेते हैं,
और गला काटनेवाले और हत्यारे भी असख्य हैं,
असख्य पापी हैं, जिन्हे पाप करते हुए गर्व होता है,
असख्य असत्य बोलनेवाले असत्य मे ही पडे-पडे चक्कर काटते हैं;
असख्य गदे लोग गदी कमाई से ही अपने पेट भरते है,
और असख्य निन्दक पराई निन्दा करते और सिर पर पापो की गठरी लादते है।

नानकु नीचु कहै वीचारु। वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार। तू सदा सलामति निरंकार ॥१८॥

असंख नाव असंख थाव।
अगंम अगंम असंख लोअ। असंख कहहि सिरि भारु होइ ॥
अखरी नामु अखरी सालाह। अखरी गिआनु गीत गुण गाह ॥
अखरी लिखणु बोलणु बाणि। अखरा सिरि संजोगु वखाणि ॥
जिनि एहि लिखे तिस सिरि नाहि। जिव फुरमाए तिव तिव पाहि ॥
जेता कीता तेता नाउ। विणु नावै नाही को थाउ ॥

तुच्छ नानक कहता है, मै तो तुझपर एक बार भी निछावर होने-लायक नही।

अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे। हे निराकार! तू सदा सलामत रहता है।

१९ असंख्य तेरे नाम हैं, और असंख्य तेरे धाम,
तेरे अगम्य लोक भी असंख्य, असंख्य है,
असंख्य कहते हुए भी सिर पर जैसे भार पड़ता है।
[अथवा, अपनी सारी बुद्धि समेटकर तेरा नाम जपनेवाले असंख्य हैं।
अथवा, जो तेरा वर्णन करने का यत्न करते हें, वे मानों सिर पर पाप ढोते हैं; यह उनका अहंकार ही है, जो वर्णनातीत के वर्णन करने का दम भरते हैं।]

अक्षरो के सहारे हम तेरा नाम लेते हैं, और अक्षरो के ही सहारे तेरी स्तुति करते है,

अक्षरों के द्वारा हम तत्त्व-विचार करते हैं, और अक्षरों के द्वारा ही तेरे गुण गाते हैं,

अक्षरो से हम वाणी को लिखते और बोलते हैं; अक्षरो के सहारे से ही तेरे साथ हमारा जो सबन्ध है उसका वर्णन करते हैं।

भाग्य पर जो अक्षर लिख दिये गये हैं उन्हीसे भाग्य का हिसाब लगाया जाता है।

कुदरति कवरण कहा वीचारु । वारिआ न जावा एक वार ॥
जो तुधु भावै साई भली कार । तू सदा सलामति निरंकार ॥ १६ ॥

भरीऐ हथु पैरु तनु देह । पाणी धोतै उतरसु खेह ॥
मूत पलीती कपडु होइ । दे साबुणु लईऐ ओहु धोइ ॥
भरीऐ मति पापा कै संगि । ओहु धोपै नावै कै रंगि ॥
पुंनी पापी आखणु नाहि । करि करि करणा लिखि लै जाहु ॥
आपे बीजि आपे ही खाहु । नानक हुकमी आवहु जाहु ॥२०॥

किन्तु जिसने उन अक्षरो को लिखा है, वह उनकी सीमा से परे है।

तू जैसी आज्ञा देता है वैसा हम पाते हैं।
जैसी तेरी सृष्टि की रचना, वैसे ही तेरा नाम भी महान्।
ऐसी कोई जगह नही, जहाँ कि तेरा नाम न हो।
मेरी क्या बिसात, जो मै तेरा बखान कर सकूँ।

मै तो तुझपर एक बार भी निछावर होनेलायक नहीं। अच्छा-भला वही है, जो तुझे भावे । हे निराकार। तू सदा सलामत रहता है।

२० जब हाथ, पैर और शरीर के दूसरे अग धूल से सन जाते है, तो वे पानी से धोने से साफ हो जाते हैं।

मूत्र से जब कपडे गदे हो जाते है तो साबुन लगाकर उन्हे धो लेते है।

ऐसे ही यदि हमारा मन पापो से मलिन हो जाये, तो वह नाम के प्रेम-भाव से स्वच्छ हो सकता है।

केवल कहदेने से मनुष्य न पुण्यात्मा बन जाते हैं, न पापी,

किंतु वे तुम्हारे कर्म हैं, जिन्हे तुम अपने साथ लिखते जाते हो तुम्हारे कर्म तुम्हारे साथ-साथ जाते हैं।

आप ही तुम जैसा बोते हो वैसा खाते हो।

नानक कहते हैं---यह तुम्हारा आवागमन उसकी आज्ञा से ही हो रहा है।

तीरथु तपु दइआ दतु दातु । जे को पावै तिल का मानु ॥
सुणिआ मंनिआ मनि कीता भाउ । अंतरगति तीरथि मनि नाउ ॥
सभि गुण तेरे मै नाही कोइ । विणु गुण कीते भगति न होइ ॥
सुअसति आथि बाणी बरमाउ । सति सुहाणु सदा मनि चाउ ॥
कवणु सु वेला वखतु कवणु, कवणु थिति कवणु वारु ॥
कवणि सि रुती माहु कवणु, जितु होआ आकारु ॥
वेल न पाईआ पंडती जि होवै लेखु पुराणु ॥
वखतु न पाओ कादीआ जि लिखनि लेखु कुराणु ॥
थिति वारु ना जोगी जाणै रुति माहु न कोई ॥
जा करता सिरठी कउ साजे आपे जाणै सोई ॥

---

२१ तीर्थाटन, तप, दया और पुण्य-दान जो करता है, उसे भले ही तिलभर मान मिल जाये,——

[अथवा, प्रभु के नाम का एक कण भी किसीको मिल जाये तो मानो उसने तीर्थाटन, तप, दया, और पुण्य-दान कर लिये ।]

किंतु जो प्रभु का नाम सुनता है, उसपर चलता है, और अंतःकरण से उसकी भक्ति करता है, उसने सारे तीर्थों का स्नान कर लिया, और अपने सब पापों को धो डाला ।

जितने भी गुण हैं सब तेरे ही हैं, मुझमें एक भी गुण नहीं ।

आचरित गुण के बिना भक्ति हो नहीं सकती ।

धन्य है उसे जो स्वतः माया है, वाणी है और ब्रह्म है ।

वह सत्य है, सुंदर है, और अंतर में सदा आनन्द के रूप में रहता है ।

वह कौन-सा समय था, जब सृष्टि रची गई ? वह क्या तिथि थी, और कौन-सा दिन ? वह क्या ऋतु थी, और कौन-सा मास ?

पंडितों को उसका पता नहीं लगा, यदि पता होता, तो वे उसका अवश्य पुराणों में उल्लेख करते ।

काजियों को भी उस वक्त का इल्म नहीं था, यदि उन्हें इल्म होता, तो कुरान में उन्होंने उसे दर्ज किया होता ।

किवकरि आखा किव सालाही किउ वरनी किव जाणा ॥
नानक आखणि सभु को आखै इकदू इकु सिआणा ॥
वड्डा साहिबु वड्डी नाई कीता जाका होवै ॥
नानक जे को आपौ जाणै अगै गइआ न सोहै ॥२१॥

पाताला पाताल लख आगासा आगास ।
ओडक ओड़क भालि थके वेद कहनि इक वात ।
सहस अठारह कहनि कतेबा असुलू इकु धातु ॥

और न किसी योगी को उस तिथि, उस वार और उस ऋतु और उस मास का ज्ञान है ।

उस करतार को ही उस समय का पता है कि उसने सृष्टि की रचना कब की थी ।

मै उसे क्या कहकर पुकारूँ, और कैसे उसकी स्तुति करूँ । उसका बखान कैसे करूँ, और कैसे उसे जानूँ ?

नानक । एक-से-एक बुद्धिमान उसके विषय मे अपनी-अपनी समझ से कहते हैं कि वह 'कैसा है' और 'कैसा नहीं ।'

पर (समझ मे तो इतना ही आया है कि) वह स्वामी महान् है, उसका नाम भी महान् है ; उसीका किया-धरा सब कुछ होता है ; और कोई कुछ नही कर सकता ।

नानक । जो यह अभिमान करता है कि यह मैने किया है, वह स्वामी के लोक मे मान नही पायेगा ।

२२ लाखों ही पाताल है और उनके भी पाताल ह उसकी रचना मे ,

इसी प्रकार लाखों आकाश हैं और उनके भी आगे आकाश है ।

उसका अत खोजते-खोजते वेद थक गये—केवल एक ही बात वेदो ने कही (कि उसकी रचना का अत नही ।)

मुसल्मानों की किताबो ने कहा है कि अठारह हजार आलम है उस की रचना मे ।

लेखा होइ त लिखीऐ लेखै होइ विणासु ॥
नानक वडा आखीऐ आपे जाणै आपु ।२२॥

सालाही सालाहि एती सुरति न पाईआ ।
नदीआ अतै वाह पवहि समुंदि न जाणीअहि ॥
समुंद साह सुलतान गिरहा सेती मालु धनु ॥
कीड़ी तुलि न होवनी जे तिसु मनहु न वीसरहि ।।२३॥

अंतु न सिफती कहणि न अंतु । अंतु न करणै देणि न अंतु ॥
अंतु न वेखणि सुणणि न अंतु । अंतु न जापै किआ मनि मंतु ॥

पर असल मे मतलब एक ही है दोनो का—(याने उसकी रचना का अंत नही ।)

गिनती हो तो उसे लिखा जाये, लिखनेवाले का ही अंत हो जाता है, पर लेखे का अत नही मिलता ।

नानक कहते हैं—उसे महान् ही कहना चाहिए, वह कितना महान् है इसे वह खुद ही जानता है ।

२३ स्तुति करनेवाले उसकी स्तुति करते हैं, पर उसकी महिमा का पता उन्हे भी नही ।

जैसे, नदियाँ और नाले समुद्र में जाकर गिरते हैं, पर उसकी पूरी गंभीरता और विशालता का ज्ञान उन्हे नही होता ।

जिन राजाओ और सम्राटो के पास सपत्ति के समुद्र और धन के पर्वत हों, वे उस कीड़ी के भी समान नही, जो अपने हृदय से परमात्मा को नहीं बिसारती ।

२४ अत नही परमात्मा के गुणो का, या स्तुति का, और न उसके गुणों के वर्णन का अंत है ।

उसकी करणी या रचना का भी अंत नही, और न उसके दान का कोई अत है ।

उसकी रचना मे जो कुछ देखने मे और जो कुछ सुनने मे आता है उस सबका भी कोई अत नही ।

अंतु न जापै कीता आकारु। अंतु न जापै पारावारु॥
अंत कारणि केते बिललाहि। ताके अंत न पाए जाहि॥
एहु अंतु न जाणै कोइ। बहुता कहीऐ बहुता होइ॥
वड्डा साहिबु ऊचा थाउ। ऊचे उपरि ऊचा नाउ॥
एवडु ऊचा होवै कोइ। तिसु ऊचे कउ जाणै सोइ॥
जेवडु आपि जाणै आपि आपि। नानक नदरी करमी दाति॥२४॥

बहुता करमु लिखिआ न जाइ॥
वड्डा दाता तिलु न तमाइ। केते मंगहि जोध अपार॥

इसका भी अंत नहीं कि उसके मन मे इस सारी रचना के रचने का क्या रहस्य है।

न तो उसकी सृष्टि का अंत जाना जा सकता है, और न उसके इस पार का और न उस पार का अंत किसीको मिल सका है।

उसका अंत पाने के लिए कितने ही विलखते हैं, पर पा नहीं सकते।

उसे कोई नहीं जानता, जितना कि उसके विषय मे कहा जाता है उससे भी कहीं अधिक कहने को रह जाता है।

वह स्वामी महान् है, उसका पद ऊँचा है, और उस प्रभु का नाम ऊँचे से भी ऊँचा है

[विशेष— 'नाउ' का अर्थ 'प्रकाश' भी किया गया है।]

हाँ, यदि कोई उसके जितना ऊँचा है तभी वह उस ऊँचे और महान् स्वामी को समझ सकता है।

वह आपही अपने आपको जानता है कि वह कितना बडा है, उसे और कोई नहीं जानता।

नानक, जो कुछ भी किसीको मिलता है, वह उसकी बख्शीस है और उसकी कृपा से वह मिलती है।

२५ उसकी मेहर और बख्शीस का हिसाब लिखा नहीं जा सकता।
वह बहुत बडा दाता है, उसे तिलभर भी लोभ नहीं।
कितने ही, बल्कि अपार योद्धा उस दाता से माँगते रहते हैं।

केतिआ गणत नही वीचारु। केते खपि तुटहि वेकार ॥
केते लै लै मुकरु पाहि। केते मूरख खाही खाहि ॥
केतिआ दूख भूख सद मार। एहि भि दाति तेरी दातार ॥
वदिखलासी भाणै होइ। होरु आखि न सकै कोइ ॥
जे को खाइकु आखणि पाइ। ओहु जाणै जेतीआ मुहि खाइ ॥
आपे जाणै आपे देइ। आखहि सिभि केई केइ ॥
जिसनो बखसे सिफति सालाह। नानक पातिसाही पातिसाह ॥२५॥

अमुल गुण अमुल वापार। अमुल वापारीए अमुल भडार ॥
अमुल आवहि अमुल लै जाहि। अमुल भाइ अमुला समाहि ॥

और भी कितने ही, जिनकी गिनती का अनुमान भी नहीं लगा सकते।

कितने ही विकारों से भरे मनुष्य विषयों को भोग-भोगकर शरीर को क्षीण कर देते हैं।

कितने ही (कृतघ्न) ले-लेकर भी इन्कार करते हैं (कि हमें परमेश्वर ने कुछ दिया ही नहीं।)

कितने ही मूढ मनुष्य ऐसे हैं, जो केवल पेट भरते रहते हैं।

और कितने ही दुःख और भूख की मार से मरा करते हैं—

दाता! यह भी तेरी बख्शीस है।

बंधनों से छुटकारा तेरी मरजी से ही मिलता है, उसमें कोई दखल नहीं दे सकता।

कोई मूर्ख यदि उसमें दखल देने का यत्न करे तो वही जानेगा, कि उसे क्या सजा भोगनी पड़ेगी।

वह खुद ही हमारी आवश्यकताओं को जानता है कि किसे क्या-क्या देना है और वही-वही वह देता है।

पर विरले ही (जो कृतज्ञ होते हैं) ऐसा मानते हैं।

नानक! वह बादशाहों का भी बादशाह है, जिसे कि उसने उसके गुण गाने और कृतज्ञता प्रकट करने की बख्शीस दी है।

२६ अनमोल हैं तेरे गुण और अनमोल है तेरा लेन-देन;

अमुलु धरमु अमुलु दीबाणु । अमुलु तुलु अमुलु परवाणु ॥
अमुलु बखसीस अमुलु नीसाणु । अमुलु करमु अमुलु फुरमाणु ॥
अमुलो अमुलु आखिआ न जाइ । आखि आखि रहे लिव लाइ ॥
आखहि वेद पाठ पुराण । आखहि पड़े करहि वखिआण ॥
आखहि बरमे आखहि इन्द । आखहि गोपी तै गोविन्द ॥
आखहि ईसर आखहि सिद्ध । आखहि केते कीते बुद्ध ॥
आखहि दानव आखहि देव । आखहि सुरि नर मुनि जन सेव ॥
केते आखहि आखणि पाहि । केते कहि कहि उठि उठि जाहि ॥
एते कीते होरि करेहि । ता आखि न सकहि केई केइ ॥

अनमोल हैं तेरे व्यवहार और अनमोल तेरे गुणों के भंडार ।
अनमोल हैं वे, जो उन्हें विसाहने आते और विसाहकर ले जाते हैं ।
अनमोल है तेरा प्रेम, और अनमोल हैं वे, जो उसमें डूब गये हैं ।
अनमोल है तेरा न्याय, और अनमोल ही तेरा न्यायालय ।
अनमोल है तेरी तोल, और अनमोल तेरा पैमाना ।
अनमोल हैं तेरी बख्शीशें, और अनमोल तेरी परवानगी का निशाना ।
अनमोल है तेरी कृपा, और अनमोल हैं तेरी आज्ञाएँ ।
अनमोल-ही-अनमोल है तू, कुछ बखान नहीं करते बनता ।
बखान कर-करके भी अंत में चुप हो जाना पड़ा ।
वेदों और पुराणों का पाठ करनेवाले तेरा बखान करते हैं,
और बड़े-बड़े पंडित उनकी व्याख्या करके समझाते हैं ।
ब्रह्मा तेरा बखान करता है, और इन्द्र भी ,
गोपियाँ और कृष्ण, और शिव तेरा वर्णन करते हैं ,
इसी प्रकार गोरखनाथ और सिद्ध भी—
और जिन अनेक बुद्धों को तूने रचा वे भी तुझे बखानते हैं ।
दैत्य और देवता भी तथा सुर, नर, मुनि और भक्तजन तेरे विषय में कहते हैं ।
अनेक कह रहे हैं, और अनेक कहने का यत्न करते हैं—

जेवडु भावे तेवडु होइ। नानक जाणै साचा सोइ ॥
जे को आखै बोलु विगाडु। ता लिखीऐ सिरि गावारा गावारु ॥२६॥

सो दरु केहा सो घरु केहा। जितु बहि सरब समाले ॥
वाजे नाद अनेक असंखा केते वावणहारे ॥
केते राग परी सिउ कहिअनि केते गावणहारे ॥
गावहि तुहनो पउणु पाणी बैसंतरु गावै राजा धरमु दुआरे ॥
गावहि चितुगुपतु लिखि जाणहि लिखि लिखि धरमु वीचारे ॥
गावहि ईसरु बरमा देवी सोहनि सदा सवारे ॥
गावहि इन्द इन्दासणि बैठे देवतिआ दरि नाले ॥

और कितने ही कहते-कहते उठजाते हैं।

जितने तूने रचे है, इतने ही यदि तू और रचडाले, तब भी कोई तेरा यथार्थ वर्णन नही कर सकेगा।

जितना बडा तू चाहे, उतना ही बडा हो सकता है।

नानक! वह स्वय सत्यरूप ही जानता है कि वह कितना बडा है।

किंतु यदि कोई बकवादी कहने लगे कि तू इतना बडा है, तो उसे गॅवार से भी गॅवार लेखना चाहिए।

२७ तेरा वह कैसा द्वार होगा, और कैसा वह घर होगा, जहॉ तू बैठा-बैठा सारी सृष्टि की सार-सॅभाल रखता है?

वहॉ अगणित और अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। और उन्हें बजानेवाले भी कितने होंगे वहॉ!

कितने ही राग-रागिनियों के गान कितने ही गायक वहॉ गाये जा रहे हैं!

तेरा गुण-गान पवन, जल और अग्नि करते है;

धर्मराज तेरे द्वार पर बैठा वहॉ गा रहा है।

और चित्रगुप्त—मनुष्यो के कर्मो का लेखा रखनेवाला—तेरा गान गाता है।

शिव, ब्रह्मा और शक्ति, जिन्हे तूने सॅवारा है, तेरा यश गाते हैं।

गावहि सिद्ध समाधी अन्दरि गावनि साध विचारे॥
गावहि जती सती संतोखी गावहि वीर करारे॥
गावनि पंडित पड़नि रखीसर जुगु जुगु वेदा नाले॥
गावहि मोहणीआ मनु मोहनि सुरगा मच्छ पइआले॥
गावहि रतन उपाए तेरे अठसठि तीरथ नाले॥
गावहि जोध महाबल सूरा गावहि खाणी चारे॥
गावहि खंड मंडल वरभंडा करि करि रखे धारे॥
सेई तुधुनो गावहि जो तुधु भावनि रते तेरे भगत रसाले॥
होरि केते गावहि से मै चिति न आवनि नानकु किआ वीचारे॥
सोई सोई सदा सचु साहिबु साचा साची नाई॥
है भी होसी जाइ न जासी रचना जिनि रचाई॥

सिंहासन पर बैठा हुआ इन्द्र भी, देवगणों के साथ, तेरे गुण गा रहा है।

सिद्धजन समाधि लगाये हुए, और साधुजन ध्यान में मग्न तेरा ही गुणानुवाद करते हैं।

यति, सत्य-साधक, और संतोषी तथा भारी-भारी शूरवीर तेरी कीर्ति का गान करते हैं।

वेदपाठी बड़े-बड़े पंडित और ऋषि युग-युग से तेरा गुण-गान करते आ रहे हैं।

मोहिनी सुन्दर स्त्रियाँ स्वर्गों की, मध्यलोकों की और पातालों की, तेरे गुण गाती हैं।

तूने जो रत्न उत्पन्न किये हैं वे, और अड़सठ तीर्थ तेरा गायन करते हैं।

बड़े-बड़े बलवान योद्धा तेरी महिमा गा रहे हैं;

और चारों ही प्रकार के जीव—अंडज, पिंज, स्वेदज और उद्भिज।

समस्त ब्रह्माण्ड, उसके खंड और लोक सभी गा रहे हैं, जिन्हें कि रच-कर तूने सहारा दे रखा है।

रंगी रंगी भाती करि करि जिनसी माइआ जिनि उपाई ॥
करि करि वेखै कीता आपणा जिव तिस दी वडिआई ॥
जो तिसु भावै सोई करसी हुकमु न करणा जाई ॥
सो पातिसाहु साहा पातिसाहिबु नानक रहणु रजाई ॥२७॥

मुंदा संतोखु सरमु पतु झोली धिआन की करहि बिभूति ॥
खिंथा कालु कुआरी काइआ जुगति डंडा परतीति ॥
आई पंथी सगल जमाती मनि जीतै जगु जीतु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८।

वे ही तेरा गुण-गान करते है, जो कि तुझे भाते है, और जो तेरे अनुराग-रस मे डूबे हुए है।

और भी कितने ही तेरा गुण-गान करते हैं, जो मुझे याद नही आ रहे हैं—

नानक उन्हे कैसे गिनाये ?

सच्चा, सच्चे नामवाला वह स्वामी सदा वैसे-का-वैसा एकरस रहता है।

जिसने सारी सृष्टि को रचा है, वही अब है, और आगे भी वही रहेगा।

रंग-रंग की, तरह-तरह की यह रचना जिसने रची है, वह उसे रच-रच-कर जैसा कि वह बडा है उसीके अनुसार उसकी सार-सँभाल कर रहा है।

वह वही करता है जो उसे भाता है ; उसे यह नहीं कह सकते कि, 'ऐसा कर, और ऐसा न कर।'

वह स्वामी बादशाहो का भी बादशाह है।

सब-कुछ उसीकी इच्छा पर निर्भर है।

२८ मुद्राएँ तू संतोष और शील की बना, और (स्वमानयुक्त) उद्यम की झोली ;

और (परमात्मा के) ध्यान की लगाले भस्म।

काल का (सतत) स्मरण ही तेरी कंथा हो

मुगति गिआनु दइआ भंडारणि घटि घटि वाजहि नाद ॥
आपि नाथु नाथी सभ जा की रिधि सिधि अवरा साद ॥
सजोगु विजोगु दुइ कार चलावहि लेखे आवहि भाग ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥२८॥

और देह को—अपनी रहनी को—कुमारी कन्या की तरह पवित्र रख, और श्रद्धा को अपना दड बनाले ।

सबको तू अपनी ही जमात का समझ, मानो, सारे मनुष्य तेरे 'आई-पथ' के ही है ।

[विशेप—योगियो के बारह पथो मे से एक पथ 'आई पथ' है ।]

और यह मान कि मन को जीत लिया तो जगत् को जीत लिया ।

'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो 'आदि ईश' है,

[विशेप—नाथपथी योगी आपस मे एक दूसरे को 'आदेश' कहकर प्रणाम करते हैं ।]

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अत नही, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

२९ आध्यात्मिक ज्ञान का तू भोजन कर और दया को बनाले अपना भडारी ।

घट-घट मे जो नाद बज रहा है वही तेरी सारंगी है ।

जिसने सारी सृष्टि को (अपनी डोरी से) नाथ रखा है, वही है नाथ तेरा ।

ऋद्धियो और सिद्धियो की (तुच्छ) करामात तेरे लिए नही, दूसरों के लिए है——

[वे प्रभु के रास्ते से दूर भटकाकर ले जाती हैं ।]

सयोग और वियोग ये दोनो नियम जगत् का नियत्रण कर रहे हैं—

हमारे भाग्य से हमे अपना भाग मिलता है । 'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर, जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अत नही, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

एका माई जुगति विआई तिनि चेले परवाणु ॥
इकु संसारी इकु भंडारी इकु लाइ दीवाणु ॥
जिव तिसु भावै तिवै चलावै जिव होवै फुरमाणु ॥
ओहु वेखै ओना नदरि न आवै वहुता एहु विडाणु ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अनीलु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३०॥

आसणु लोइ लोइ भंडार । जो किछु पाइआ सु एका वार ॥
करि करि वेखै सिरजणहारु । नानक सचे की साची कार ॥
आदेसु तिसै आदेसु ।
आदि अ। लु अनादि अनाहति जुगु जुगु एको वेसु ॥३१॥

---

३० एक माया को किसी युक्ति से प्रसव हुआ, और तीन चेले या पुत्र उससे जनमे--

एक तो संसार को रचनेवाला, दूसरा पालण-पोषन की सामग्री रखनेवाला भंडारी और तीसरा मृत्यु-दंड देनेवाला न्यायाधीश--अर्थात् . ब्रह्मा, विष्णु और शिव ।

परमात्मा जैसा चाहता है, वैसी आज्ञा उन्हे देता है, और वैसे ही सारी सृष्टि को चलाता है ।

वह तो उन्हे देखता है, पर वह उनको नहीं दीखता ।

वह वहुत अद्भुत है ।

'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,

जो आदि है, जो शुभ्र है. जो अनादि है, जिसका अंत नहीं, और युग-युग से जो 'एकरूप' ही है ।

३१ लोक-लोक मे उसका आसन है: और लोक लोक मे उसका भंडार ।

उनमें जो कुछ रखना था वह एक बार ही रख दिया है ।

वह सिरजनहार सृष्टि को रच-रचकर उसे देखता और सँभालता है ।

नानक ! उस सच्चे (परमात्मा) का काम भी सच्चा है ।

इकदू जीभौ लख होहि लख होवहि लख वीस ॥
लखु लखु गेड़ा आखीअहि एकु नामु जगदीस ॥
एतु राहि पति पवड़ीआ चड़िऐ होइ इकीस ॥
सुणि गल्ला आकास की कीटा आई रीस ॥
नानक नदरी पाईऐ कूड़ी कूड़ै ठीस ॥३२॥

आखणि जोरु चुपै नह जोरु । जोरु न मगणि देणि न जोरु ॥
जोरु न जीवणि मरणि नह जोरु । जोरु न राजि मालि मनि सोरु ॥
जोरु न सुरती गिआनि विचारि । जोरु न जुगति छुटै संसारु ॥
जिसु हथि जोरु करि वेखै सोइ । नानक उत्तमु नीचु न कोइ ॥३३॥

---

३२ एक जीभ की जगह यदि मेरी लाख जीभें हो जायें, और लाख से बीस लाख, तोभी एक-एक जीभ से मै लाख-लाख बार एक जगदीश्वर का ही नाम जपूँगा ।

इस प्रकार मै उस स्वामी के मार्ग की सीढियो से चढकर उसमें लीन हो जाऊँगा ।

वहाँ की, उस गगन-मंडल की बाते सुन-सुनकर अधम-से-अधम जीव को भी उस स्वामी से मिलने की ईर्ष्या होने लगती है ।

नानक ! पर उससे मिलना तो उसकी कृपा-दृष्टि से ही होता है ।

बाकी सब झूठी बकवास है झूठो की ।

३३ न तो मेरी शक्ति कहने की है, और न चुप रहने की ही ।

न मॉगने की शक्ति है, और न देने की ही ।

न जीने की शक्ति है, और न मरने की ही ।

राज्य और सपत्ति को प्राप्त करने की भी मुझमे शक्ति नही है, जिनके लिए चित्त इतना चचल रहता है ।

न मेरे पास वह शक्ति है, जिससे कि ध्यान और ज्ञान का चितन कर सकूँ ।

और न उस युक्ति को खोज निकालने की ही शक्ति है, जिससे कि संसार के बन्धन से छूट जाऊँ ।

रातो रुती थिती वार । पवन पाणी अगनी पाताल ॥
तिसु विचि धरती थापि रखी धरमसाल ॥
तिसु विचि जीअ जुगति के रग । तिनके नाम अनेक अनंत ॥
करमी करमी होइ वीचारु । सचा आपि सचा दरबारु ॥
तिथै सोहनि पंच परवाणु । नदरी करमी पवै नीसाणु ॥
कच पकाई ओथै पाइ । नानक गइआ जापै जाइ ॥३४॥

धरमखंड का एहो धरमु ॥
गिआनखंड का आखहु करमु ॥

जिस (प्रभु) के हाथ मे शक्ति है, वही सब रचना रचता है, और वही उसे सँभालता है ।

नानक ! (ईश्वर के आगे) अपनी शक्ति से न तो कोई ऊँच हो सकता है, और न कोई नीच ।

३४ रात्रियो, ऋतुओ, तिथियां और वारो तथा वायु, जल, अग्नि और पाताल के बीच मे पृथिवी को मानो धम का मन्दिर बनाकर उसने रखा है ।

उस पृथिवी मे उसने नाना स्वभावो और नाना प्रकारो के जीव रख दिये हैं ; उनके अनेक और अनत नाम ह ।

उन सबको अपने-अपने कर्मो के अनुसार न्याय मिलता है ।

वह सच्चा है, और न्यायालय उसका सच्चा है ।

वहाँ, उसके दरबार मे, उसके चुने हुए ही शोभा और प्रतिष्ठा पाते हैं ।

उन्हे ही उसकी दया-दृष्टि और कृपा से वहाँ परवानगी मिलती है ।

कच्चे और पक्के की परख भी वहीपर होती है,

नानक ! वहाँ पहुँचकर ही इसका पता लगता है ।

'आदेश' अर्थात् प्रणाम उसीको कर,

जो आदि है, जो शुभ्र है, जो अनादि है, जिसका अत नही, और युग युग से जो 'एकरूप' ही है ।

३५ धर्मखंड का—कर्त्तव्य कर्म के पद का यह वर्णन है ,

अब ज्ञानखंड अर्थात् तत्त्व-विचार के पद की दशा का वर्णन करता हूँ ।

केते पवण पाणी वैसंतर केते कान्ह महेस ॥
केते बरमे घाड़ति घड़ीअहि रूप रग के वेस ॥
केतीआ करमभूमी मेर केते केते धू उपदेस ॥
केते इन्द चद सूर केते केते मडल देस ॥
केते सिध बुध नाथ केते केते देवी वेस ॥
केते देव दानव मुनि केते केते रतन समुद ॥
केतीआ खाणी केतीआ बाणी केते पात नरिंद ॥
केतीआ सुरती सेवक केते नानक अतु न अतु ॥३५॥

गिआनखंडमहि गिआनु परचंडु ॥ तिथै नाद-बिनोद कोड अनदु ॥
सरमखडकी बाणी रूपु ॥ तिथै घाड़ति घड़ीऐ बहुतु अनूपु ॥

कितने पवन, कितने जल और कितने अग्नितत्त्व दीख रहे ह।

कितने कृष्ण और कितने शिव और कितने ब्रह्मा दीखते हैं अनेक रूपो और रगो की रचना रचते हुए।

कितनी ही कर्मभूमियाँ और कितने ही सुमेरु पर्वत दीख रहे हैं वहाँ।

कितने ध्रुव और कितने ज्ञानोपदेश लेनेवाले दीखते हैं।

वहाँ कितने ही इन्द्र, कितने ही चंद्र, कितने ही सूर्य और कितने ही नक्षत्र-मंडल और लोक दीख रहे हैं।

कितने सिद्ध, बुद्ध और नाथ।

कितनी ही देवियाँ और अनेक नाना रूप दीखते हैं वहाँ।

कितने ही देवता, दानव और मुनि,

तथा कितने ही समुद्र और उनमें से निकले हुए रत्न वहाँ दीख रहे हैं।

जीवो की कितनी ही खानें और कितनी ही उनकी बोलियाँ वहाँ दीख-रही हैं। और राजाओ की कितनी ही वंशावलियाँ।

नानक! वहाँ कितने ही ध्यानावस्थित और भक्तजन दीखेगे, जिनका कोई अंत नही।

३६ उस ज्ञानखड मे आत्म-विचार की उस दशा मे ज्ञान-ही-ज्ञान प्रज्वलित रहता है।

ताकीआ गला कथीआ न जाहि ॥ जेको कहै पिछै पछुताइ ॥
तिथै घड़ीए सुरति-मति मनि-बुधि ॥ तिथै घड़ीऐ सूरा-सिधाकी सुधि ॥३६॥

करमखंड की बाणी जोरु। तिथै होरु न कोई होरु ॥
तिथै जोध महाबल सूर। तिनि महि रामु रहिआ भरपूर ॥
तिथै सीतो सीता महिमा माहि। ताके रूप न कथने जाहि ॥
ना ओहि मरहि न ठागे जाहि। जिनके रामु वसै मन माहि ॥
तिथै भगत वसहि के लोअ। करहि अनंदु सचा मनि सोइ ॥
सचखंडि वसै निरकारु। करि करि वेखै नदरि निहाल ॥

वहाँ ऐसा नाद सुनाई देता है, जिससे आनन्द की करोड़ो वृत्तियाँ विकसित होती है।

आनद-खंड मे पहुँचने से सुन्दर-सुन्दर वाणियाँ फूटती है।

वहाँ की, उस खड की रचना अनुपम है।

वर्णनातीत है वह अवस्था। यदि कोई वर्णन करने का यत्न करेगा, तो उसे लज्जित होना पडेगा।

वहाँ ज्ञान-विज्ञान और मन की विशुद्ध वृत्तियो का सृजन होता है, और सिद्धो और महात्माओ के ऊँचे मनोभावो का भी।

३७ कर्मखड अर्थात् आचरित (अमली) अवस्था मे पहुँचे हुए (साधक) के कार्य-कलाप सबल होते है।

उस अवस्था को और कोई नही पहुँचता केवल महान् बली शूर-वीर ही वहाँ पहुँच पाते है।

उनमे राम (का बल) कूट-कूटकर भरा हुआ होता है।

(राम की) उस महिमा मे सीता-ही-सीता रहती है, जिनके रूप का वर्णन नही हो सकता।

[अर्थात्, जहाँ सच्चे पुरुषार्थ की महिमा है, वहाँ सीता-जैसी पतिव्रता निवास करती है।]

तिथै खंड मंडल वरभंड। जे को कथै त अन्त न अन्त ॥
तिथै लोअ लोअ आकार। जिव जिव हुकमु तिवै तिव कार ॥
वेखै विगसै करि वीचारु। नानक कथना करड़ा सारु ॥३७॥

जतु पाहारा धीरजु सुनिआरु॥ अहरणि मति वेदु हथीआरु॥
भउ खल्ला अगनि तपताउ॥ भांडा भाउ अमृत तितु ढालि॥
घड़ीऐ सबदु सचीटकसाल॥ जिनकउ नदरि करमु तिनि कार॥
नानक नदरी नदरि निहाल॥३८॥

वे न मारे जा सकते है, न उन्हें कोई ठग सकता है,
जिनके कि हृदय मे राम बस रहा है।
वहाँ (प्रभु के) भक्तो की मडली निवास करती है,
वे आनदित रहते है, क्योकि उनके हृदय मे सत्यरूप परमात्मा वास करता है।
सत्यखड मे स्वय निराकार परमेश्वर का वास है,
जो सृष्टि को रच-रचकर दया-दृष्टि से उसे निहाल करता है।
वहाँ पहुँचकर (सत्य का साधक) देखता है अनेक खंड, अनेक लोक और अनेक ब्रह्माण्ड।
कोन उसका वर्णन कर सकता है? कहीं उनका अत ही नही।
वहाँ लोको के ऊपर भी लोक है, और उनमे आकार-पर-आकार रचे हुए है।
परमात्मा जैसी-जैसी आज्ञा देता है, वैसे-वैसे ही काम वहाँ संपन्न होते हैं।
देख देखकर और विचार-विचारकर वह प्रसन्न होता है।
नानक! उसका वर्णन करना असभव है। [लोहे के जैसा कठिन है।]

३८ सयम को तू भट्टी बना, और धैर्य को अपना सुनार,
बुद्धि को बना अहरण(निहाई) और आत्म-ज्ञान को हथौडा।
(विशेष—'वेदु' का अर्थ 'गुरु-वाणी' भी किया गया है।)
परमात्मा के भय की धोंकनी फूक, और तप की अग्नि जला।
प्रेम भाव का साँचा बनाकर उसमे नाम का अमृत ढालले।

सलोक

पवणु गुरू पाणी पिता माता धरति महतु ॥
दिवसु राति दुइ दाई दाइआ खेलै सगल जगतु ॥
चंगिआईआ बुरिआईआ वाचे धरमु हदूरि ॥
करमी आपो आपणी के नेड़ै के दूरि ॥
जिनी नामु धिआइआ गए मसक्कति घालि ॥
नानक ते मुख उज्जले केती छुट्टी नालि ॥१॥ *

उसी सच्ची टकसाल में 'शब्द' अर्थात् ऊँचा आचरण घड़ा जा सकेगा। ऐसा काम वही कर सकते हैं, जिनपर कि प्रभुने कृपा-दृष्टि करदी है, नानक! मेरा प्रभु एक ही कृपा-दृष्टि से निहाल कर देता है।

१ पवन गुरु है, जल हमारा पिता है, और इतनी बड़ी पृथिवी है हमारी माता,

[विशेष—पवन को गुरु यहाँ इसलिए कहा है कि वह परमात्म-ज्ञान का मंत्र फूकता है, जल का गुण जीवन-दान देना है, इसीलिए उसका एक नाम 'जीवन' भी है अतः वह पितृतुल्य है, पृथिवी पोषण करती है माता के समान, दिन कर्म में लगाता है, और रात विश्राम देती है।]

दिन और रात ये दोनों हमारी धायें हैं, जिनकी गोद में सारा जगत् खेलता है।

धर्म हमारा न्यायाधीश है जो अच्छे और बुरे कर्मों को अपने आगे जाँचता है, हमारे कर्म हममें से किसीको तो परमात्मा के निकट ले जाते हैं, और किसीको उससे दूर फेंक देते हैं।

जिन्होंने नाम का अभ्यास किया है, वे अपना श्रम सफल कर गये। नानक! उनके मुख प्रकाशमान हैं, उनके सत्संग में कितने ही लोग (भव-बंधन से) मुक्त हो गये।

* यह सलोक 'माझ की वार' में गुरु अंगदकृत लिखा हुआ है, थोड़ा-सा ही पाठान्तर है।

रागु धनासरी

गगनमै थालु रवि चंदु दीपक बने तारिका मंडल जनक मोती ॥
धूपु मलआनलो पवणु चवरो करे सगल बनराइ फूलंत जोती ॥
कैसी आरती होइ भवखंडना तेरी आरती ॥ अनहता सबद वाजंत भेरी ॥
सहस तव नैन नन नैन हहि तोहि कउ सहस मूरति नना एकु तोही ॥
सहस पद बिमल नन एक पद गंध बिनु सहस तव गंध इव चलत मोही ॥
सभ महि जोति जोति है सोइ ॥ तिसदै चानणि सभ महि चानणु होइ ॥
गुर साखी जोति परगटु होइ ॥ जो तिसु भावै सु आरती होइ ॥
हरि चरण कवल मकरंद लोभित मनो अनदिनो मोहि आही पिआसा ॥
कृपाजलु देहि नानक सारिंग कउ होइ जाते तेरै नाइ वासा ॥१॥

---

१ आकाश-मंडल थाल है, और सूर्य और चंद्र उसमें दोनों दीपक, और उसमें जड़े हुए हैं ताराओं के मोती।

मलयानिल तेरी धूप है, और पवन तुझे चँवर डुलाता है, और हे-ज्योतिस्वरूप, सारे ही कानन तेरे फूल हैं।

हे भव-खंडन (जन्म-मरण से छुडानेवाले) यह तेरी कैसी आरती है! अनहद नाद की तुरही बज रही है जहाँ।

तेरी सहस्रों आँखें हैं, और तोभी तू बिना आँख का है,

तेरे सहस्रों रूप हैं, और तोभी तू बिना रूप का है,

तेरे सहस्रों निर्मल चरण हैं, और तोभी तू बिना चरण का है,

तेरी सहस्रों नासिकाएँ हैं, और तोभी तू बिना घ्राण का है।

मैं तो मुग्ध हूँ तेरी इस लीला पर।

सब तेरी ही ज्योति से ज्योति पा रहे हैं, तेरे ही प्रकाश से सब प्रकाशित हो रहे हैं।

गुरु के उपदेश से वह ज्योति प्रकट होती है।

जो तुझे प्रिय लगे वही तेरी आरती है।

तेरे चरणारविन्दों के मकरंद से मेरा मन (मधुकर) लुब्ध हो गया है— नित्य ही मुझे उस मकरंद की प्यास लगी रहती है।

सुणि वडा

सुणि वडा आखै समु कोइ ॥ केवडु वडा डीठा होइ ॥
कीमति पाइ न कहिआ जाइ ॥ कहणै वाले तेरे रहे समाइ ॥
वडे मेरे साहिबा गहिर गंभीरा गुणी गहीरा ॥
कोइ न जाणै तेरा केता केवडु चीरा ॥
सभि सुरती मिलि सुरति कमाई ॥ सभि कीमति मिलि कीमति पाई ॥
गिआनी धिआनी गुर गुरहाई ॥ कहणु न जाई तेरी तिलु वडिआई ॥
सभि सत सभि तप सभि चंगिआईआ ॥ सिद्धा पुरखा कीआ वडिआईआ ।

इस नानक-चातक को अपना कृपा-जल देदे, जिससे कि वह तेरे नाम में रम जाये ।

२ सुन-सुनकर सब कोई कहते हैं कि, 'तू बडा है',
पर क्या किसीने देखा भी है कि तू कितना बडा है ?
तेरा मोल न तो आंका जा सकता है, और न कहा जा सकता है,
जिन्होंने कहने का यत्न किया भी, वे तुझमें लीन हो गये ।
हे मेरे महान् स्वामी ! हे अथाह गभीर ! हे सर्वगुणवंत !
कोई नही जानता कि तेरी रूप-रेखा का कितना बडा विस्तार है ।
सारे ध्यानी मिलकर तेरा ध्यान करे, और सारे मोल आँकनेवाले मिलकर तेरा मोल आँके—
और तत्त्वज्ञानी और सब स्थितप्रज्ञ, और गुरु और बडे-बडे गुरु भी मिलकर वर्णन करने लगे,
तोभी तेरी बडाई का एक अणु भी वे वर्णन नहीं कर सकेंगे ।
सारा सत्य, सारा तप, सारी भलाई और सिद्धपुरुषों की सारी श्रेष्ठता बिना तेरे कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता ।
यदि तेरी कृपा प्राप्त हो जाये, तो प्राप्त होने को फिर रहा क्या ?
बेचारे वर्णन करनेवाले की क्या गणना ?
तेरे भंडार तेरी महिमाओं से भरे पडे हैं ।

तुधु विणु सिद्धी किनै न पाईआ ॥ करमि मिलै नाही ठाकि रहाईआ ॥
आखणवाला किआ वेचारा ॥ सिफती भरे तेरे भंडारा ॥
जिसु तू देहि तिसै किआ चारा ॥ नानक सचु सवारणहारा ॥२॥ *

आसा

आखा जीवा विसरै मरि जाउ ॥ आखणि अउखा साचा नाउ ॥
साचे नाम की लागै भूख ॥ उतु भूखै खाइ चलीअहि दूख ॥
सो किउ विसरै मेरी माइ ॥ साचा साहिबु साचै नाइ ॥
साचे नाम की तिलु वडिआई ॥ आखि थके कीमति नही पाई ॥
जे सभि मिलिकै आखण पाहि ॥ वडा न होवै घाटि न जाइ ॥
ना ओहु मरै न होवै सोगु ॥ देदा रहै न चूकै भोगु ॥

जिसे तू देता है उसके आडे कौन आ सकता है ?
नानक ! वह सच्चा स्वामी ही सबको सँभालनेवाला है ।
* यह 'रहिरास' में से लिया गया है ।

२ यदि मैं नाम का जप करूँ, तो जीऊँ, यदि भूलजाऊँ, तो मरजाऊँ, उस सच्चे के नाम का जप बडा कठिन है ।
यदि सच्चे नाम की भूख लग उठे, तो खाकर तृप्त हो जाने पर भूख की व्याकुलता चली जाती है ।
तब हेमेरी माता ! उसे मैं कैसे भुलादूँ ?
स्वामी वह सच्चा है, उसका नाम सच्चा है।
उस सच्चे नाम की तिलमात्र भी महिमा बखान-बखानकर मनुष्य थक गये फिर भी उसका मोल नही आँक सके ।
यदि सारे ही मनुष्य एकसाथ मिलकर उसके वर्णन करने का यत्न करें, तोभी उसकी बडाई न तो उससे बढेगा, और न घटेगी ।
वह न मरता है, और न उसके लिए शोक होता है।
वह देता ही रहता है नित्य सबको आहार, कभी चुकता नहीं देने से ।
उसकी यही महिमा है, कि उसके समान न कोई है न था, और न होगा ।

गुणु एहो होरु नाही कोइ ॥ ना को होआ ना को होइ ॥
जेवडु आपि तेवडु तेरी दाति ।। जिनि दिनु करिकै कीती राति ॥
खसमु विसारहि ते कमजाति ॥ नानक नावै बाझु सनाति ॥३॥ *

सोहिला—रागु गउडी दीपकी

जै घरि कीरति आखीऐ करते का होइ बीचारो ।
तितु घरि गावहु सोहिला सिवरिहु सिरजणहारो ॥
तुम गावहु मेरे निरभउ का सोहिला ॥
हउ वारी जितु सोहिलै सदा सुखु होइ ॥
नित नित जीअड़े समालीअनि देखैगा देवणहारु ॥
तेरे दानै कीमति ना पावै तिसु दाते कवणु सुमार ॥
संवति साहा लिखिआ मिलि करि पावहु तेलु ॥
देहु सजण असीसड़ीआ जिउं होवै साहिब सिउ मेलु ॥

तू जितना बडा है, उतना ही बडा तेरा दान है।
तूने दिन बनाया है, और रात भी।
वे मनुष्य अधम है, जो तुझ स्वामी को भुला बैठे है।
नानक, बिना तेरे नाम के वे बिल्कुल नगण्य है।

* यह 'रहिरास' मे से लिया गया है।

४ जिस घर मे परमात्मा का गुण-गान होता है और उसका ध्यान किया जाता है, उस घर मे सोहिला गाओ, और सिरजनहार का स्मरण करो।

तुम मेरे निर्भय प्रभु का सोहिला गाओ।

मै उस आनन्द-गान पर बलि जाता हूँ, जिससे कि 'नित्य सुख' प्राप्त होता है।

नित्य-नित्य सब जीवो की सार-सँभाल रखी जाती है, वह दाता उनकी आवश्यकताओं का ध्यान रखता है।

घरि घरि एहो पाहुचा सदड़े नित पावन्नि ॥
सदणहारा सिमरीऐ नानक से दिह आवन्नि ॥४॥

राग सारग

हरि बिनु किउ रहिए दुखु व्यापै ।
जिह्वा साढु न, फीकी रस बिनु, बिनु प्रभ कालु सतापै ॥
जबलगु दरसु न परसै प्रीतम तबलगु भूखि पिआसी ।
दरसनु देखत ही मनु मानिआ, जल रसि कमल बिगासी ॥
ऊनवि घनहरु गरजे बरसै, कोकिल मोर बैरागै ।
तरवर बिरख बिहग भुअगम घरि पिरु धन सोहागै ॥
कुचिल कुरूप कुनारि कुलखनी पिर कउ सहजु न जानिआ ।
हरिरस रगि रसन नहीं तृपती, दुरमति दूख समानिआ ॥

जब कि तेरे दान का हिसाब नहीं रखा जा सकता, तब फिर तुझ दानी का हिसाब कौन रख सकता है ?

विवाह का सवत्, और लग्न का समय आँक लिया जाता है, तब सब सबधी मुझ दुलहिन पर तेल चढाते हैं ।

मेरे साजनो, मुझे आसीस दो कि मेरे स्वामी से मेरा मिलन हो ।

यह सदेसा सदा घर-घर पहुँचाया जाता है ऐसे न्योते हमेशा भेजे जाते हैं ।

जिसे बुला भेजा है उसे याद करलो, नानक, वह दिन आ रहा है ।

५ किउ=क्योंकर, कैसे । सादु=स्वादु । रस=हरिभक्ति से आशय है । मानिआ=तृप्त होगया । रसि=आनन्द-रस लेकर । बिगासी=खिल गया । ऊनवि=घुमड आया । घनहरु=बादल । ऊनवि.. .. बैरागै=बिना प्रियतम के पावस के घुमडे बादलो का गरजना, बरसना और कोइल व मोर का बोलना यह सब वैराग्य या अनमनापन पैदा करते हैं । पिरु=प्रियतम । घर... सोहागै=जिस स्त्री के घर पर उसका प्रियतम हैं, वही असल में

आइ न जावै ना दुखु पावै, ना दुख दरदु सरीरे ।
नानक प्रभ ते सहज सुहेली प्रभ देखत ही मनु धीरे ॥५॥

राग मलार

करउ विनउ गुर अपने प्रीतम हरि वरु आणि मिलावै ।
सुनि घनघोर सीतलु मनु मोरा, लाल-रती-गुण गावै ॥
बरसु घना मेरा मनु भीना ।
अमृत बूंद सुहानी हियरै गुरि मोहि मनु हरि रसि लीना ।
सहजि सुखी वर कामणि पिआरी जिसु गुरबचनी मनु मानिआ ॥
हरि वरि नारि भई सोहागणि, मनि तनि प्रेम सुखानिआ ॥
अवगण तिआगि भई बैरागनि असथिरु वरु सोहागु हरी ।
सोगु विजोगु तिसु कदे न विआपै, हरि प्रभ अपणी किरपा करी ॥
आवण जाण नहीं मनु निहचलु पूरे गुर की ओट गही ।
नानक राम नामु जपि गुरमुखि धनु सोहागणि साचु सही ॥६॥

रागु सूही

अंतरि वसै न बाहरि जाइ । अंमृतु छोड़ि काहे बिखु खाइ ॥
ऐसा गिआनु जपहु मन मेरे । होवहु चाकर साचे केरे ॥

सुहागिन हैं । कुचिल = बुरे मैले कपड़े पहननेवाली । सुहेली=सुन्दर । सुहागिन । मनु धीरे = मन तृप्त या शान्त हो गया है ।

६ करउ विनउ=विनती करती हूँ । वरु = वर, प्रियतम । लालरती-गुण=प्रियतम की प्रीति का बखान । भीना = विभोर या सराबोर हो गया । वरि = वरण करके । मनि ...सुखानिआ = मन और तन में प्रेम-रस का आनन्द भर गया । असथिरु = स्थिर, अविनाशी । सोगु विजोगु = शोक और वियोग । तिसु = उसे । कदे = कभी । आवण-जाण = जन्म मरण से आशय है । ओट = शरण ।

गिआनु धिआनु सभु कोई रवै। बांधनि बांधिआ सभु जगु भवै ॥
सेवा करे सु चाकर होइ। जलि थलि महीअलि रवि रहिआ सोइ॥
हम नही चगे बुरा नही कोइ। प्रणवति नानकु तारे सोइ ॥७॥

रागु भैरउ

हिरदै नामु सरब धनु धारणु गुर परसादी पाईऐ।
अमर पदारथ ते किरतारथ सहज धिआनि लिव लाईऐ॥
मनरे, राम भगति चितु लाईऐ।
गुरमुखि राम नामु जपि हिरदै सहज सेती घरि जाईऐ॥
भरमु भेदु भउ कबहु न छूटसि आवत जात न जानी।
बिनु हरिनाम कोउ मुकति न पावसि डूबि मुए बिनु पानी॥
धंधा करत सगलि पति खोवसि भरमु न मिटसि गवारा।
बिनु गुरसबद मुकति नही कबही अंधुले धंधु पसारा॥
अकल निरजन सिउ मनु मानिआ मनही ते मनु मूआ।
अतरि बाहरि एको जानिआ नानक अवरु न दूआ ॥८॥

रागु भैरउ

जगन होम पुन तप पूजा देह दुखी नित दूख सहै।
रामनाम बिनु मुकति न पावसि मुकति नामि गुरमुखि लहै॥

७ साचे केरे=सत्यरूप परमात्मा के। रवै=रमते हैं। बाँधनि . . . भवै=सारा जगत् माया के बधनों से बँधा चक्कर खा रहा है। महीअलि=महीतल। रवि रहिआ=रम रहा है। चगे=भले।

८ गुरपरसादी=गुरुकृपा से। अमरपदारथ=नामरूपी अविनाशी वस्तु पाकर। किरतारथ=कृतार्थ, सफल जीवन। सहज.. जाईऐ=सहज साधना से ब्रह्मधाम प्राप्त कर लेना चाहिए। भरमु भेदु भउ=द्वैतभाव का भय। धधा=प्रपच। सगलि पति=सारी प्रतिष्ठा। गवारा=गँवार, मूर्ख।

रामनाम बिनु बिरथे जगि जनमा ।
बिखु खावै बिखु बोलै बिनु नावै निहफलु मरि भ्रमना ॥
पुसतक पाठ बिआकरण वखाणै संधिआ करम तिकाल करै ।
बिनु गुरसबद मुकति कहा प्राणी रामनाम बिनु उरझि मरै ॥
डंड कमंडल सिखा सूत धोती तीरथि गवनु अति भ्रमनु करै ।
रामनाम बिनु सांति न आवै जपि हरि हरि नामु सु पारि परै ॥
जटा मुकटु तनि भसम लगाई वसत्र छोडि तनि नगन भइआ ।
जेते जीअ जंत जलि थलि महीअलि जत्र कत्र तू सरब जीआ ॥
गुरपरसादि राखिले जन कउ हरिरसु नानक झोलि पीआ ॥६॥

रागु बसंत

चंचल चीतु न पावै पारा । आवत जात न लागै बारा ॥
दूखु घणो मरीऐ करतारा । बिनु प्रीतम को करै न सारा ॥
सभ ऊतम किसु आखउ हीना । हरिभगती सचि नामि पतीना ॥
अउखध करि थाकी बहुतेरे । किउ दुख चूकै बिनु गुर मेरे ॥

मुकति = मुक्ति, मोक्ष । अधुले = अंधा । मनहीते मनुमूआ=प्रभु-भक्ति में लगे हुए मन ने विषय-रत मन को नष्ट कर दिया । दूआ = दूसरा, अन्य ।

६ जगन = यज्ञ । जगन . सहै = यज्ञ, हवन, दान पुण्य, तप, देव-पूजन आदि अनेक साधनो को कर-कर मनुष्य क्लेश और दुःख देह को देते हैं । मुकति .. लहै = गुरु-उपदेश द्वारा प्रभु का नाम लेने से ही मुक्ति मिलती है । बिखु = विष, इन्द्रिय-विषयो से तात्पर्य है । निहफलु=निष्फल, व्यर्थ । संधिआ = सध्या-वदन । तिकाल = तीनो समय प्रातः, मध्याह्न और सायकाल । सूत=सूत्र, यज्ञोपवीत । वसत्र=वस्त्र । तनि=शरीर से । भइआ= हुआ । किरत कै = कृत्य अर्थात् नाना कर्म करके । महीअलि = महीतल । जत्र कत्र = जहाँ-तहाँ, सर्वत्र । सरब जीआ = सब जीवो मे । झोलि = छानकर, मस्त होकर, अघाकर ।

बिनु हरिभगती दूख घणेरे । दुख सुख दाते ठाकुर मेरे ॥
रोगु बडो किउ बांधउ धीरा । रोगु बूझै सो काटै पीरा ॥
मैं अवगुण मन माहि सरीरा । ढूढत खोजत गुर मेले बीरा ॥
गुर का सबदु दारू हरिनाउ । जिउ तू राखहि तिवै रहाउ ॥
जगु रोगी कह देखि दिखाउ । हरि निरमाइलु निरमलु नाउ ॥
घर महि घरु जो देखि दिखावै । गुर महली सो महलि बुलावै ॥
मन महि मनुआ चित महि चीना । ऐसे हरि के लोग अतीता ॥
हरख सोग ते रहहि निरासा । अमृत चाखि हरिनामि निवासा ॥
आपुपछाणि रहै लिव लागा । जनमु जीति गुरमति दुख भागा ॥
गुर दीआ सचु अंमृत पीवउ । सहजि मरउ जीवत ही जीवउ ॥
अपणो करि राखउ गुर भावै । तुम्हरो होइ सु तुझहि समावै ॥
भोगी कउ दुखु रोग विआपै । घटि घटि रवि रहिआ प्रभु जापै ॥
सुख दुख ही ते गुरसबदि अतीता । नानक रामु रवै हित चीता ॥१०॥

---

१० चीतु=चित्त । बारा=देर । सारा=सँभाल, रक्षा । ऊतम=उत्तम, श्रेष्ठ । किस आखउ हीना=किसे नीच कहूँ । सचि नामि पतीना=सत्य-नाम पर प्रतीति हो गई है । अउखध=औषधि, उपाय, साधन । चूकै=दूर हो । किउ=कैसे । मेले=मिल गये । दारू=दवा । तिवै=वैसे ही । निरमाइलु=निर्माण किया, रचा । घर ... दिखावै=घर में ही, अर्थात् इस पिंड के अंदर ही जो असली घर को अर्थात् ब्रह्म-तत्त्व को स्वयं देखकर दूसरों को भी दिखा देता है । महलि=ब्रह्मधाम से तात्पर्य है । अतीता=विषयों से विरक्त । निरासा=अनासक्त । आपु पछाणि=अपने स्वरूप को पहचानकर । जनमु जीति=जीवन को सफल करके । सहजि .. जीवउ=सहज ही मृत्यु-भय जीतकर जीवन को अमर करलूँ । तुझहि समावै=तुझमें ही लीन हो जाता है । रवि रहिआ=रमा हुआ, व्याप्त । भोगी=विषयासक्त । गुरसबदि अतीता=गुरु का उपदेश-रहस्य परे है ।

सलोक *

जूठि न रागीं जूठि न वेदी । जूठि न चंद सूरज की भेदी ॥
जूठि न अंनी जूठि न नाई । जूठि न मीहु वरिसऐ सभ थाई ॥
जूठि न धरती जूठि न पाणी । जूठि न पउणै माहि समाणी ॥
नानक निगुरिआ गुण नाही कोइ । मुहि फेरिऐ मुहु जूठा होइ ॥१॥

नानक चुलीआ सुचीआ जे भरि जाणै कोइ ॥
सुरते चुली गिआन की जोगी का जतु होइ ॥
ब्राह्मण चुली संतोख की गिरही का सतु दानु ।
राजे चुली निआव की पड़िआ सचु धिआनु ॥

---

१ अपवित्रता न तो रागों मे है, और न वेदों मे ;
न चद्र और सूर्य की भिन्न-भिन्न गतियों मे अपवित्रता है ;
[यह मानना कि चंद्र अमुक नक्षत्रगत तथा सूर्य असुक राशिगत होनेपर शुचि तथा अशुचि या शुभ तथा अशुभ होते हें ।]
अपवित्रता न अन्न मे है, और न अस्स-परस मे है ,
न अपवित्रता मेह मे है, जो सभी जगह बरसता है ,
न धरती मे अपवित्रता है, और न पानी मे ,
अपवित्रता पवन मे भी नहीं समाई हुई है ।
नानक, उस मनुष्य मे, जो विना गुरु का है, कोई भी गुण नहीं ।
अपवित्र तो उस मनुष्य का मुख है, जो परमात्मा से विमुख है ।

२ यदि कोई भरना जानता है तो चुल्लूभर भी पानी पवित्र है—
(कौन-कौन-सी चुल्लू ? यह-यह—)
(अध्यात्म) ज्ञान पंडित के लिए, सयम योगी के लिए,
सतोष ब्राह्मण के लिए, और गृहस्थ के लिए अपनी कमाई मे से दान,
राजा के लिए न्याय और विद्वान् के लिए सत्यरूप परमात्मा का ध्यान,
पानी प्यास को तो बुझा देता है, पर उससे (मलिन) चित्त को नहीं धोया जा सकता ।

* 'सारंग की वार' मे से

पाणी चितु न धोपई मुखि पीतै तिख जाइ ।
पाणी पिता जगत का फिरि पाणी समु खाइ ॥२॥

कलि होई कुते मुही खाजु होआ मुरदारु ।
कूडु बोलि-बोलि भउकणा चूका धरमु बीचारु ॥
जिन जीवंदिआ पति नही मुइआ मदी सोइ ।
लिखिआ होवै नानका करता करे सु होइ ॥३॥

धृगु तिन्हा का जीविआ जि लिखि-लिखि वेचहि नाउ ॥
खेती जिनकी उजड़ै खलवाड़े किआ थाउ ॥
सचै सरमै बाहरे अगै लहहि न दादि ॥
अकलि एह न आखीऐ अकलि गवाईऐ बादि ॥

पानी को जगत् का पिता कहा गया है, और अत मे वही सबका विनाश कर देता है ।

३ कलियुग में लोगो के मुँह हैं कुत्तों के जैसे, और मुर्दार खाते हैं ।
वे झूठ बोल-बोलकर मानों भौंकते हैं, और सचाई का कुछ भी विचार नही रखते ।
जीते जी उनकी कोई प्रतिष्ठा नहीं, और मरने पर भी उनकी बदनामी होती है ।
जो भाग्य मे लिखा है वही होता है, नानक , वह होकर रहता है, जो कर्त्तार करना चाहता है ।

४ धिक्कार है उनके जीने को, जो प्रभु का नाम लिख-लिखकर बेचते हैं ।
जिनकी खेती उजड चुकी उनका क्या काम खलिहान में ?
जिनके अतर मे सत्य और शील नहीं रहा, उनकी आगे सुनवाई नही होगी ।
उसे अक्ल न कहो, जो कि वाद-विवाद में खर्च होती हो ।

अकली साहिबु सेवीऐ अकली पाईऐ मानु।
अकली पढ़ि कै बूझिऐ अकली कीजै दानु॥
नानकु आखै राहु एहु होरि गलां सैतानु॥४॥

गिआन विहूणा गावै गीत। भुखे मुलां घरे मसीत॥
मखट्ठू होइ कै कंन पड़ाए। फकरु करे होरु जाति गवाए॥
गुरु पीरु सदाए मंगण जाइ। ताकै भूलि न लगीऐ पाइ॥
घालि खाइ किछु हथहु देइ। नानक राहु पछाणहि सेइ॥५॥

सलोक*

वैदु बुलाइआ वैदगी पकड़ि ढढोले बांहि।
भोला वैदु न जाणई करक कलेजे माहि॥६॥

अक्ल से तो प्रभु की सेवा की जाती है, अक्ल से सम्मान मिलता है।
अक्ल से ही पढकर समझा जाता है, और उसीके द्वारा सही रीति से दान दिया जाता है।
नानक कहता है—यही अक्ल के रास्ते हैं, और सब रास्ते शैतान के हैं।

५ गीत गाने लगते हैं लोग बिना ऊँचे ज्ञान के।
और भूखा मुल्ला मसजिद को ही अपना घर बना लेता हैं, दिन-रात मसजिद में ही पड़ा रहता है।
निखट्टू अपने कान फड़वा लेते हैं—कनफटे जोगी बन जाते हैं,
और कुछ भिखारी बन जाते हैं, और अपनी जात गवाँ देते हैं।
भूलकर भी तुम उनके पैर न छूना, जो अपने आपको गुरु और पीर बतलाते हैं, फिर भी दर-दर भीख माँगते फिरते हैं।
नानक, सही रास्ता उन्होंने ही पहचाना है, जो अपने पसीने की कमाई खाते हैं और दूसरों को भी कुछ देते हैं।

६ पकडि .. बाहि=हाथ पकड़कर नाडी से रोग का पता लगाता है। करक=पीड़ा, भगवद्विरह की पीड़ा से आशय है।

* 'मलार की वार' में से

पउडी

इकन्हा गलीं जंजीर बंदि रबाणीऐ ।
बधे छुटहि सचि सचु पछाणीऐ ॥
लिखिआ पलै पाइ सो सचु जाणीऐ ।
हुकमी होइ निबेड़ु गइआ जाणीऐ ॥
भउजल तारणहारु सबदि पछाणीऐ ।
चोर जार जूआर पीड़े वाणीऐ ॥
निंदक लाइतबार मिले हड़वाणीऐ ॥
गुरमुखि सचि समाइ सु दरगह जाणीऐ ॥७॥

धनु सु कागमु कलम धनु धनु भांडा धनु मसु ।
धनु लेखारी नानका जिनि नामु लिखाइआ सचु ॥८॥

---

७ कुछ लोगों के गले मे जजीरे पडी होती हैं, और उन्हे जेलखाने में ले जाते हैं ;

पर सच्चे से भी सच्चे प्रभु को पहचानकर वे बंधनों से मुक्त हो जायेंगे।

वडभागी ही उस सत्यरूप प्रभु को जानता है ।

परमात्मा की आज्ञा से मनुष्य के भाग्य का फैसला होता है, उसके सामने हाजिर होनेपर ही मनुष्य इसे जानेगा ।

पहचानले उस 'शब्द' को, जो कि भव-सागर से पार लगायेगा ।

चोर, व्यभिचारी और जुआरी ये सब-के-सब सरसों की तरह पेर दिये जायेंगे ।

निन्दकों और विश्वासघातियों को बाढ़ बहा लेजायेगी ।

प्रभु के न्यायालय मे उन्हीं पवित्रात्माओं को पहचाना जायेगा, जोकि सत्य मे लौलीन होंगे ।

८ धन्य वह कागज, धन्य वह कलम, धन्य वह दावात और धन्य वह स्याही,—

और धन्य वह लिखनहार, नानक, जिसने कि उस सत्य-नाम को लिखा है।

रे मन डीगि न डोलिऐ सीधे मारगि धाउ।
पाछै बाघु डरावणो आगै अगनि तलाउ ॥१॥

सहसै जीअरा परि रहिओ मोकउ अवरु न ढंगु।
नानक गुरमुखि छूटिऐ हरि प्रीतम सिउ संगु ॥२॥

बाघु मरै मनु मारिऐ जिसु सतिगुर दीखिआ होइ।
आपु पछाणै हरि मिलै बहुड़ि न मरणा होइ ॥३॥

सरवरु हंस न जाणिआ काग कुपंखी संगि।
साकत सिउ ऐसी प्रीति है बूझहु गिआनी रंगि ॥४॥

जनमे का फलु किआ गणी जां हरिभगति न भाउ।
पैधा खाधा वादि है जां मनि दूजा भाउ ॥५॥

सभनि घटी सहु बसै सहबिनु घटु न. कोइ।
नानक ते सोहागणी जिन्हा गुरमुखि परगटु होइ ॥६॥

---

१ डीगि न डोलिए=हिलना-डोलना नही, तनिक भी विचलित न होना। तलाउ=तालाब। बाघु=काम से आशय है। अगनि=सभवतः तृष्णा से आशय है।

२ सहसै······रहिओ=संशय मे अर्थात् दुविधा मे मन पड गया है। ढंगु=उपाय, सिउ=से।

३ आपु पछाणै=निजस्वरूप को पहचानले। बहुडि=फिर।

४ साकत=शाक्त, आशाय है हरि-विमुख से।

५ पैधा खाधा वादि है=पीना-खाना व्यर्थ है। जां भाउ=जहॉ मन मे ईश्वर-भक्ति को छोडकर सासारिक विषय-भोगो पर ध्यान है।

६ सभनि··बसै=सभी घटो अर्थात् शरीरो मे प्रभु बसा हुआ है। सह=स्वामी, ईश्वर। जिन्हा होइ=जिसके हृदय मे वह स्वामी सद्गुरु के उपदेश से प्रकट हो गया।

जउ तउ प्रेम खेलण का चाउ। सिरु धरि तली गली मेरी आउ॥
इतु मारगि पैरु धरीजै। सिरु दीजै काणि न कीजै॥७॥

———

७ जउ तउ=जो तुझे। सिरु धरि तली=सिर को याने अपनी अहंता को पैरों के नीचे कुचलकर। काणि न कीजै=संकोच न करना।

गुरु अंगद्

चोला-परिचय

जन्म-सवत्—१५६१ वि०, वैशाख ११
जन्म-स्थान—हरिके गॉव
पिता—फेरू
माता—दयाकौर
जाति—खत्री
गुरु—बाबा नानकदेव
भेष—गृहस्थ
मृत्यु-संवत्—१६०६ वि, चैत्र शु० १०

फीरोजपुर जिले के अंतर्गत मुक्तसर से लगभग छह मील पर मत्ते दी सराय नाम के एक गॉव मे फेरू नाम का एक व्यापारी रहता था। बाद में वह हरिके नामक एक दूसरे गॉव मे जाकर बस गया। यहॉ उसका व्यापार बहुत अच्छा चला। फेरू ने यहॉ दयाकौर के साथ अपना दूसरा विवाह कर लिया। इन्ही दयाकौर के गर्भ से गुरु अंगद का जन्म हुआ, और इनका नाम लहिणा रखा गया।

लहिणा ने मत्ते दी सराय की एक स्त्री के साथ अपना ब्याह किया, जिसका नाम खीवी था। कालान्तर मे खीवी से एक पुत्री और दो पुत्र हुए। लडकी का नाम था अमरो और लडको के नाम थे दासू और दातू।

ये लोग हरिके गॉव से उठकर फिर मत्ते दी सराय मे रहने लगे। मगर मुगलो और बलूचियो के हमले से जब मत्ते दी सराय तबाह हो गया, तब ये लोग खडूर नामक गॉव मे चले आये। यह गॉव अमृतसर जिले की तरनतारन तहसील मे है।

लहिणा पहले दुर्गा के उपासक थे। जिस घटना से वह दुर्गा की उपासना छोड़कर बाबा नानक के अनन्य भक्त हो गये वह यह है। खडूर में जोधा नाम का एक सिक्ख रहता था। गुरु नानक का यह परमभक्त था। रात के पिछले पहर वह नित्यप्रति जपुजी का तथा आसा दी वार का पाठ किया करता था। एक सुंदर रात्रि को लहिणा ने जोधा के मुख से ये मधुर कड़ियाँ बड़े ध्यान से सुनी और वह उधर आकृष्ट होगये —

"जितु सेविऐ सुख पाईऐ सो साहिबु सदा समालीऐ।
जितु कीता पाईऐ आपणा सा घाल बुरी किउ घालीऐ॥
मदा मूलि न कीचई दे लमी नदरि निहालीऐ॥
जिउ साहिब नालि न हारीऐ तेवे हा पासा ढालीऐ॥
किछु लाहे उपरि घालीऐ।"

अर्थात्—सदा याद रख तू उस मालिक को, जिसकी सेवा करने से ही तुझे सच्चा सुख मिलेगा।

ऐसे बुरे कर्म तूने किये ही क्यो, जिनके कारण तुझे ये सारे दुःख भोगने पड़े?

तू बुरा काम बिल्कुल न कर, अपनी ओर तू अच्छी तरह नजर डाल;

ऐसा पासा फेक, जिससे कि तू मालिक के साथ बाजी न हारे, बल्कि तुझे कुछ लाभ हो

सवेरा होते ही लहिणा ने जोधा से पूछा कि, 'वह किसका रचा भजन था, जो तुम बड़े प्रेम से रात को गा रहे थे?'

'बाबा नानक का रचा' जोधा ने कहा, 'परमात्मा के वे बड़े ऊँचे भक्त हैं। रावी के किनारे वे करतारपुर में विराजते हैं।'

सुनते ही लहिणा का गुरु-विरहातुर मन व्याकुल हो उठा बाबा नानक के दर्शन को, और वह सयोग भी आ गया। अपने कुटुम्बियों और कुछ मित्रों को लेकर वे ज्वालामुखी की यात्रा करने जा रहे थे। रास्ते में करतारपुर पड़ता था। वहाँ ठहर गये बाबा नानक का दर्शन करने के लिए। दर्शन किया और बाबा के उपदेश भी सुने। अतर का चोला पलटगया। दृष्टि खुलगई। इरादा बदल दिया। आगे नहीं बढ़े, हालाकि साथ के यात्रियों ने बहुत समझाया। बाबा

के चरणों को पकड़ लिया, वहीं जमकर बैठ गये। पर सद्गुरु ने कहा—'अभी तू घर लौटजा ; बाल-बच्चो से मिलकर कुछ दिनों के बाद फिर मेरे पास आ जाना, तब तुझे मै अंगीकार करूँगा।'

घर एक बार लौटकर चले तो गये, पर मन को वहीं छोड़कर। घरवालो को समझा-बुझाकर फिर करतारपुर चले आये। साँझ का समय था। बाबा नानक तब खेत पर थे। गाय-भैसो के लिए घास लाने गये थे। वहींपर लहिणा सीधे पहुँचे और घास के तीन बड़े-बड़े गट्ठरो को एकसाथ ही सिर पर लादकर गुरु के घर ले आये। पानी और गीली मिट्टी से सारे कपडे सन गये थे। घास के इन गट्ठरो को एक-एक करके भी ले जाने के लिए बाबा के दोनो पुत्र भी तैयार नहीं हुए थे। गुरु-सेवा की यह लहिणा की पहली परीक्षा थी।

एक साल गुरु नानकदेव के घर की कच्ची दीवार अति वर्षा के कारण गिर पडी थी। गुरु की आज्ञा से उस दीवार को तीन बार गिरा-गिराकर इन्होंने अकेले ही उठाया था। और भी कितने ही अवसरो पर गुरु नानक ने लहिणा की कठिन-से-कठिन परीक्षाएँ ली, और यह उनमे उत्तीर्ण हुए। आज्ञा पालन में यह हमेशा सब शिष्यो और दोनो पुत्रो से भी आगे रहते थे। 'टिक्के दी वार' मे आया है —'जिनि कीती सो मंनणा को सालु जिवाहे साली।' अर्थात्, लहिणा ने गुरु नानक की हरेक आज्ञा का पालन किया, चाहे वह आज्ञा आवश्यक हो, या अनावश्यक—चाहे वह भटकटैया हो, चाहे धान। इस पंक्ति का यह भी एक अर्थ किया जाता है कि, 'गुरु नानक के दोनो पुत्र भटकटैया थे और लहिणा था धान।' गुरु नानकदेव ने अच्छी तरह परखकर देख लिया कि लहिणा ही उनका एक ऐसा शिष्य है, जो उनकी गद्दी का अधिकारी हो सकता है, और इन्हे ही उन्होंने अपनी जगह बिठलाकर भाई बुड्ढा के हाथ से तिलक करा दिया। गुरु की आज्ञा से यह खडूर में जाकर रहने लगे।

गुरु नानकदेव का शरीर छुट जाने पर गुरु अंगद को उनके वियोग का दुःख इतना अधिक असह्य हुआ कि वे एक बंद कोठरी के अंदर जाकर बैठ गये और वहाँ एकान्त मे गुरु के ध्यान मे निरन्तर लौलीन रहने लगे। गुरु नानक के एक प्रमुख शिष्य भाई बुड्ढा ने बडी मुश्किल से खोजते-खोजते इनका पता लगाया और उस बंद कोठरी से इन्हे बाहर निकाला। गुरु अंगद ने भाई बुड्ढा को छाती से लगाकर उस समय यह सलोक कहे :—

"जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलिऐ।
ध्रिगु जीवण संसार ताकै पाछै जीवणा॥
जो सिरु साईं ना निवै सो सिरु दीजै डारि।
नानक जिसु पिंजर महि बिरहा नहीं, सो पिंजरु लै जारि॥"

गुरु अगद् का नित्य का कार्यक्रम तबसे बराबर यह रहने लगा—बडे सवेरे उठकर ठडे पानी से नहाना, कुछ समयतक आत्म-चिंतन व जपुजी का पाठ करना, गायकों से आसा दी वार का गान सुनना, और फिर दीन दुखियो और रोगियों, खासकर कोढियो को जाकर देखना और उनकी सेवा शुश्रूषा करना, लोगों को गुरु नानक की शिक्षाओ का उपदेश देना और लगर मे सबको, बिना किसी भेद-भाव के, प्रम के साथ भोजन कराना और किसी-किसी दिन छोटे-छोटे बच्चो के खेल देखना।

शेरशाह द्वारा परास्त हुमायूँ बगाल से जब पश्चिम की तरफ विवश होकर भागा, तब उसे रास्ते मे मालूम हुआ कि गुरु नानकदेव की गद्दी पर गुरु अगद, जो एक पहुँचे हुए फकीर हैं, उपदेश दे रहे हैं। उसने खडूर जाकर गुरु साहब के दर्शन किये, और उनसे आशीर्वाद मॉगा, जो उसे मिला। कुछ दिन मुसीबतें झेलते के बाद वह विजयी हुआ।

गुरु अगद ने ही सबसे पहले गुरु नानकदेव के पदा, पौडियो और सलोको का सग्रह कराकर 'गुरुमुखी' नाम की एक नई लिपि मे लिखवाया। इसलिपि का आविष्कार गुरु अगद ने स्वय ही किया। इसमे केवल ३५ अक्षर हैं।

परम गुरुभक्त शिष्य अमरू को गुरु-गद्दी पर बिठलाकर और पॉच पैसे और एक नारियल उसके आगे भेटस्वरूप रखकर गुरु अगद ने उसे अपना उत्तराधिकारी बना दिया। अमरू उस दिन से गुरु अमरदास के नाम से प्रख्यात हो गये।

चैत सुदी ३, सवत् १६०९ को गुरु अगद ने सिक्खो को एक बहुत बडा भडारा दिया, और सिक्ख धर्म के सिद्धातो पर दृढ रहने के लिए उन्हे अच्छी तरह समझाया। दूसरे दिन चौथ को बडे सवेरे स्नान करके जपुजी का पाठ किया, और 'वाह गुरु, वाह गुरु' कहते हुए चोला छोड दिया।

गुरु अमरदास को गोइदवाल मे जाकर रहने का आदेश देगये।

बानी-परिचय

गुरु अंगद ने बहुत अधिक रचना नहीं की। गुरु नानकदेव की सेवा-बंदगी करते और उनकी बानी का अपूर्व रस लेते-लेते ही उनका सारा समय बीता। जो थोड़ी-सी बानी गुरु अंगद की ग्रन्थ साहब में महला २ के अंतर्गत संगृहीत मिलती है, वह भिन्न-भिन्न रागों की 'वारों' के रूप में है। 'आसा की वार' में तो इनके अनेक सलोक हैं ही, रामकली, सारंग, मलार, सूही, सिरी, सोरठ और मॉझ की भी वारों में इनके कई सलोक और पौड़ियाँ हैं।

गुरु अंगद ने सीधी-सादी मगर चुभती भाषा में प्रेम का और विरह और वैराग्य का बड़ा सुन्दर निरूपण किया है। गुरु-भक्ति की महिमा के कुछ सलोक तो इनके अनूठे हैं। पद-पद में आत्मानुभूति छलकती है। कुछ रचना तो इनकी ऐसी हैं, जो गुरु नानक की बानी से बिल्कुल मिल जाती है। माझ और सारंग की वारें तो बहुत ही मधुर हैं। कहते हैं कि 'गुरुमुखी' लिपि का आविष्कार कर चुकने पर आनन्द-विह्वल होकर गुरु अंगद ने सारंग की वार की रचना की थी। हरि-नाम का आकंठ अमृत पीकर सारंग की वार में यह सलोक इन्होंने वस्तुतः परमतृप्ति की ऊँची अवस्था में कहा है—

"जिन वडिआई तेरे नाम की यह रते मन माहि।
नानक अमृतु एक है दूजा अमृतु नाहि॥
नानक अमृतु मनै माहि पाईए गुरपरसादि।
तिनी पीता रंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि॥"

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब, सर्वहिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग २), मॅकालीफ

आसा की वार

सलोक

जे सउ चदा उगवहि सूरज चड़हि हजार ॥
एते चानण होदिआं गुर बिनु घोर अधार ॥१॥

इहु जगु सचै की है कोठड़ी सचे का विचि वासु ॥
इकन्हा हुकमि समाइ लए इकन्हा हुकमे करे विणासु ॥
इकन्हा भाणै कढ़ि लए इकन्हा माइआ विचि निवासु ॥
एव भि आखि न जापई जि किसै आणे रासि ॥
नानक गुरमुखि जाणीऐ जाकउ आपि करे परगासु ॥

पउड़ी

नानक जीअ उपाइकै लिखि नावै धरमु बहालिआ ॥
ओथै सचो ही सचि निबड़ै चुणि वखि कढे जजमालिआ ॥

---

१ यदि सौ चद्र उदय हो, और हजार सूरज भी आकाश पर चढ जाये, तो भी इतने (प्रचड) प्रकाश (-पुंज) मे भी बिना गुरु के घोर अधकार ही छाया रहेगा।

२ जगत् यह सत्य की कोठरी है, इसके अदर निवास सत्य का है।
किसीको तो वह अपनी आज्ञा से अपने आपमे लीलीन करलेता है, और किसीको अपनी आज्ञा से नष्ट कर देता है।
किसीको अपनी मरजी से वह माया मे से खीच लेता है, और किसीको माया मे ही रहने देता है।
यह कहा भी नहीं जासकता कि वह किसे लाभ पहुँचाता है।

थाउ न पाइनि कूड़िआर मुह काल्है दोजकि चालिआ ॥
तेरै नाइ रते से जिणि गए हारि गए सि ठगण वालिआ ॥
लिखि नावै धरमु वहालिआ ॥२॥

सलोक

हउमै एहा जाति है हउमै करम कमाहि ॥
हउमै एई बंधना फिरि फिरि जोनी पाहि ॥
हउमै कित्थुहु ऊपजै कितु संजमि इह जाइ ॥
हउमै एहो हुकमु है पाइऐ किरति फिराहि ॥
हउमै दीरघ रोगु है दारू भी इसु माहि ॥
किरपा करे जि आपणी ता गुर का सबदु कमाहि ॥
नानकु कहै सुणहु जनहु इतु संजमि दुख जाहि ॥

नानक उसीको पवित्रात्मा जानना चाहिए, जिसके अंतर मे वह अपना प्रकाश भरदे ।

नानक, उसने जीवो को जन्म देकर उनके नाम लिखलिये, और (उनके कर्मो के अनुसार न्याय करने के लिए) धर्मराज को नियुक्त कर दिया ।

उसके न्यायालय मे सच्चो को ही न्याय मिलता है, जो जजाल-ग्रस्त होते हैं, उन्हे वह चुन चुनकर निकाल बाहर कर देता है,

वहॉ झूठे को जगह नही मिलती; वे मुहॅ को काला करके नरक जाते ह ।

जो तेरे नाम मे अनुरक्त हो गये, उन्हींकी जीत होती है, जो ठग होते हैं वे बाजी हार जाते हे ।

परमात्मा ने नाम लिख लिये हें, और धर्मराज को नियुक्त कर दिया है ।

२ अहकार स्वभावतः अहकार के ही कर्म कराता है ।

अहकार वह (भव-) बन्धन है, जिससे बारबार जन्म लेना पडता है।

अहंकार यह उत्पन्न कहॉसे होता है, इसका मूल क्या है, और किस साधन से यह नष्ट हो सकता है ?

अहकार वह आदेश है कि मनुष्य अपने कृत कर्मो के अनुसार (संसार-चक्र पर) घूमता ही रहे ।

पउडी

सेव कीती संतोखई जिन्ही सचो सचु धिआइआ ॥
ओन्ही मंदै पैरु न रखिओ करि सुकृत धरमु कमाइआ ॥
ओन्ही दुनीआ तोड़े बंधना अनु पाणी थोड़ा खाइआ ॥
तू बखसीसा अगला नित देवहि चड़हि सवाइआ ॥
वड़िआई वड़ा पाइआ ॥३॥

सलोक

एह किनेही आसकी दूजै लग्गै जाइ ॥
नानक आसकु कांढ़ीऐ सदही रहै समाइ ॥
चगै चगा करि मंने मदै मदा होइ ॥
आसकु एहु न आखीऐ जि लेखै वरतै सोइ ॥४॥

अहंकार जीर्ण रोग अवश्य है, पर उसकी एक औषधि भी है, और वह हमारे अदर ही है।

यदि परमात्मा अपनी कृपा करदे, तो गुरु का उपदेश सुलभ हो सकताहै।

नानक कहता है कि, हे मनुष्यो! इसी एक साधन से दुःख का निवारण हो सकेगा।

उन्होंने ही सच्ची सेवा-बदगी की है, और उन्हे ही संतोष प्राप्त हुआ है जिन्होंने कि परम सत्य के रूप मे परमात्मा का ध्यान किया है।

उन्होने बुरे मार्ग पर कभी पैर नही रखा, सदा सुकर्म ही किया है, और धर्म की ही कमाई की है।

उन्होने ससार के बधन तोडकर फेक दिये हैं, और थोडे-से अन्न और जल पर उन्होने अपना निर्वाह किया हैं।

तू बडे-से-बडा दाता है ; तू सदा ही देता है जो सवाया हो जाता है।

उसे उन्होंने ही पाया, जिन्होने कि उसे बडे-से-बडा भी माना।

४ वह आशिकी कैसी जो दुनिया की चीजो मे उलझ जाये? नानक, तू तो उसीको आशिक कह, जो सदा प्रियतम की प्रीति मे लौलीन रहता है।

जो मन मे ऐसा लाता है कि अच्छा अच्छा है, और बुरा बुरा है, और इसी तरह बरतता है, वह सच्चा आशिक नहीं कहा जायगा।

सलामु जवाबु दोवै करे मुढहु घुत्था जाइ ॥
नानक दोवै कूडीआ थाइ न काई पाइ ॥५॥

चाकरु लगै चाकरी नाले गरबु वादु ॥
मल्ला करे घणेरीआ खसम न पाए सादु ॥
आपु गवाइ सेवा करे ता किछु पाए मानु ॥
नानक जिसनो लग्गा तिसु मिलै लग्गा सो परवानु ॥६॥

जो जीइ होइ सु उगवै मुह का कहिआ वाउ ॥
बीजे बिखु मंगै अमृतु देखहु एहु निआउ ॥७॥

नालि इआणे दोसती कदे न आवै रासि ॥
जेहा जाणै तेहो वरते वेखहु को निरजासि ॥

---

५ जो मनुष्य मालिक की वंदना करता है और साथ-ही-साथ उसे जवाब भी देता है, या उसके कामों मे दोष निकालता है, उसने शुरू से ही गलती की है।

उसकी वदना और उसकी आलोचना दोनों ही अर्थहीन हैं ; उसे, नानक, मालिक के दरबार मे जगह मिलने की नही।

६ नौकर नौकरी करते हुए जब गरूर करता है, और झगडा भी,

और बहुत बकझक भी करता है, तो इससे वह अपने मालिक को खुश नही करता।

अपने आपको खोकर यदि वह सेवा करे, तो उसे कुछ आदर मिलेगा।

नानक, मालिक को वही पा सकेगा, जिसके मन मे उससे मिलने की अभिलाषा होगी, और उसकी अभिलाषा अवश्य पूरी होगी।

७ जो मन मे होता है, वही मुँह से निकलता है।

विष बोता है, और अमृत पाने की आशा करता है, देखो तो इस न्याय को।

८ मूर्ख के साथ मित्रता करने से कभी लाभ नहीं होगा।

वसतू अंदरि वसतु समावै दूजी होवै पासि ॥
साहिब सेती हुकमु न चल्लै कही बणै अरदासि ॥
कूड़ि कमाणै कूड़ो होवै नानक सिफति विगासि ॥८॥

नालि इआणै दोसती वडारू सिउ नेहु ॥
पाणी अंदरि लीक जिउ तिसदा थाउ न थेहु ॥९॥

होइ इआणा करे कमु आणि न सक्कै रासि ॥
जे इक अध चंगी करे दूजी भी वेरासि ॥

पउड़ी

चाकरु लग्गै चाकरी जे चल्लै खसमै भाइ ॥
हुरमति तिसनो अग्गली ओहु वजहु भि दूणा खाइ ॥

वह अपनी समझ से काम करता है; देखे और परखे कोई उसका काम।

पहले (भाडे मे से) दूसरी वस्तु निकाल देने पर ही कोई वस्तु उसमें रखी जा सकती है।

(अर्थात्, सासारिक प्रेम से हृदय खाली करने के बाद ही परमात्मा का प्रेम उसमे प्रवेश पायेगा।)

मालिक के ऊपर हुक्म नही चल सकेगा, वहाँ तो विनती से ही काम चलेगा।

झूठ की कमाई से झूठ ही हाथ आयेगा,

नानक! प्रभु की स्तुति मे ही सच्चा आनन्द है।

९ अजान के साथ की मित्रता और बडे आदमी के साथ का प्रेम पानी पर खींची हुई लकीरों की तरह हैं, जिनकी न रेख है, न चिह्न।

१० यदि कोई आज अजान है और वह कोई काम करने बैठजाये, तो उसे वह ठीक तरह से नही कर सकता,

भलेही एकाध काम वह ठीक तरह से करले, पर बाकी का सारा काम तो वह बिगाड ही देगा।

यदि नौकर अपने मालिक की मरजी के अनुसार काम करता है, तो

खसमै करे बराबरी फिरि गैरति अंदरि पाइ ॥
वजहु गवाए अगला मुहे मुहि पाणा खाइ ॥
जिसदा दित्ता खावणा तिसु कहीऐ साबासि ॥
नानक हुकमु न चल्लई नालि खसम चल्लै अरदासि ॥१०॥

एह किनेही दाति आपस ते जो पाईऐ ॥
नानक सा करमाति साहिब तुट्ठै जो मिलै ॥११॥

एह किनेही चाकरी जितु भउ खसम न जाइ ॥
नानकु सेवकु काढीऐ जि सेती खसम समाइ ॥

पउडी

नानक अंत न जापन्ही हरि ताके पारावार ॥
आपि कराए साखती फिरि आपि कराये मार ॥

उसका अधिक मान होता है, और उसे दूनी तलब मिलती है।

यदि वह मालिक की बराबरी करता है, तो वह अपनी ईर्ष्या को बढावा देता है, अपनी भारी तलब को गँवा बैठता है, और मुँह पर जूते खाता है।

धन्य है वह, जिसका दिया हुआ तू खाता है।

नानक, हुक्म तेरा नहीं चलेगा, मालिक के आगे तेरी एक विनती ही चलेगी।

११ वह दान कैसा, जो हमारे खुद के माँगने से हमें मिले!

नानक, दान वही अलौकिक है, जो परमात्मा के प्रसन्न होने से हमें मिलता है।

१२ वह कैसी नौकरी, जिसे करने से मालिक का भय नहीं चला जाता! (अर्थात्, जबकि मालिक और नौकर के बीच अविश्वास रहता है, और नौकरी बिना प्रेम के की जाती है।)

इकन्हा गली जजीरीआ इकि तुरी चड़हि बिसीआर ॥
आपि कराए करे आपि हउ कैसिउ करी पुकार ॥
नानक करणा जिनि कीआ फिरि तिसही करणी सार ॥१२॥

सलोक

आपे साजे करे आपि जाई भि रक्खै आपि ॥
तिसु विचि जत उपाइकै देखै थापि उथापि ॥
किसनो कहीऐ नानका सभु किछु आपे आपि ॥

पउड़ी

वडे कीआ वडिआईआ किछु कहणा कहणु न जाइ ॥
सो करता कादर करीमु दे जीआ रिजकु सबाहि ॥

नानक, नौकर उसीको कहना चाहिए, जो सदा अपने मालिक के प्रेम मे लौलीन रहता है।

नानक, हरि का अंत किसीने देखा नही, और उसका न इधर का पार पाया, न उधर का।

वह आपही रचता है, और फिर आपही नष्ट कर देता है।

किसीके गले मे जजीर पडी है, और कोई घोडो पर चढ़े फिरते हैं।

वह आपही कराता है और आपही करता है, हम शिकायत करे तो किससे ?

नानक, जिसने यह सारी सृष्टि रची है, वही उसकी सार-सॅभाल करे।

१३ आपही वह सजाता है, आपही जहॉ जिस वस्तु को बनाकर रखना है वहॉ रख देता है ;

इस संसार मे जीव-जतुओ को पैदाकर वह स्वयं उनका जन्म और उनका मरण देखता रहता है।

किससे कहें हम, नानक, जबकि वह आपही सब कुछ करता है ?

उस महान् की महामहिमा कुछ कहते नही बनती ;

वही कर्त्ता है, वही सर्वशक्तिमान है, वही दाता है ,

साई कार कमावणी धुरि छोड़ी तिनै पाइ ॥
नानक एको बाहरी होर दूजी नाही जाइ ॥
सो करे जि तिसै रजाइ ॥१३॥

हेदे थावहु दिसा चंगा मनमुखि ऐसा जाणीऐ।
सुरति मति चतुराई ताकी किआ करि आखि वखाणीऐ ॥
अंतरि बहिकै करम कमावै सो चहु कुंडी जाणीऐ।
जो धरमु कमावै तिसु धरम नाउ होवै पापि कमाणै पापी जाणीऐ ॥
तूं आपे खेल करहि सभि करते किआ दूजा आखि वखाणीऐ ॥
जिच्चर तेरी जोति तिच्चर जोती विचि तू बोलहि

वही अपने पैदा किये जीवों को आहार पहुँचाता है।

मनुष्य को सिरे से ही वह कर्म करना चाहिए, जिसका कि परमात्मा ने उसे निर्देश कर रखा है।

नानक, एक वही ऐसा परमपद है जिसमें कि हम रम सकते हैं, दूसरा ऐसा और कोई भी पद नहीं।

जो उसे भाता है वही वह करता है।

१४ मनमुखी लोग (दुष्टजन) सोचते हैं कि दाता की अपेक्षा दान अच्छा है। क्या कहा जाये उनकी बुद्धि को, उनकी समझ को, और उनकी होशियारी को।

जो छिपकर कर्म करता है वह चारों ओर उजागर हो जाता है,

जो धर्म का साधन करता है वह धर्मात्मा कहा जाता है, और जो पाप करता है, वह पापी।

हे कर्त्तार, तू स्वय ही सारी लीला रचता है।

जबतक इस घट के अंदर तेरी ज्योति जलती है, तबतक तू इसमें बोल रहा है—

विणु जोती कोई किछु करिहु दिखा सिआणीऐ ॥
नानक गुरमुखि नदरी आइआ हरि इको सुघडु सुजाणीऐ ॥१४॥

अक्खी बाझहु वेखणा विणु कन्ना सुनणा ॥
पैरा बाझहु चलणा विणु हत्था करणा ॥
जीभै बाझहु बोलणा इउ जीवत मरणा ॥
नानकु हुकमु पछाणिकै तउ खसमै मिलणा ॥१५॥

दिस्सै सुणीऐ जाणीऐ साउ न पाइआ जाइ ॥
रुहला टुंडा अंधुला किउ गलि लग्गै धाइ ॥

तेरे बिना यदि किसीने कुछ किया हो तो मुझे वह दिखादे जिससे कि मै उसे पहचानलूँ ।

नानक, गुरु के उपदेश से ही वह हरि दृष्टि मे आता है, और चतुर और बुद्धिमान वही एक है ।

१५ बिना आँख के देखना, बिना कान के सुनना,
बिना पैर के चलना, बिना हाथ के काम करना,
बिना जीभ के बोलना—यह जीते-जी मर जाना है ।

नानक, जो परमात्मा के हुक्म को पहचानता है, वह उसमें लौलीन हो जायेगा ।

१६ हम देखते हैं, और सुनते हैं और जानते हैं कि परमात्मा सासारिक विषय-भोगों के वीच प्राप्त नहीं किया जा सकता ।

बिना पैर, बिना हाथ और बिना आँख के उसे गले लगाने के लिए कैसे दौडा जा सकता है ?

(भाव यह है कि जबतक मनुष्य सासारिक भोगो मे लिप्त है, तबतक वह बिना पैर का, बिना हाथ का और बिना आँख का ही है ।)

(ईश्वर-) भीरुता के बना तू चरण, भाव के बना हाथ, और सुरति के बना तू नेत्र ।

भै के चरण कर भाव के लोइण सुरति करेइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इव कंत मिलावा होइ ॥१६॥

रामकली की वार

सलोक

नानक चिंता मति करहु चिंता तिसही हेइ ॥
जल महि जत उपाइअनु तिना भी रोजी देइ ॥
ओथै हटु न चलई ना को किरस करेइ ॥
सउदा मूलि न होवई ना को लए न देइ ॥
जीआ का आधारु जीअ खाणा एहु करेइ ॥
विचि उपाए साइरा तिना भि सार करेइ ॥
नानक चिंता मत करहु चिंता तिसही हेइ ॥१॥

साहिब अंधा जो कीआ करे सुजाखा होइ ॥
जेहा जाणै तेही वरतै जे सउ आखै कोइ ॥

नानक कहता है, इस प्रकार हे सयानी सखी, तू अपने कंत से मिल सकेगी।

१ तिसही हेइ=उसे (परमात्मा को) ही है। उपाइअनु=पैदा किये। तिना=उनको। ओथै=वहाँ। हटु=हाट, दूकान। ना को किरस करे=न कोई खेती (या व्यापार) करता है। आधारु=आहार। एहु=वही (परमात्मा)। करेइ=जुटाता है। विचि उपाए साइरा=सागर के बीच में जिनको पैदा किया है। तिना भी सार=उनकी भी सँभाल करता है।

२ साहिब ... कोइ=जिसे परमात्मा ने अन्धा बना दिया उसे वह स्पष्ट दृष्टि दे सकता है। मनुष्य को जैसा वह जानता है, वैसा उसके साथ बर्ताव करता है, भले ही उसके विषय में मनुष्य सौ बातें कहे, अथवा कुछ भी कहे।

जिथै सु वसतु न जापई आपे वरतउ जाणि ॥
नानक गाहकु किउ लए सकै न वसतु पछाणि ॥
सो किउ अंधा आखीऐ जि हुकमहु अंधा होइ ॥
नानक हुकमु न बुझई अंधा कहीऐ सोइ ॥२॥

अधे कै राहि दसिऐ अंधा होइ सु जाइ ॥
होइ सुजाखा नानका सो किउ उझड़ि पाइ ॥
अधे एहि न आखीअनि जिन मुखि लोइण नाहि ॥
अंधे सेई नानका खसमहु घुत्थे जाहि ॥३॥

रतना केरी गुथली रतनी खोली आइ ॥
वखर तै वणजारिआ दूहा रही समाइ ॥
जिन गुणु पलै नानका माणक वणजहि सेइ ॥
रतना सार न जाणई अंधे वतहि लोइ ॥४॥

वसतु=वस्तु, परमात्मा से आशय है। न जापई=नही दिखाई देता। आपे वरतउ जाणि=जान लो कि अहकार वहाँ प्रवृत्त है। किउ लए=क्यों खरीदे। आखिऐ=कहे। हुकमहु=(परमात्मा की) मरजी से। न बुझई=नही समझता।

३ अधेकै .... जाइ=अंधे के दिखाये रास्ते पर जो चलता है, वह स्वयं ही अन्धा है। सुजाखा=अच्छी दृष्टिवाला, जिसे अच्छी तरह सूझता या दीखता है। किउउझडि पाइ=क्यो उजाड मे भटकने जाय। एहि=उनको। आखीअनि=कहा जाय। मुखि लोइण नाहि=चेहरे पर आँखे नही हैं। खसमहु घुत्थे जाहि=स्वामी से भटक गये, उसका रास्ता भूल गये।

४ यदि जौहरी आकर रत्नों की थैली खोलदे, तो वह रत्नो को और गाहक को मिला देता है।

(अर्थात्, वह गुरु या सतपुरुष, गाहक या साधक से हरिनामरूपी रत्न को खरीदवा देता है।)

नानक अंधा होइकै रतन परखण जाइ ॥
रतना सार न जाणई आवै आपु लखाइ ॥५॥

जपु जपु सभु किछु मंनिऐ अवरि कारा सभि बादि ॥
नानक मंनिआ मनीऐ बुझीऐ गुरपरसादि ॥६॥

सिफति जिन्हा कउ बखसीऐ सेई पोतेदार ॥
कुंजी जिन कउ दितीआ तिन्हा मिले भंडार ॥
जह भंडारी हू गुण निकलहि ते कीअहि परवाणु ॥
नदरि तिन्हा कउ नानका नामु जिन्हा नीसाणु॥१॥

कीता किआ सालाहीऐ करे सोइ सालाहि ॥
नानक एकी बाहरा दूजा दाता नाहि ॥

नानक, गुणवान (पारखी) ही ऐसे रत्नों को बिसाहेंगे, किन्तु जो लोग रत्नों का मोल नहीं जानते, वे दुनिया में अन्धों की तरह भटकते हैं।

५ सार=कीमत। आवै आपु लखाइ=अपना प्रदर्शन करके (अपना मजाक कराकर) लौट जायेगा।

६ जप, तप, सबकुछ उसकी आज्ञा पर चलने से प्राप्त हो जाता है, और सब काम व्यर्थ हैं।
उसी (मालिक) की आज्ञा तू मान, जिसकी आज्ञा मानने-योग्य है। अथवा उस संतपुरुष की आज्ञा मान, जिसने स्वयं उसकी आज्ञा को माना है); गुरु की कृपासे ही उसे हम जान सकते हैं।

१ जिनको उसका गुण गान बख्शीस में मिला है वेही सच्चे हैं,
जिन्हें कुंजी दी गई है, उन्हें ही वे भंडार मिलते हैं।
वे ही भंडार मान्य या प्रमाणित हैं, जिनसे कि सुकर्म प्रकट होते हैं।
नानक, उन्हींपर परमात्मा की कृपा-दृष्टि होती है, जिन्होंने कि उसके नाम को अपना निशान बना लिया है।

२ सृष्टि की सराहना क्यों करता है तू? तू तो सिरजनहार की सराहना कर।

करता सो सालाहीऐ जिनि कीता आकारु ॥
दाता सो सालाहीऐ जि सभसै दे आधारु ॥
नानक आपि सदीव है पूरा जिसु भंडारु ॥
वडा करि सालाहीऐ अंतु न पारा वारु ॥२॥

जिन वडिआई तेरे नाम की ते रते मन माहि ॥
नानक अंमृतु एकु है दूजा अमृतु नाहि ॥
नानक अमृतु मनै माहि पाईऐ गुरपरसादि ॥
तिनी पीता रंग सिउ जिन कउ लिखिआ आदि ॥३॥

आपि उपाए नानका आपे रखै वेक ॥
मंदा किसनो आखीऐ जा सभना साहिबु एकु ॥
सभना साहिबु एकु है वेखै धंधै लाइ ॥
किसै थोड़ा किसै अगला खाली कोई नाहि ॥

नानक, सिवा उस मालिक के दूसरा कोई देनेवाला नहीं, जिसने सब को सहारा दे रखा है। नानक, वह परमात्मा ही सदा रहनेवाला है, जिसने कि सारे भंडारों को भर रखा है।

उसी बड़े-से-बड़े की तू सराहना कर, जिसका न तो अंत है न कोई पार।

३ जिन मन माहि=जिन्होंने तेरी महिमा को जान लिया, उन्हें ही हार्दिक आनन्द मिला। गुर परसादि=गुरु की कृपा से। तिनी.. ...आदि= जिनके माथे पर आदि से ही लिख दिया गया है, वे ही आनन्द से उस अमृत का पान करते हैं।

४ आपि उपाए वेक=नानक कहता है, तूने स्वयं ही सबको पैदा किया है, और तूने ही सब जीवों को उनके अलग अलग स्थानों पर रख दिया है। मंदा किसनो आखीए=छोटा किसे कहें। जा=जबकि, क्योंकि। वेखै धंधै लाइ=भिन्न-भिन्न काम-धंधों में लगाकर वह देखता रहता है।

आवहि नंगे जाहि नंगे विचे करहि विथार ॥
नानक हुकमु न जाणीऐ अगै काई कार ॥४॥

गुरु कुंजी पाहु निवलु मनु कोठा तनु छति ॥
नानक गुर विनु मन का ताकु न उघड़े अवर न कुंजी हथि ॥५॥

कथा कहाणी वेदीं आणी पापु पुंनु बीचारु ॥
दे दे लैणा लै लै देणा नरकि सुरगि अवतार ॥
उतम मधिम जातीं जिनसी भरमि भवै संसारु ॥
अमृत बाणी ततु वखाणी गिआन धिआन विचि आई ॥
गुरमुखि आखी गुरमुखि जाती सुरतीं करमि धिआई ॥

अगला=बड़ा। विचे करहि विथार=जन्म और मृत्यु के मध्य-काल मे; जीवन-काल मे प्रपच फैलाता है। अगै काईकार=आगे अर्थात् परलोक मे—अथवा अगले जन्म मे—किस काम मे वह लगायगा।

५ ताले की कुंजी तो गुरु के ही पास है, मन तेरा कोठा है और यह शरीर है उसकी छत।

नानक, बिना गुरु के मन (हृदय) का द्वारा खुल नही सकता, क्योंकि किसी दूसरे के पास उसकी कुजी नही है।

६ वेद पढनेवाले (देवताओ की) कथा-कहानियाँ लेकर आये है और पाप-पुण्य की उन्होंने व्याख्या की है।

मनुष्य जो-जो देते हैं वही पाते हैं, और जो-जो वे पाते है वही देते हैं, और इसलिए अपने कर्मो के अनुसार वे स्वर्ग या नरक मे जन्म लेते हैं।

दुनिया भ्रम मे भूल रही है कि कौन तो उत्तम जातियाँ हे और कौन मध्यम या नीची, और कितने प्रकार की हैं,

किंतु (गुरु की) अमृतवाणी तत्त्व (सत्यवस्तु) का वर्णन करती है, ऊँचे-से-ऊँचे ज्ञान और ध्यानतक पहुँचा देती है।

पवित्रात्मा उसका उच्चारण करते है, पवित्रात्मा उसे जानते हैं;

हुकमु साजि हुकमै विचि रखै हुकमै अंदरि वेखै ॥
नानक अगहु हउमै तुटै तां को लिखए लेखै॥६॥

मलार की वार

सलोक

नानक दुनीआ कीआं वडिआईआं अगी सेती जालि ॥
एन्ही जलीईं नामु विसारिआ इक न चलीआ नालि ॥१॥

नाउ फकीरै पातिसाहु मूरख पडित नाउ ॥
अंधे का नाउ पारखू एवै करे गुआउ ॥
इलति का नाउ चउधरी कूड़ी परे थाउ ॥
नानक गुरमुखि जाणीऐ कलि का एहु निआउ ॥२॥

जिन्हे वह ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त हो जाता है, वे उसमे लौलीन हो जाते हैं, और तदनुसार उनके सब कर्म भी होते हे ।

उसने अपनी आज्ञा से सबको रचा है, और उसी आज्ञा से वह सबको देखता रहता है ।

नानक, यदि मनुष्य के अहकार का अत हो जाय, तो वह उसके' लेखे मे आ सकता है।

१ नानक, दुनिया की बडाइयो मे लगादे आग ,

इन्ही आग-लगी बडाइयो ने तो उसका नाम बिसार दिया है , इनमे से एक भी तो (अत मे) तेरे साथ चलने की नहीं ।

२ लो, भिखमगे को तो कहा जाता है बादशाह, और मूर्ख को दे दिया है नाम पडित का,

अधे को कहते हे पारखी—ऐसी बाते चलती हे ।

बदमाश को कहते हैं चौधरी, और झूठ बोलनेवाले को पूरा सिद्ध ।

नानक, कलिकाल का यही न्याय है ।

(अच्छे और बुरे की) पहचान कैसे की जाय, यह तो गुरु के मुख (उपदेश) से ही जाना जा सकता है ।

सावणु आइआ हे सखी जलहरु बरसनहारु ॥
नानक सुखिसवनु सोहागणी जिन्ह सह नालि पिआरु ॥३॥

सावणु आइआ हे सखी कतै चिति करेहु ॥
नानक झूरि मरहि दोहागणी जिन अवरी लागा नेहु ॥४॥

सूही की वार
सलोक

जा सुखु ता सहु राविओ दुखि भी संम्हालिओइ ॥
नानकु कहै सिआणीए इउ कंत मिलावा होइ ॥१॥

किसही कोई कोइ मञु निमाणी इकु तू ॥
किउ न मरीजै रोइ जा लगु चिति न आवही ॥२॥

तुरदे कउ तुरदा मिलै उड़ते कउ उड़ता ॥
जीवते को जीवता, मिलै मुए कउ मूआ ॥
नानक सो सालाहीऐ जिनि कारणु कीआ ॥३॥

---

३ जलहरु=जलधर,मेघ। नालि=साथ। पिआरु=प्रियतम।

४ कतै चिति करेहु=पति का ध्यान करो। झूरि मरहि=जलकर मर जायगी। दोहागणी=अभागिनी, व्यभिचारिणी। अवरी लागा नेहु= दूसरे से प्रेम लगा रखा है।

१ जिसका नाम तू सुख मे याद करता है, दुःख मे भी उसे याद कर। नानक कहता है, हे सयानी, इसी तरह स्वामी से तेरा मिलन होगा।

२ किसीका कोई मित्र है, तो किसीका कोई; पर मेरा तो—जिसे कोई मान नही देता—एक तू ही है।
जबतक कि तू मेरे मन मे नही समाता, तबतक मै क्यों न रो-रोकर मरूँ?

३ तुरदे ···उडना=चलनेवालो का मेल चलनेवालों के साथ और उडनेवालों का मेल उडनेवालों के साथ होता है।
सालाहीए=सराहना करनी चाहिए। कारणु कीआ=इस महान् नियम (कानून) को स्थापित किया।

जिना भउ तिन नाहि भउ मुचु भउ निभविआह ॥
नानक एहु पटंतरा तितु दीवाणि गइआह ॥४॥

राति कारणि धनु सचीऐ भलके चलणु होइ ॥
नानक नालि न चलई फिरि पछुतावा होइ ॥५॥

जिन्ही चलणु जाणिआ से किउ करहि विथार ॥
चलण सार न जाणनी काज सवारणहार ॥६॥

माझ की वार

सलोक

अठी पहरी अठ खंड नावा खंडु सरीरु ॥
तिसु विचि नउ निधि नामु इकु भालहि गुणी गहीरु ॥
करमवती सालाहिआ नानक करि गुरु पीरु ॥
चउथै पहरि सबाह कै सुरतिआ उपजै चाउ ॥

---

४ जो परमात्मा से डरते हैं, उन्हे दूसरो से कोई डर नहीं, जो उससे नही डरते, उन्हे (पग-पग पर) बहुत डर है।
नानक, परमात्मा के न्यायालय मे दोनो को सामने खडा होना होगा।

५ राति कारणि=रात के लिए। सचीए=जोडता है, जमा करता है। भलके=सवेरे। नालि=साथ मे।

६ जो यह जानते हैं कि एक-न-एक दिन यहाँ से जाना ही है, वे प्रपच मे क्यों पडेगे?
अरे! वे अपने जाने की बात नहीं सोचते, बल्कि (अततक) दुनिया के काम-काज सँभालने मे लगे रहते हैं।

१ आठ पहरों मे मनुष्य दमन करके इन आठो को अपने वश मे करले, पाँचो भयंकर पापों अथवा पाँचों इन्द्रियां, और तीनो गुणों को और नवे अपने शरीर को।
एक प्रभु के नाम मे नौ निधियाँ भरी पडी हैं, जिसकी खोज मे बड़े-बड़े धर्मात्मा रहते हैं।

तिना दरीआवा सिउ दोसती मनि मुखि सच्चा नाउ ॥
ओथै अंमृतु वंडीऐ करमी होइ पसाउ ।
कंचन काइआ कसीऐ वन्नी चड़ै चड़ाउ ॥
जे होवै नदरी सराफ की बहुड़ि न पाई ताउ ॥
सत्ती पहरी सतु भला बहीऐ पड़िआ पासि ॥
ओथै पापु पुंनु वीचारीऐ कूड़ै घटै रासि ॥
ओथै खोटै सट्टीअहि खरे खीचहि साबासि ॥
बोलणु फादलु नानक दुख सुखु खसमै पासि ॥१॥

नानक, भाग्यवानों ने अपने गुरुओं और पीरों के दिखाये मार्ग से उस प्रभु की स्तुति की है।

सवेरे चौथे पहर जो उसका स्मरण करते हैं उन्हें अत्यन्त आनन्द होता है;

उन नदी-नालों से वे प्रेम करते हैं, (जिनमें कि वे नहाते हैं।) और सत्यनाम उनके हृदय में, और उनके मुख में होता है।

वहाँ अमृत बाँटा जाता है, और कर्मों के अनुसार उसकी कृपा भी।

कसी जाने पर काया कंचन-सी हो जाती है, उसपर खरा रंग चढ जाता है।

सराफ की नजर में चढ जाने पर उसे फिर से ताव पर चढाने की जरूरत नहीं रहती।

बाकी के सातों पहरों में अच्छा होगा कि मनुष्य सदा सत्य बोले और ज्ञानीजनों की संगति में बैठे।

वहाँ बुरे और भले कर्मों का विचार होता है, और असत्य की पूँजी घटती है;

वहाँ खोटों को रद्द कर दिया जाता है, और सच्चों को शाबाशी दी जाती है।

नानक, अपना दुःख और सुख कहना व्यर्थ है स्वामी से, क्योंकि वह सब-कुछ जानता है।

सोरठ की वार

नकि नथ खसम हथ किरतु धक्के दे ॥
जहां दाणे तहां खाणे नानक सचु है ॥१॥

सिरी राग की वार

जिसु पिआरे सिउ नेहु तिसु आगै मरि चलिऐ।
ध्रिगु जीवणु संसार ताकै पाछै जीवणा॥१॥

जो सिरु साईं ना निवै सो सिरु दीजै डारि॥
नानक जिसु पिंजर महि विरह नही, सो पिंजर लै जारि॥२॥

---

१ नकेल मालिक के हाथ मे हैं, मनुष्य अपने कर्मों के धक्के से चलता है।
नानक, यह सच है कि जहाॅ वह देता है वहीं मनुष्य खाता है।

१ जिस प्रीतम से तू प्रेम करता है, उसके रहते ही मरजा, उसके पीछे इस संसार मे जीना धिक्कार है।

२ काटकर फेकदे उस सिर को, जो प्रभु के आगे नही झुकता। नानक, जिस शरीर में विरह की वेदना नही, उसे लेकर तू जलादे।

गुरु अमरदास

चोला-परिचय

जन्म संवत—१५३६ वि०, वैशाख शु० १४

जन्म-स्थान—बासरका गाँव, (अमृतसर के पास)

पिता—तेजभान

माता—[illegible]

जाति—खत्री (भल्ला)

भेद—गृहस्थ

मृत्यु संवत—१६३१ वि०, भादों पूर्णिमा

तेजभान भल्ला के चार पुत्र थे, अमरदास उनमें सबसे बड़े थे।

अमरदास का विवाह, २४ वर्ष की उम्र में, मनसा देवी के साथ हुआ। इनको मोहरी और मोहन नाम के दो पुत्र हुए, और दानी और भानी नाम की दो पुत्रियाँ।

अमरदास एक पक्के वैष्णव धर्मानुयायी थे। हर एकादशी को व्रत रखते, और नित्यप्रति शालिग्राम की पूजा किया करते थे।

किन्तु उनका कोई गुरु नहीं था, और किसी ऐसे-वैसे को वह गुरु बनाना नहीं चाहते थे। बिना पूरे गुरु के हरि की बाट बताये तो कौन? सो सद्गुरु की खोज में वह व्याकुल रहने लगे।

एक दिन बड़े सवेरे इसी सोच-विचार में पड़े थे कि अपने छोटे भाई के घर से गुरु नानकदेव के एक पद की कुछ कड़ियाँ एक मधुर कंठ से निकलती हुई उन्होंने सुनीं। गुरु अंगद की पुत्री बीबी अमरो, जिनका ब्याह कुछ ही दिन पहले अमरदास के एक भतीजे के साथ हुआ था, उस पद को मारू राग में गा रही थी। कड़ियाँ वे इस पद की थीं—

"करणी कागदु मनु मसवाणी बुरा भला दुइ लेख पए।
जिउ जिउ किरतु चलाए तिउ चलीऐ तउ गुण नाही अतु हरे ॥
चित चेतसि की नही बावरिआ । हरि बिसरत तेरे गुण गलिआ ॥"

इस शब्द-बाण से अमरदास बिध गये । अतर के पट उनके खुल गये। बीबी अमरो से उन्होने इस आकर्षक पद को बार-बार दोहराने के लिए अनुरोध किया, और सुनकर बहुत आनन्दित हुए। उन्हे अब गुरु के निकट पहुँचने की वह विकट बाट सहज ही हाथ लग गई । बीबी अमरो ने गुरु अगद की शरण मे उन्हें पहुँचा दिया । गुरु की सेवा-बदगी मे वे अब मौज से रहने लगे ।

गुरु अगद की आज्ञा से अमरदास गोइन्दवाल नगर मे जाकर बैठ गये। गोविन्द नाम के एक मुकदमे मे फँसे हुए व्यक्ति ने गुरु अगद के आगे यह सकल्प किया था कि यदि वह मुकदमे को जीत गया तो एक नगर बसायेगा। भाग्य से वह मुकदमा जीत गया, और उसने व्यास नदी के तट पर उक्त नगर को बसाया। अमरदास ने उस नये नगर का नाम गोइन्दवाल रखा। अमरदास रात को रोज गोइन्दवाल मे रहा करते, और दिन मे खडूर आ जाया करते थे। पीछे बसरका छोडकर स्थायी रूप से गोइन्दवाल मे जाकर बस गये।

गोइन्दवाल मे अमरदास की दिन चर्या यह रहा करती थी। काफी वृद्ध थे, फिर भी खूब सवेरे उठते, और गुरु के स्नान के लिए व्यास नदी का जल लेकर नित्यप्रति खडूर जाया करते थे। गोइन्दवाल और खडूर के रास्ते मे 'जपुजी' का पाठ करते जाते, जो प्रायः आधे मार्ग मे ही समाप्त हो जाता था । खडूर मे आकर 'आसा की वार' सुनते, रसोई के बर्तन साफ करते, पानी भरते और जगल से लकडी भी लाकर देते थे। और साँझ को 'सोदरु' सुनते, और गुरु के पैर दबाकर और उन्हे सुलाकर गोइन्दवाल जाकर सोते थे। ऐसी ज्वलन्त गुरुभक्ति थी अमरदास की। यही कारण था कि गुरु अगद ने इन्हे अपनी गद्दी का सच्चा अधिकारी माना।

गुरु अमरदास की अनूठी साधुता और ऊँची रहनी की अनेक सुन्दर कथाएँ प्रसिद्ध हैं। सत्सग को इन्होंने खूब चेताया, और सैकडों साधकों को परमात्मा के नाम और भक्ति का ऊँचा उपदेश दिया। इनके उपदेश प्रायः इस प्रकार के हुआ करते थे—

"तुम एक प्रभु का ही नाम सदा सुमरो, हमेशा नम्र रहो और अहकार को त्यागदो; दान-पुण्य और सारे जप-तप को यह अहंकार अग्नि की तरह जला-कर भस्म करदेता है।

"यह संसार स्वप्न अथवा छाया की तरह है। पुत्र, कलत्र और धन-सपदा सब अनित्य हैं। सपने मे रक हो जाता है राजा, और राजा हो जाता है रंक, पर जागने पर वह वस्तुतः जो होता है वही रहता है। फिर मनुष्य किसके लिए तो आनन्द मनाये, और किसका करे शोक?

"हमेशा तुम दूसरो का भला करते रहो। यह तीन प्रकार से किया जा सकता है: अच्छी सलाह देकर, सामने अच्छा उदाहरण, और हृदय मे सदा लोक-कल्याण की कामना रखकर।

"नम्रता और क्षमाशीलता का अभ्यास करो। किसीके भी प्रति अपने मन मे द्वेष-भावना न आनेदो। यदि कोई तुम्हें कटु या अनादरसूचक शब्द कह जाये, तो उसपर नाराज न होओ, बल्कि उसके साथ नम्रता का व्यवहार करो।

"साधुजनो की सेवा करो, भूखे को भोजन और नगे को वस्त्र दो। बडे सवेरे उठकर जपुजी का पाठ करो। अपना कुछ समय जरूर परमात्मा की सेवा-वंदगी मे खर्च करो। किसीका भी मन न दुखाओ। नम्र बनो, और अहकार छोड-दो। और केवल उस सिरजनहार को ही अपना मालिक मानो।"

गुरु अमरदास की ऊँची साधुता और सहनशीलता इस एक घटना से प्रकट होती है। दातू ने अपने पिता गुरु अंगद के खडूरवाले स्थान को खाली पाकर उसपर अपना अधिकार जमा लिया। उसने कहा कि, बुड्ढा अमरू गुरु-गद्दी पर कैसे बैठ सकता है, वह तो हमारे घर का एक नौकर था। वह गोइन्दवाल भी पहुँचा, और गुरु अमरदास को गालियाँ देते हुए ठोकर मारकर नीचे गिरा दिया। पर उन्होने उठकर दातू के पैर पकड लिये, और हाथ जोडकर कहा, 'महाराज, आपके चरणो मे चोट तो नही लगी? कृपाकर मुझे क्षमा कर दीजिए।' गोइन्दवाल की यह घटना क्या भृगु और विष्णु की सुप्रसिद्ध कथा की पुनरावृत्ति नही थी?

बादशाह अकबर भी गुरु अमरदास का दर्शन करने एक बार गोइन्द-वाल गया था, और लगर मे सबके साथ बैठकर उसने भोजन भी किया था।

गुरु अमरदास ने सिक्ख-धर्म के प्रचार के लिए २२ मजे अर्थात् केन्द्र खोले थे।

अपने दामाद शिष्य जेठा को, जो इनकी सेवा-बंदगी मे आठो पहर रहा करते थे, वरदान के रूप मे अपनी गद्दी देकर सवत् १६३१ के भादो की पूर्णिमा के दिन वाह गुरु और सतनाम का उच्चारण करते हुए गुरु अमरदास ने शरीर छोड़ा। जेठा चतुर्थ गुरु रामदास के नाम से प्रसिद्ध हुए। यहाँ से अब गुरु गोविन्दसिहतक क्रमशः जो सात गुरु हुए उनकी परपरा गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी और उनके पति जेठा के वश से चली।

गुरु अमरदास की मृत्यु का वर्णन उनके पौत्र आनन्द के पुत्र सुन्दरदास ने पॉचवे गुरु अर्जुनदेव के अनुरोध पर लिखा था। इस रचना का नाम 'सदु' है, और यह रामकली राग मे गाई जाती है।

बानी-परिचय

गुरु ग्रन्थ साहिब मे महला ३ के अतर्गत जितनी भी रचनाएँ हे वे सब गुरु अमरदास की रची है। 'आनन्दु' इनकी सबसे प्रख्यात और सुन्दर रचना है। 'आनन्दु' को उन्होंने अपने एक पौत्र के जन्म पर रचा था, और उस पौत्र का नाम भी 'आनन्दु' रखा था। 'आनन्दु' को आज भी सिक्ख संप्रदाय आनन्द-उत्सवो पर गाया करता है। यह है भी बडी आनन्द-प्रदायिनी रचना।

गुरु अमरदास के भक्ति-रसपूर्ण पद भी सैकडों हैं और वारे भी इनकी कई रागो मे हें। बानी इनकी सरस और ऊँचे घाट की है, भाषा तथा भाव दोनों ही दृष्टियों से।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन—(भाग ३) मॅकालीफ

आनंदु

रागु रामकली

अनंदु भइआ मेरी माए सतिगुरू मैं पाइआ ॥
सतिगुरु त पाइआ सहज सेती मनि वजीआ वधाईआ ॥
राग रतन परवार परीआ सबद गावण आईआ ॥
सबदो त गावहु हरी केरा मनि जिनी वसाईआ ॥
कहै नानकु अनंदु होआ सतिगुरू मैं पाइआ ॥१॥

ए मन मेरिआ तू सदा रहु हरि नाले ॥
हरि नालि रहु तू मंन मेरे दूख सभि विसारणा ॥
अंगीकारु ओहु करे तेरा कारज सभि सवारणा ॥
सभना गला समरथु सुआमी सो किउ मनहु विसारे ॥
कहै नानकु मंन मेरे सदा रहु हरि नाले ॥२॥

साचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ॥
घरी त तेरै सभु किछु है जिसु देहि सु पावए ॥

---

१ सहज सेती=सहज ही, आसानी से । मनि=मन मे, हृदय मे । राग रतन आईआ=उत्तम राग और स्वर्ग की अप्सराएँ गुण-गान करने के लिए आई हैं । सबदो=स्तुति, गुण । केरा=का (पूर्वी हिन्दी का प्रयोग । मनि जिनी वसाईआ=हृदय मे परमात्मा को बसा लिया है ।

२ मेरिआ=मेरे । नाले=पास । सवारणा=सँवार लेगा, सुधार देगा । सभना गला समरथु सुआमी=वह प्रभु सब वस्तुओ मे व्यापक तथा शक्तिमान् हैं ।

सदा सिफति सलाह तेरी नामु मनि वसावए ॥
नामु जिनकै मनि वसिआ वाजे सबद घनेरे ॥
कहै नानकु सचे साहिब किआ नाही घरि तेरै ॥३॥

साचा नामु मेरा आधारो ॥
साचु नामु अधारु मेरा जिनि भुखा सभि गवाईआ ॥
करि सांति सुख मनि आइ वसिआ जिनि इच्छा सभि पुजाईआ ॥
सदा कुरबाणु कीता गुरू विटहु जिस दीआ एहि वडिआईआ ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु सबदि धरहु पिआरो ॥
साचा नामु मेरा आधारो ॥४॥

वाजे पच सबद तितु घरि सभागै ॥
घरि सभागै सबद वाजे कला जितु घरि धारीआ ॥
पचदूत तुधु वसि कीते कालु कटकु मारीआ ॥
धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ सि नामि हरिकै लागे ॥
कहै नानकु तह सुख होआ तितु घरि अनहद वाजे ॥५॥

---

३ किआ तेरै = तेरे घर मे क्या नही हैं ? घरि = घर मे। जिसु = जिसे। सदा सिफति सलाह तेरी = वह सदा तेरे गुणो की सराहना करेगा। वाजे सबद घनेरे = खूब आनन्द-बधाई बजेगी।

४ आधारो = अवलबा। भुखा सभि गवाईआ = मेरी सारी भूख को तृप्त या शात करता है। पुजाईआ = पूरा करता है। कीता = किया है।

५ तितु घरि सभागै = उस भाग्यवान या सुखी घर मे, आशय, उस आनदमय अतःकरण मे वह परमात्मा निवास करता है। कला = शक्ति, तेज। पंचदूत तुधु वसि कीते = पाँचो इन्द्रियों के विषयो को, अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहकार को वश मे कर लिया। धुरि करमि पाइआ तुधु जिन कउ = जिनपर तूने आदि से ही कृपा की। अनहद = अनाहत शब्द, जिसे योगी निर्विकल्प समाधि की शून्यावस्था मे सुना करता है।

साची लिवै बिनु देह निमाणी ॥
देह निमाणी लिवै बाझहु किआ करे वेचारिआ ॥
तुधु बाझु समरथ कोइ नाही कृपा करि बनिवारिआ॥
एस नउ होरु थाउ नाही सबदि लागि सवारिआ ॥
कहै नानकु लिवै बाझहु किआ करे वेचारिआ ॥६॥

आनंदु आनंदु सभु को कहै आनदु गुर ते जाणिआ ॥
जाणिआ आनंदु सदा गुर ते कृपा करे पिआरिआ ॥
करि किरपा किलविख कटे गिआन अजनु सारिआ ॥
अंदरहु जिनका मोहु तुटा तिनका सवदु सचै सवारिआ ॥
कहै नानकु एहु आनदु है आनदु गुर ते जाणिआ ॥७॥

बाबा जिसु तू देहि सोई जनु पावै ॥
पावै त सो जनु देहि जिसनो होरि किआ करहि वेचारिआ ॥

---

६ साची ... निमाणी=सच्चे प्रेम के बिना मनुष्य की देह का कोई आदर नहीं कौडी मोल की भी नहीं। लिवै-बाझहु=बिना प्रेम के। बाझु=बिना, सिवाय। वेचारिआ=बेचारा, अभागा। बनिवारिआ=वनमाली, विष्णु का एक नाम। एस ... सवारिआ=उस शब्द के सिवाय दूसरा कोई शरण का स्थान नहीं, उस शब्द मे अनुरक्त होकर ही मनुष्य शोभा पाता है।

७ पिआरिआ=प्रिय ; यह विशेषण गुरु तथा कृपा दोनों के साथ प्रयुक्त हो सकता है। किलविख=किल्विष, पाप। सारिआ=लगाया। तुटा=दूर हो गया। अंदरहु ... सवारिआ=सत्यरूप परमात्मा ने उनको अपने शब्द से सजाकर शोभित किया है, जिन्होंने हृदय मे मोह को, अर्थात संसार के प्रति आसक्ति को निकाल बाहर कर दिया है।

८ बाबा=हे पिता। होरि=और। इकि नामि लागि सवारिआ=(और) दूसरे तेरे नाम से प्रीति जोडकर शोभा पा रहे हैं। गुरपरसादी=-गुरु

इकि भरमि भूले फिरहि दहदिसि इकि नामि लागि सवारिआ ॥
गुरपरसादी मनु भइआ निरमलु जिना भाणा भावए ॥
कहै नानकु जिसु देहि पिआरे सोई जनु पावए ॥८॥

आवहु संत पिआरिहो अकथ की करह कहाणी ॥
करह कहाणी अकथ केरी कितु दुआरै पाईऐ ॥
तनु मनु धनु सभु सउपि गुर कउ हुकमि मनिऐ पाईऐ ॥
हुकमु मनिहु गुरु केरा गावहु सची बाणी ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु कथिहु अकथ कहाणी ॥९॥

ए मन चचला चतुराई किनै न पाईआ ॥
चतुराई न पाईआ किनै तु सुणि मन मेरिआ ॥
एह माइआ मोहणी जिनि एतु भरमि भुलाईआ ॥
माइआ त मोहणी तिनै कीती जिनि ठगउली पाईआ ॥
कुरबाणु कीता तिसै विटहु जिनि मोह मीठा लाईआ ॥
कहै नानकु मन चंचल चतुराई किनै न पाईआ ॥१०॥

की कृपा से । जिना भाणा भावए=जिन्होंने अपनेको परमात्मा की इच्छा के अनुकूल अथवा कृपा के योग्य बना लिया है। जिसु देहि=जिसे तू (आनन्द) प्रदान करता है ।

९ करह कहाणी=कथा हम करें अर्थात् कहें। कितु दुआरै पाईऐ=किसके द्वारा शब्द पायें अथवा, किसके द्वारा उसे हम प्राप्त कर सकेंगे। सउपि=सौंपकर। हुकमि मनिऐ पाईऐ=उसकी आज्ञा पर चलकर प्राप्त कर सको ।

१० चतुराई किनै न पाईआ=परमात्मा को किसीने चालाकी करके नहीं पाया। माइआ=माया । तिनै कीती=उसने अर्थात् परमात्मा ने रची। जिनि ठगउली पाईआ=जिसने यह इन्द्रजाल फैलाया। कुरबाणु . लाईआ=मैंने उस परमात्मा पर अपने को निछावर कर दिया है, जिसने

ए मन पिआरिआ तू सदा सचु समाले ॥
एहु कुटंबु तू जि देखदा चलै नाही तेरै नाले ॥
साथि तेरै चलै नाही तिसु नालि किउ चितु लाईऐ ॥
ऐसा कमु मूले न कीचै जितु अंति पछोताईऐ ॥
सतिगुरु का उपदेसु सुणि तू होवै तेरै नाले ॥
कहै नानकु मन पिआरे तू सदा सचु समाले ॥११॥

अगम अगोचर तेरा अंतु न पाइआ ॥
अंतो न पाइआ किनै तेरा आपणा आपु तू जाणहे ॥
जीअ जंतु सभि खेलु तेरा किआ को आखि वखाणए ॥
आखहि त वेखहि सभु तू है जिनि जगतु उपाइआ ॥
कहै नानकु तू सदा अगमु है तेरा अतु न पाइआ ॥१२॥

सुरि नर मुनि जन अंमृतु खोजदे सु अंमृतु गुर ते पाइआ ॥
पाइआ अंमृतु गुरि कृपा कीनी सचा मनि वसाइआ ॥

कि मरणशील प्राणियो के लिए सासारिक मोह को इतना आकर्षक बना रखा है ।

११ पिआरिआ=प्यारे । सचु समाले=याद रख सत्यरूप परमात्मा को । जि=जिसको । नाले=(अतकाल मे) साथ । तिसु लाईऐ=तो उस कुटुब मे क्यो अपना मन लगाता है ? ऐसा पछोताईऐ=कभी ऐसा न कर जिसे लेकर बाद को तुझे पछताना पडे । होवै तेरै नाले=वही (अत मे) तेरे साथ जायेगा ।

१२ आपणा आपु तू जाणहे=तू आप ही अपने आपको जानता है । खेलु=लीला । को आखि वखाणए=कौन किन शब्दो से वर्णन कर सकता है ? आखहि=कहता है । वेखहि=देखता है । उपाइआ=पैदा किया ।

१३ खोजदे=खोजते है । सचा मनि वसाइआ=सत्य (-रूप परमात्मा)

जीअ जत सभि तुधु उपाए इकि वेखि परसणि आइआ ॥
लबु लोभु अहंकार चूका सतिगुरु भला भाइआ ॥
कहै नानकु जिसनो आपि तुठा तिनि अंमृतु गुर ते पाइआ ॥१३॥

भगता की चाल निराली ॥
चाल निराली भगताह केरी बिखम मारगि चालणा ॥
लबु लोभु अहकारु तजि तृसना बहुतु नाही बोलणा ॥
खंनिअहु तिखी वालहु निकी एतु मारगि जाणा ॥
गुरपरसादी जिन्ही आपु तजिआ हरि वासना समाणा ॥
कहै नानकु चाल भगता जुगहु जुगु निराली ॥१४॥

जिउ तू चलाइहि तिव चलह सुआमी होरु किआ जाणा गुण तेरे ॥
जिव तू चलाइहि तिवै चलह जिना मारगि पावहे ॥
करि किरपा जिन नामि लाइहि सि हरि हरि सदा धिआवहे ॥
जिसनो कथा सुणाइहि आपणी सि गुरदुआरै सुखु पावहे ॥
कहै नानकु सचे साहिब जिउ भावै तिवै चलावहे ॥१५॥

को हृदय मे वसा देता है। तुधु उपाए=तूने उत्पन्न किये। इकि वेखि परसणि आइआ=तुझ एक परमात्मा को देखकर मै तेरे चरणो को छूने आया हूँ। लबु=लालसा। लबु भाइआ=सतगुरु जिनपर अच्छी तरह प्रसन्न हो गये, उनके मन मे फिर लालसा, लोभ और अहंकार ये दुर्गुण नही रहते। आपि तुठा=परमात्मा स्वयं प्रसन्न हो गया।

१४ बिखम=विषम, कठिन, टेढा। खनिअहु.. जाणा=वे ऐसे मार्ग पर चलते है, जो खांडे (तलवार) से अधिक पैना और बाल से भी अधिक बारीक होता है। आपु तजिआ=अपने अहकार का त्याग कर दिया है। हरि वासना समाणी=जिनकी इच्छाऍ परमात्मा मे केन्द्रित हो गई हैं।

१५ होरु तेरे=और अधिक तेरे गुणों को हम क्या जान सकते हैं? तिवै=त्यो, वैसेही। मारगि=सही रास्ता। नामि लाइहि=नाम-(स्मरण) मे लगा देता है। सि=वह। गुरदुआरै=गुरु के द्वारा।

एहु सोहिला सबदु सुहावा ॥
सबदो सुहावा सदा सोहिला सतिगुरू सुणाइआ ॥
एहु तिनकै मंनि वसिआ जिन धुरहु लिखिआ आइआ ॥
इकि फिरहि घनेरे गला गलीं किनै न पाइआ ॥
कहै नानकु सबदु सोहिला सतिगुरू सुणाइआ ॥१६॥

पवितु होए से जना जिनी हरि धिआइआ ॥
हरि धिआइआ पवितु होए गुरमुखि जिन्हीं धिआइआ ॥
पवितु माता पिता कुटंब सहित सिउ पवितु संगति सबाइआ ॥
कहदे पवितु सुणदे पवितु से पवितु जिनी मंनि वसाइआ ॥
कहै नानकु से पवितु जिनी गुरमुखि हरि हरि धिआइआ ॥१७॥

करमी सहजु न ऊपजै विणु सहजै सहसा न जाइ ॥
नह जाइ सहसा कितै संजमि रहे करम कमाए ॥
सहसै जीउ मलीणु है कितु संजमि धोता जाए ॥
मंनु धोवहु सबदि लागहु हरि सिउ रहहु चितु लाइ ॥
कहै नानकु गुरपरसादी सहजु उपजै इहु सहसा इव जाइ ॥१८॥

सुखु=ब्रह्मानन्द। जिउ भावै=जैसा चाहे।

१६ सोहिला=आनद का गीत। धुरहु लिखिआ आइआ=आदि से ही भाग्य मे लिखकर जो आये हैं। गला गली किनै न पाइआ=बकवाद से किसीने भी उस शब्द को प्राप्त नहीं किया।

१७ पवितु=पवित्र। से जना=वे लोग। जिनी=जिन्होंने। संगति=संगी-साथी। कहदे=(हरिनाम को) कहते या जपते हैं। सुणदे=(हरि-नाम को) सुनते हैं।

१८ करमी=कर्मकाड से। सहज=आत्मज्ञान। सहसा=सशय। कितै कमाए=कितने ही साधनों और कितनी ही क्रियाओं से। सहसै जीउ मलीणु है=संशय से मन मैला हो गया है। कितु सजमि धोता

जीअहु मैले बाहरहु निरमल ॥
बाहरहु निरमल जीअहु त मैले तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥
एह तिसना वडा रोगु लगा मरणु मनहु विसारिआ ॥
वेदा महि नामु उतमु सो सुणहिं नाही फिरहि जिउ वेतालिआ ॥
कहै नानकु जिन सचु तजिआ कूड़े लागे तिनी जनमु जूऐ हारिआ ॥१६॥

जीअहु निरमल बाहरहु निरमल ॥
बाहरहु त निरमल जीअहु निरमल सतिगुर ते करणी कमाणी ॥
कूड़ की सोइ पहुचै नाही मनसा सचि समाणी ॥
जनमु रतनु जिनी खटिआ भले से वणजारे ॥
कहै नानकु जिन मनु निरमलु सदा रहहि गुर नाले ॥२०॥

जे को सिखु गुर सेती सनमुखु होवै ॥
होवै त सनमुखु सिखु कोई जीअहु रहै गुर नाले ॥
गुर के चरन हिरदै धिआए अतर आतमै समाले ॥

जाए=किस साधन से वह निर्मल होगा। हरिसिउ लाइ=परमात्मा पर अपना ध्यान लगाते रहो।

१६ जीअहु=हृदय मे, अदर। निरमल=स्वच्छ। मरणु मनहु विसारिआ=मृत्यु (-भय) भुला बैठे। उतमु=उत्तम। फिरहि जिउ वेतालिआ=प्रेत की तरह घूमता फिरता है। कूडे लागे ..असत्य को पकड़बैठे।

२० सतिगुर ते करणी कमाणी=सतगुरु के बताये मार्ग पर चलकर वे सत्कर्म करते हैं। कूड की समाणी=झूठ की गध भी उनके पास नहीं पहुँचती, उनकी इच्छाओं का लक्ष्य सत्य हो जाता है। खटिआ=कमा-लिया। भले वणजारे=समृद्ध व्यापारी।

२१ सिखु=शिष्य। गुर होवै=गुरु की ओर मुडे अर्थात् शरण मे जाये। जीअहु नाले=उसका हृदय गुरु के साथ रहेगा। आपु

आपु छडि सदा रहै परणै गुर बिनु अवरु न जाणै कोए ॥
कहै नानकु सुणहु संतहु सो सिखु सनमुखु होए ॥२१॥

जे को गुर ते वेमुखु होवै बिनु सतिगुर मुकति न पाए ॥
पावै मुकति न होर थै कोई पूछहु विवेकीआ जाए ॥
अनेक जूनी भरमि आवै विणु सतिगुर मुकति न पाए ॥
फिरि मुकति पाए लागि चरणी सतिगुरू सबदु सुणाए ॥
कहै नानकु वीचारि देखहु विणु सतिगुरु मुकति न पाए ॥२२॥

आवहु सिख सतिगुरु के पिआरिहो गावहु सची वाणी ॥
वाणी त गावहु गुरु केरी वाणीआ सिरि वाणी ॥
जिन कउ नदरि करमु होवै हिरदै तिना समाणी ॥
पीवहु अंमृतु सदा रहहु हरि रंगि जपिहु सारिगपाणी ॥
कहै नानकु सदा गावहु एह सची वाणी ॥२३॥

सतिगुरु बिना होर कची है वाणी ॥
वाणी त कची सतिगुरु बाझहु होर कची वाणी ॥
कहदे कचे सुणदे कचे कची आखि बखाणी ॥
हरि हरि नित करहि रसना कहिआ कछू न जाणी ॥

छडि=अहंकार को छोड़कर। रहै परणै=मार्ग दर्शन में रहेगा।

२२ वेमुख=विमुख। होरथै=किसी और से। विवेकीआ=ज्ञानियों से। जूनी=योनि। विणु=बिना। फिर=(किन्तु) अन्त में।

२३ सची वाणी=वह वाणी, जिसे प्रभु का साक्षात्कार करनेवाले संतों ने रचा है। वाणीआ सिरि वाणी=सब वाणियों में ऊँची वाणी। जिन ·· होवै=जिनपर परमात्मा की कृपा-दृष्टि हो। हरिरंगि=परमात्मा के प्रेम में। सारिगपाणी=धनुष हाथ में लेनेवाले, राम का एक नाम।

२४ कची=झूठी। बाझहु=बिना। कहदे बखाणी=उस वाणी के जपनेवाले झूठे, सुननेवाले झूठे और उसके रचनेवाले भी झूठे।

चितु जिनका हिरि लइआ माइआ बोलनि पए रवाणी ॥
कहै नानकु सतिगुरु बाझहु होर कची बाणी ॥२४॥

गुर का सबदु रतनु है हीरे जितु जड़ाउ ॥
सबदु रतनु जितु मनु लागा एहु होआ समाउ ॥
सबद सेती मनु मिलिआ सचै लाइआ भाउ ॥
आपे हीरा रतनु आपे जिसनो देइ बुझाइ ॥
कहै नानकु सबद रतन है हीरा जितु जड़ाउ ॥२५॥

सिव सकति आपि उपाइकै करता आपे हुकमु वरताए ॥
हुकमु वरताए आपि वेखै गुरमुखि किसै बुझाए ॥
तोड़े बधन होवै मुकतु सबदु मनि वसाए ॥
गुरमुखि जिसनो आपि करे सु होवे एकस सिउ लिव लाए ॥
कहै नानकु आपि करता आपे हुकमु बुझाए ॥२६॥

कहिआ जाणी=क्या जपते हैं उसके सच्चे मर्म पर ध्यान नही देते। हिरि लइआ=हर लिया, मोहित कर लिया। बोलनि पए रवाणी=यन्त्रवत् रटते रहते ह।

२५ एहु होआ समाउ=वह परमात्मा मे लीन हो जायेगा। सचै लाइआ भाउ=सत्यरूप परमात्मा की भक्ति करता है। आपे=वह (परमात्मा) स्वय ही। जिसनो देइ बुझाइ=जिसे उसके सच्चे मोल का ज्ञान करा देता है।

२६ सिव सकति=दिव्य शक्ति, योगमाया। आपि उपाइकै=स्वय (जगत् को) उत्पन्न करके। आपि वेखै=स्वय देखता है। गुरमुखि किसै बुझाए=वह (परमात्मा) किसी-किसी पवित्रात्मा को (इस रहस्य को) समझने की शक्ति देता है। गुरमुखि लिव लाए=जिसे वह पवित्रात्मा करना चाहता है वह वैसा हो जायेगा, और एक परमात्मा मे ही लौ-लीन हो जायेगा।

सिमृति सासत्र पुन्न पाप वीचारदे ततै सार न जाणी ॥
ततै सार न जाणी गुरु बाझहु ततै सार न जाणी ॥
तिही गुणी संसारु भ्रमि सुता सुतिआ रैणि विहाणी ॥
गुर किरपा ते से जन जागे जिना हरि मनि वसिआ बोलहि अंमृत बाणी ॥
कहै नानकु सो ततु पाए जिसनो अनदिनु हरि लिव लावै जागत
रैणि विहाणी ॥२७॥

माता के उदर महि प्रतिपाल सो किउ मनहु विसारीऐ ॥
मनहु किउ विसारीऐ एवडु दाता जि अगनि महि आहारु पहुचावए ॥
ओसनो किहु पोहि न सकी जिस नउ आपणी लिव लावए ॥
आपणी लिव आपे लाए गुरमुखि सदा समालीऐ ॥
कहै नानकु एवडु दाता सो किउ मनहु विसारीऐ ॥२८॥

जैसी अगनि उदर महि तैसी बाहरि माइआ ॥
माइआ अगनि सभ इको जेही करतै खेलु रचाइआ ॥

---

२७ सिमृति ··· जाणी=स्मृतियाँ और शास्त्र पुण्य और पाप का निरूपण करते हैं, पर वे परमतत्त्व (परमात्मा) के रहस्य को नहीं जानते। गुरु बाझहु=बिना गुरु के। तिही ··· विहाणी=यह ससार इन्ही बातो (माया-मोह के भ्रम) मे भूलकर सोते-सोते रात (जीवन) बिता देता है। से=वे। मनि=मन मे। अनदिनु=रात-दिन।

२८ किउ=क्यो। एवडु=इतना महान्। जि ··· पहुचाए=जिसने अग्नि (गर्भ से आशय है) के बीच मे भोजन पहुँचाया। ओसनो ··· लाइए=उसे कोई प्रभावित नही कर सकता, जिसे परमात्मा अपने मे तल्लीन कर लेता है। समालीए=याद रखता है।

२९ जैसी ··· माइआ=जैसे गर्भ की अग्नि अंदर है, वैसे ही माया की अग्नि बाहर है। माइआ ··· इको=सबमे एक माया की ही अग्नि जल रही है,

जा तिसु भाणा ता जमिआ परवारि भला भाइआ ॥
लिव छुड़की लगी तृसना माइआ अमरु वरताइआ ॥
एह माइआ जितु हरि विसरै मोहु उपजै भाउ दूजा लाइआ ॥
कहै नानकु गुरपरसादी जिना लिव लागी तिनी विचे माइआ पाइआ ॥२६॥

हरि आपि अमुलकु है मुलि न पाइआ जाइ ॥
मुलि न पाइआ जाइ किसै विटहु रहे लोक विललाइ ॥
ऐसा सतिगुरु जे मिलै तिसनो सिरु सउपीऐ विचहु आपु जाइ ॥
जिसदा जीउ तिसु मिलि रहै हरि वसै मनि आइ ॥
हरि आपि अमुलकु है भाग तिना के नानका जिन हरि पलै पाइ ॥३०॥

हरि रासि मेरी मनु वणजारा ॥
हरि रासि मेरी मनु वणजारा सतिगुर ते रासि जाणी ॥
हरि हरि नित जपिहु जीअहु लाहा खटिहु दिहाड़ी ॥

अथवा, माया की तथा गर्भ की अग्नि एक ही है। जा तिसु ''भाइआ= जब वह परमात्मा को प्रसन्न करता है, तब बच्चा जन्म लेता है, और परिवार को आनन्द होता है। लिव छुडकी=(गर्भ के अदर परमात्मा के प्रति बच्चे की जो) लौ लगी हुई थ। वह (बाहर आते ही) छूट गई। माइआ अमरु वरताइआ=माया ने अमल (राज) जमा लिया। भाउ दूजा लाइआ=दूसरी अर्थात् सासारिक आसक्ति मे फॅस जाता है। गुर ''पाइआ=गुरु-कृपा से माया के बीच मे भी परमात्मा को प्राप्त कर लेता है।

३० अमुलकु=अनमोल। मुलि' जाइ=मोल नहीं ठहराया जा सकता। किसै विललाइ=यद्यपि लोग कितना ही यत्न करें, सिर पटककर मर जाये। आपु जाइ=जिसकी कृपा से अहकार नष्ट हो जाये। तिसनो सिरु सउपीऐ=उसे अपना सिर सौपदे, अपने आपको उसके हवाले करदे। जिसदा'' वसि आइ=जिस परमात्मा का यह जीव है उसीसे मिलने का जतन कर, और वह तेरे हृदय मे आ बसेगा।

एहु धनु तिना मिलिआ जिन हरि आपे भाणा ॥
कहै नानकु हरि रासि मेरी मनु होआ वणजारा ॥३१॥

ए रसना तू अनरसि राचि रही तेरी पिआस न जाइ ॥
पिआस न जाइ होर तु कितै जिचरु हरिरसु पलै न पाइ ॥
हरिरसु पाइ पलै पीऐ हरिरसु बहुड़ि न तृसना लागै आइ ॥
एहु हरिरसु करमी पाईऐ सतिगुरु मिलै जिसु आइ ॥
कहै नानकु होरि अनरस सभि वीसरे जा हरि वसै मन आइ ॥३२॥

ए सरीरा मेरिआ हरि तुम महि जोति रखी ता तू जग महि आइआ ॥
हरि जोति रखी तुधु विचि ता तू जग महि आइआ ॥
हरि आपे माता आपे पिता जिनि जीउ उपाइ जगतु दिखाइआ ॥
गुरपरसादीं बुझिआ ता चलतु होआ चलतु नदरी आइआ ॥
कहै नानकु सृसटिका मूलु रचिआ जोति राखी ता तू जगमहि
आइआ ॥३३॥

---

३१ रासि=पूँजी। मनु वणजारा=मन है व्यापारी। जीअहु=हे मेरे जीव। लाहा खटिहु दिहाडी=तूझे हररोज लाभ होगा।

३२ तू अनरसि राचि रही=तू दूसरे रसो (विषय-भोगो के स्वादो) मे अनुरक्त या आसक्त हो रही है। पिआस न ... ...पाइ=तेरी प्यास किसी भी प्रकार से जाने की नहीं, जबतक कि तुझे हरि-रसायन हाथ नही लगी। तृसना=तृषा, प्यास। करमी=पूर्व के सत्कर्मो से। होरि अनरस=और दूसरे (विषय) रस।

३३ ए सरीरा आइआ=हे मेरे शरीर, परमात्माने तुझमे अपनी ज्योति भरदी, और तभी तू इस ससार मे आया। उपाइ=पदा करके, बनाकर। गुर ... आइआ=गुरु कृपा से जिस मनुष्य ने सच्चा आत्मज्ञान प्राप्त कर लिया, उसके लिए यह संसार एक खेल है, या खेल जैसा मालूम देता है। सृसटि=सृष्टि।

मनी चाउ भइआ प्रभ आगमु सुणिआ ॥
हरि मंगलु गाउ सखी गृहु मंदरु बणिआ ॥
हरि गाउ मंगलु नित सखीए सोगु दूखु न विआपए॥
गुरचरन लागे दिन सभागे आपणा पिरु जापए ॥
अनहत बाणी गुरसबदि जाणी हरिनामु हरिरसु भोगो ॥
कहै नानकु प्रभु आपि मिलिआ करण कारण जोगो ॥३४॥

ए सरीरा मेरिआ इसु जगमहि आइकै किआ तुधु करम कमाइआ ॥
कि करम कमाइआ तुधु सरीरा जा तू जग महि आइआ ॥
जिनि हरि तेरा रचनु रचिआ सो हरि मनि न वसाइआ ॥
गुरपरसादी हरि मनि वसिआ पूरबि लिखिआ पाइआ ॥
कहै नानकु एहु सरीर परवाणु होआ जिनि सतिगुरसिउ चित लाइआ।३५॥

ए नेत्रहु मेरिहो हरि तुम महि जोति धरी हरि बिनु अवरु न देखहु कोई॥
हरि बिनु अवरु न देखहु कोई नदरी हरि निहालिआ ॥
एहु विसु संसारु तुम देखदे एहु हरि का रूपु नदरी आइआ ॥

---

३४ मनि चाउ भइआ=मन मे आनन्द हुआ। आगमु=आगमन। गृहु मदरु बणिआ=यह घर महल बन गया है (उस प्रभु का स्वागत करने के लिए)। सोगु=शोक। सभागे=सौभाग्यमय। आपणा पिरु जापए=अपने प्रियतम का नाम (जिन दिनों) मैं जपूँ। सबदि=उपदेश से। करण कारण= करनेवाला और करानेवाला, कारण का भी कारण। जोगो=योग्य, समर्थ।

३५ किआ तुधु=क्या तूने। रचनु=रचा। परवाणु=प्रमाणरूप, अगीकार करनेयोग्य। सिउ=से। चितु लाइआ=मन को लगाया।

३६ मेरिहो=मेरे। जोति=प्रकाश। नदरी निहालिआ=एकाग्र दृष्टि से देख। एहु ....आइआ=यह सारा ससार जिसे तू देखता है परमात्मा का प्रतिरूप है, परमात्मा का प्रतिबिम्ब इसमे दिखाई देता है। वेखा=देखा,

गुरपरसादी बूझिआ जा वेखा हरि इकु है हरि बिनु अवरु न कोई॥
कहै नानकु एहि नेत्र अंध से सतिगुरि मिलिऐ दिब द्रसटि होई ॥३६॥

ए स्रवणहु मेरि हो साचै सुनणै नो पठाए॥
साचै सुनणै नो पठाए सरीरि लाए सुणहु सतिवाणी॥
जितु सुणि मनु तनु हरिआ होआ रसना रसि समाणी॥
सचु अलख विडाणी ताकी गति कही न जाए॥
कहै नानकु अंमृत नामु सुणहु पवित्र होवहु साचै
सुनणै नो पठाए ॥३७॥

हरि जीउ गुफा अंदरि रखिकै वाजा पवणु वजाइआ॥
वजाइआ वाजा पउण नउ दुआरे परगटु कीए दसवा गुपतु रखाइआ॥
गुर दुआरै लाइ भावनी इकना दसवा दुआरु दिखाइआ॥
तह अनेक रूप नाउ नवनिधि तिसदा अंतु न जाई पाइआ॥
कहै नानकु हरि पिआरै जीउ गुफा अंदरि रखिकै वाजा पवणु
वजाइआ ॥३८॥⊙

समझा। सतिगुर...होई=सतगुरु मिलने से इन (अंधे के नेत्रों) को दिव्यदृष्टि मिल गई।

३७ साचै सुनणै नो पठाए=सत्य को सुनने के लिए तुम यहाँ भेजे गये थे। सरीरि लाए=शरीर से जोडे गये थे। जितु=जिसको। हरिआ होआ=हरे या पल्लवित हो जाते है। रसना रसि समाणी=जिह्वा हरि-रस मे लीन हो जाती है। विडाणी=आश्चर्यमय।

३८ गुफा=शरीर से आशय है। रखिकै=(जीव को शरीर के अंदर) रखकर। वाजा पवणु वजाइआ=साँस फूकदी, जैसे बाँसुरी को फूक से बजा दिया। दसवा=दसवाँ द्वार, ब्रह्म-रन्ध्र से आशय है। गुरु दुआरै=गुरु के द्वारा। लाइ भावनी=श्रद्धा-भक्ति देकर।

⊙ "सूरज परकाश" (रास १, अध्याय ५९) मे लिखा है कि गुरु अमरदास की रची ये ३८ ही पउडी हैं। ३९वी पउडी गुरु रामदास की रची है, और ४०वी पउडी गुरु अर्जुनदेव की।

एहु साचा सोहिला साचै घरि गावहु ॥
गावहु त सोहिला घरि साचै जिथै सदा सचु धिआवहे ॥
सचो धिआवहि जा तुधु भावहि गुरमुखि जिना बुझावहे ॥
इहु सचु सभना का खसमु है जिसु बखसो सो जनु पावहे ॥
कहै नानकु सचु सोहिला सचै घरि गावहे ॥३६॥

अनंदु सुणहु वडभागीहो सगल मनोरथ पूरे ॥
पारब्रहमु प्रभु पाइआ उतरे सगल विसूरे ॥
दूख रोग संताप उतरे सुणी सची वाणी ॥
संत साजन भए सरसे पूरे गुर ते जाणी ॥
सुणते पुनीत कहते पवितु सतिगुरु रहिआ भरपूरे ॥
विनवति नानकु गुरचरण लागे वाजे अनहद तूरे ॥४०॥

---

३६ सोहिला=आनन्द-बधाई का गीत। साचै घरि=संत-समाज में। जिथै.... ..धिआवहे=जहाँ संतजन सदा सत्य परमात्मा का ध्यान करते हैं। जा तुधु भावहि=जो तुझे प्रसन्न करते हैं। खसमु=स्वामी। जिसु ..पावहे= जिस जन पर वह कृपा करता है वही उसे पाता है।

४० अनंदु=आनद-गान। सगल=सकल, सब। उतरे सगल विसूरे= सारे दुःख दूर हो गये। सरसे=आनंदित, प्रफुल्लित। पूरे गुरते जाणी= पूर्ण सद्गुरु के मुख से सुनकर। सुणते=सुननेवाले। कहते=पाठ करने- वाले। तूरे=बाजे।

रागु सिरी

पंखी विरखि सुहावड़ा सचु चुगै गुर भाइ ॥
हरिरसु पीवै सहजि रहै उड़ै न आवै जाइ ॥
निजघरि वासा पाइआ हरि हरि नामि समाइ ॥
मन मेरे तू गुर की कार कमाइ ॥
गुर कै भाणै जे चलहि ता अनदिनु राचहि हरिनाइ ॥
पंखी बिरख सुहावड़े ऊड़हि चहु दिसि जाहि ॥
जेता ऊड़हि दुख घणे नित दाझहि तै बिललाहि ॥
बिनु गुर महलु न जापई ना अंमृत फल पाहि ॥
गुरमुखि ब्रहमु हरीआवला साचै सहजि सुभाइ ॥
साखा तीनि निवारीआ एक सबदि लिव लाइ ॥

---

१ सुन्दर है वृक्ष पर का वह पक्षी, जो गुरु की कृपासे सत्य को सदा चुगता रहता है।

(पक्षी है यहाँ संतपुरुष, और वृक्ष है उस साधु का शरीर।)

हरि-नाम का रस वह सतत पान करता है। सहजसुख के बीच बसेरा है उसका, और वह इधर-उधर नही उडता।

निज नीड मे उस पक्षी ने वास पा लिया है, और हरि-नाम में वह लौलीन हो गया है।

हे मन! तब तू गुरु की सेवा में रत होजा।

यदि गुरु के बताये मार्ग पर तू चले, तो फिर हरि-नाम मे तू दिन-रात लौलीन रहेगा।

क्या वृक्ष पर के ऐसे पक्षी आदरयोग्य कहे जा सकते है, जो चारों दिशाओ मे इधर-उधर उडते रहते हैं?

जितना ही वे उडते हैं, उतना ही दुःख पाते हैं, वे नित्य ही जलते और चीखते रहते हैं।

अंमृत फलु हरि एकु है आपे देइ खवाइ ॥
मनमुख ऊभे सुकि गए ना फलु तिंन ना छाउ ॥
तिंना पासि न वैसीऐ ओना घरु न गिराउ ॥
कटीअहि तै नित जालीअहि ओन्हा सवदु न नाउ ॥
हुकमे करम कमावणे पाइऐ किरति फिराउ ॥
हुकमे दरसनु देखणा जह भेजहि तह जाउ ॥
हुकमे हरि हरि मनि वसै हुकमे सचि समाउ ॥
हुकमु न जाणहि बपुड़े भूले फिरहि गवारु ॥
मन हठि करम कमावदे नित नित होहि खुआरु ॥
अतरि सांति न आवई ना सचि लगै पिआरु ॥

बिना गुरु के न तो वे परमात्मा के दरबार को देख सकते है, और न उन्हें अमृत-फल ही मिल सकता है ।

स्वभावतः सत्यनिष्ठ गुरमुखो अर्थात् पवित्रात्माओं के लिए ब्रह्म सदाही एक हरा-लहलहा वृक्ष है ।

तीनो शाखाओ (त्रिगुण) को उन्होंने त्याग दिया है, और एक शब्द मे ही लौ उनकी लगी हुई है ।

एक हरि का नाम ही अमृतफल है, और वह उसे स्वय ही खिलाता है ।

मनमुखी दुष्टजन ठूठ से सूखे खड़े रहते हैं, न उनमे फल होते हैं, न छॉह ।

उनके निकट तू मत बैठ, न उनका घर है न गॉव । सूखे काठ की तरह वे काटकर जला दिये जाते हैं,

उनके पास न शब्द (गुरु-उपदेश) है, न (हरि का) नाम ।

मनुष्य परमात्मा की आज्ञा के अनुसार कर्म करते हैं, और अपने पूर्व कर्मों के अनुसार अनेक योनियो मे चक्कर लगाते रहते हैं ।

वे उसका दर्शन पाते हैं तो उसकी आज्ञा से ही, और जहॉ वह भेजता है वहॉ वे चले जाते हैं ।

गुरमुखीआ मुह सोहणे गुर कै हेति पिआरि ॥
सची भगती सचि रते दरि सचै सचिआर ॥
आए से परवाणु है सभ कुल का करहि उधारु ॥
सभ नदरी करम कमावदे नदरी बाहरि न कोइ ॥
जैसी नदरि करि देखै सचा तैसा ही को होइ ॥
नानक नामि वडाईआ करमि परापति होइ ॥१॥

रागु सिरी

सुणि सुणि काम गहेलीए किआ चलहि बाह लुडाइ ॥
आपणा पिरु न पछाणही किआ मुहु देसइ जाइ ॥

अपनी इच्छा से ही परमात्मा उनके हृदय में निवास करता है, और उसीकी आज्ञा से वे सत्य में तल्लीन हो जाते हैं।

बेचारे मूर्ख जो उसकी आज्ञा को नही पहचानते, भ्राति के कारण इधर-उधर भटकते रहते है।

उनके सब कर्मो मे हठ होता है, वे दिन-दिन गिरते ही जाते हैं। उनके अंतर में शान्ति नही आती; न सत्य के प्रति उनमे प्रेम होता है।

सुन्दर हैं उन पवित्रात्माओ के मुख, जिनकी गुरु के प्रति प्रेम-भक्ति है।

भक्ति उन्हींकी सची है; वे ही सत्य मे अनुरक्त हैं। और सत्य के दरबार मे उन्होंने सत्यरूप परमात्मा को पाया है।

ससार में उन्हीका आना सौभाग्यमय है, अपने सारेही कुल का उन्होंने उद्धार कर लिया।

सबके कर्म उसकी नजर मे है, कोई भी उसकी नजर से बचा नहीं।

वह जैसी नजर से देखता है, मनुष्य वैसाही हो जाता है।

नानक! नाम की महिमातक सुकर्मो से ही पहुँचा जा सकता है।

२ सुणि... ...लुडाइ=सुत री सुन काम से ग्रसी। तू क्यों ऐसी अकड़ती हुई जा रही हैं? किआ.... जाइ=उसे तू अपना मुँह कैसे दिखायगी! जिनी

जिनीं सखीं कंतु पछाणिआ हउ तिन कै लागउ पाइ ॥
तिन ही जैसी थी रहा सतिसगति मेलि मिलाइ ॥
मुंधे कूड़ि मुठी कूड़िआरि ॥
पिरु प्रभु साचा सोहणा पाईऐ गुर वीचारि ॥
मनमुखि कंतु न पछाणई तिन किउ रैणि बिहाइ ॥
गरबि अटीआ त्रिसना जलहि दुखु पावहि दूजै भाइ ॥
सबदि रतीआ सोहागणी तिन विचहु हउमै जाइ ॥
सदा पिरु रावहि आपणा तिना सुखे सुखि विहाइ ॥
गिआन विहूणी पिर मुतीआ पिरमु न पाइआ जाइ ॥
अगिआन मती अंधेरु है बिनु पिर देखे भुख न जाइ ॥
आवहु मिलहु सहेलीहो मै पिरु देहु मिलाइ ॥
पूरै भागि सतिगुरु मिलै पिरु पाइआ सचि समाइ ॥
से सहीआ सोहागणी जिन कउ नदरि करेइ ॥
खसमु पछाणहि आपणा तनु मनु आगै देइ ॥
घरि वरु पाइआ आपणा हउमै दूरि करेइ ॥
नानक सोभावतीआ सोहागणी अनदिनु भगति करेइ ॥२॥

सखी = जिन सहेलियो अर्थात् जीवात्मओं ने। हउ = हौ, मै।
तिनही ··मिलाइ = सत-मंडली मे मिलकर मै भी वैसा ही हो जाऊँ।
मु धे ·· कूडिआरि = री मूर्ख नारी, झूठे अपने झूठ मे बर्बाद हो गये।
पिरु = प्रिय स्वामी। सोहणा = सुन्दर। वीचारि = उपदेश, मार्ग-दर्शन।
किउ रैणि बिहाइ = कैसे रात कटेगी। गरबि अटीआ = अहकार से भरे हुए। दूजै भाइ = सासारिक प्रेम के कारण। रतीआ = अनुरक्त, रगे हुए। हउमै = अहंकार। रावहि = आनन्दमग्न रखती हैं, रिझाती हैं। तिना सुखे सुख बिहाइ = उनके दिन सुख ही सुख मे बीतते हैं। पिर मुतीआ = प्रियतम ने छोड दिया। पिरमु न पाइआ जाइ = प्यारा उन्हे मिलने का नही। पिरु पाइआ सचि समाइ = प्रियतम को पाकर उसीमे लीन हो गई। जिन कउ

मनमुखि करम कमावणे जिउ दोहागणि तनि सीगारु ॥
सेजै कंतु न आवई नित नित होइ खुआरु ॥
पिर का महलु न पावई ना दीसै घरुबारु ॥
भाई रे इकमनि नामु धिआइ ॥
संता संगति मिलि रहै जपि रामनामु सुखु पाइ ॥
गुरमुखि सदा सोहागणी पिरु राखिआ उरधारि ॥
मिठ्ठा बोलहि निवि चलहि सेजै रवै भतारु ॥
सोभावंती सोहागणी जिन गुर का हेतु अपारु ॥
पूरै भागि सतगुरु मिलै जा भागै का उदय होइ ॥
अतरहु दुखु भ्रमु कट्टीऐ सुखु परापति होइ ॥
गुर कै भाणै जो चलै दुखु न पावै कोइ ॥
गुर के भाणे विचि अमृतु है सहजे पावै कोइ ॥
जिना परापति तिन पीआ हउमै विचहु खोइ ॥
नानक गुरमुखि नामु धिआईऐ सचि मिलावा होइ ॥३॥

नदरि करेइ=जिनपर वह कृपा-दृष्टि करता है। खसम=पति। आगै देइ=सौप देती हैं। अनदिनु=नित्य, दिन-रात।

३　मनमुखि···सीगारु=मनमुखी अर्थात् हरि-विमुख के सारे कर्म ऐसे समझने चाहिए, जैसे विधवा के शरीर पर के सारे शृंगार। खुआरु=वेइज्जत। पिर=प्रियतम, परमात्मा से आशय है। घरबारु=यह लोक। निवि चलहि=नम्रता या शील के साथ बरतती है। रवै भतारु=पति के साथ रमण अर्थात् आनन्दकरती है। हेतु=प्रेम। उदउ=उदय। कट्टीऐ=कट जाता है। परापति=प्राप्त। भाणै=कहने के अनुसार गुरु के उपदेश पर। हउमै=अहंकार। सचि=सत्यरूप परमात्मा से। मिलावा=मिलना, भेंट।

राग सिरी

बहु भेख करि भरमाईऐ मनि हिरदै कपटु कमाइ ॥
हरि का महलु न पावई मरि विसटा माहि समाइ ॥
मन रे गृह ही माहि उदासु ॥
सचु सजमु करणी सो करे गुरमुखि होइ परगासु ॥
गुर कै सबदि मनु जीतिआ गति मुकति घरै महि पाइ ॥
हरि का नामु धिआईऐ सतिसगति मेलि मिलाइ ॥
जे लख इसतरीआ भोग करहि नवखड राजु कमाहि ॥
बिनु सतगुर सुखु न पावई फिरि जोनी पाहि ॥
हरि हारु कंठि जिनी पहिरिआ गुरचरणी चितु लाइ ॥
तिना पिछै रिधि सिधि फिरै ओना तिलु न तमाइ ॥
जो प्रभ भावै सो थीऐ अवरु न करणा जाइ ॥
जनु नानकु जीवै नामु लै हरि देवहु सहजि सुभाइ ॥४॥

राग भैरउ

जाति का गरव न करियहु कोइ ।
ब्रहम बदे सो ब्रहमण होइ ॥

---

४ बहु भरमाइऐ=नाना भेष धारणकर-कर इधर-उधर भटकते फिरते हैं । कमाइ=कमाते हैं । महलु=निजधाम, परमपद । विसटा=विष्ठा, नरक । उदासु=संन्यासी । करणी=सत्कर्म । गति=सद्गति । जे करहि=यदि तू लाखों स्त्रियों के साथ विषय-भोग करे । जोनी पाहि=योनियों अर्थात् जन्मों को पायेगा । हरि पहिरिआ=हरिनामरूपी हार को जिन्होने अपने कठ मे धारण करलिया । तिलु न तमाइ=तिलमात्र भी लोभ नहीं । थीऐ=होता है । देवहु सहजि सुभाइ=स्वाभाविक करुणा से अपना नाम-रस देदो ।

५ चलहि—पैदा होते हैं । आखै=कहते हैं । बिंदु=वीर्य । ओपति=उत्पत्ति ।

जाति का गरब न करि मूरख गवारा ।
इसु गरब ते चलहि बहुत विकारा ॥
चारे बरन आखै सब कोई ।
ब्रह्मु-बिंदु ते सभ ओपति होइ ॥
माटी एक सगल संसारा ।
बहु बिधि भांडे घड़ै कुम्हारा ॥
पंच ततु मिलि देही आकारा ।
घटि वधि को करै बीचारा ॥
कहतु नानक इहु जीउ करमबंधु होई ।
बिनु सतिगुर भेटे मुकति न होई ॥५॥

रागु भैरउ

जोगी गृही पंडित भेखधारी । ए सूते अपणै अहंकारी ॥
माइआ मदिमाता रहिआ सोइ । जागतु रहै न मूसै कोइ ॥
सो जागै जिसु सति गुरु मिलै । पंचदूत ओहु वसगति करै ॥
सो जागै जो ततु वीचारै । आपि मरै अवरा नह मारै ॥
सो जागै जो एको जाणै । परकरति छोड़ै ततु पछाणै ॥
चहु वरना विचि जागै कोइ । जमै कालै ते छूटै सोइ ॥
कहत नानक जनु जागै सोइ । गिआन अंजनु जाकी नेत्री होइ ॥६॥

सगल=सकल, सारा । भाडे=बर्तन । घटि वधि=छोटा-बड़ा । करम-बधु होई=कर्मों से माया के बंधन मे पड़ता है । भेटे=मिलकर ।

६ सूते=सो रहे हैं, अचेत पडे हुए हैं । अहंकारी=अहकार मे । माता=बेहोश, गाफिल । न मूसै=चोरी नही करता । पंचदूत=पॉचो इन्द्रियाँ से तात्पर्य है । वसगति=वश मे । ततु=आत्म-तत्त्व । आपि मरै अवरा नह मारै=अपने अहंकार को मारता है, दूसरो को नहीं मारता । एको=एक परमात्मा को ही । परकरति=प्रकृति ; माया । पछाणै=अच्छी

रागु भैरउ

दुविधा मनमुख रोगि विआपे तृसना जलहि अधिकाई।
मरि-मरि जंमहि ठउर न पावहि बिरथा जनम गवाई॥
मेरे प्रीतम करि किरपा देहु बुझाई।
हउमै रोगी जगतु उपाइआ बिनु सबदै रोगु न जाई॥
सिम्रृति सासतर पड़हि मुनि केते विनु सबदै सुरति न पाई।
त्रैगुण सभे रोगि विआपे ममता सुरति गवाई॥
इकि आपे काढ़ि लए प्रभि आपे गुर सेवा प्रभि लाए।
हरि का नामु निधानो पाइआ सुखु वसिआ मनि आए॥
चउथी पदवी गुरमुखि वरतहि तिन निज घरि वासा पाइआ।
पूरै सतिगुरि किरिपा कीन्ही विचहु आपु गवाइआ॥
एकसु की सिरिकार एक जिनि ब्रहमा बिसनु रुद्र उपाइआ।
नानक निहचलु साचा एको ना ओहु मरै न जाइआ॥७॥

तरह जानता है। चारो वरन विचि=ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि चारों वर्णो मे। कोइ=विरला ही। जमै कालै ते =यम और काल से। नेत्री=अंतर के नेत्रो मे, अंतःकरण मे।

७ जमहि=जन्म लेता है। ठउर=स्थिरता, शान्ति। हउमै=अहंकार। उपाइआ=उत्पन्न किया। बिनु सबदै=बिना गुरु के उपदेश के। सिमृति=मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र। सासतर=शास्त्र। सुरति=प्रभु की लौ या ध्यान। ममता सुरति गवाई=अहकार ने प्रभु के ध्यान को भुला दिया है। काढि लए=अहकार और माया से मुक्त कर दिया। निधानो=खजाना। मनि=मन मे। चउथी पदवी=तुरीया अवस्था से तात्पर्य है, जहाँ केवल आत्म-स्थिति का अनुभव होता है। निज घरि=स्वरूप कीसर्वोच्च स्थिति मे। विचहु=आत्मा और परमात्मा के बीच का अतर ; द्वैतभाव। जाइआ=जन्म लेता है।

राग गउडी

गुरि मिलिऐ हरि मेला होइ । आपे मेलि मिलावै सोइ ।।
मेरा प्रभु सभ बिधि आपे जाणै । हुकमे मेलै सबदि पछाणै ।।
सतिगुरु कै भइ भ्रमु भउ जाइ । भै राचै सच रंगि समाइ ।।
गुरि मिलिऐ हरि मनि वसै सुभाइ । मेरा प्रभु भारा कीमति नहि पाइ ।।
सबदि सालाहै अंतु न पारावारु । मेरा प्रभु बखसै बखसणुहारु ।।
गुरि मिलिऐ सभ मति बुधि होइ । मनि निरमल वसै सचु सोइ ।।
सचि वसिऐ साची सभ कार । ऊतम करणी सबदि वीचार ।।
गुर ते साची सेवा होइ । गुरमुखि नाम पछाणै कोइ ।।
जीवै दाता देवणहारु । नानक हरिनामै लगै पिआरु ।।८।।

राग गउडी गुआरेरी

गुर ते गिआनु पाए जनु कोइ । गुर ते बूझै सीझै सोइ ।।
गुर ते सहजु साचु वीचारु । गुर ते पाए मुकति दुआरु ।।
पूरै भागि मिलै गुरु आइ । साचै सहजि साचि समाइ ।।
गुरि मिलिऐ तृसना अगनि बुझाइ । गुर ते सांति वसै मनि आइ ।।
गुर ते पतित पावन सुचि होइ । गुर ते सबदि मिलावा होइ ।।
वाझु गुरु सभ भरमि भुलाई । बिनु नावै बहुता दुख पाई ।।
गुरमुखि होवै सु नामु धिआई । दरसति सचै सची पति होई ।।

---

८ मेला=मिलन । हुकमे...पछाणै=अपनी आज्ञा का रहस्य प्रकटकर परमतत्त्व से वह परिचय करा देता है । भइ=भय । भउ=संशय-जनित भय । भै राचै समाइ=ईश्वर-भीरुता जो डरकर चलता है वह सत्यरूप परमात्मा के प्रेम में लौलीन हो जाता है । सुभाइ=अनायास ही । भारा=महान्-से-महान् । कीमति नहि पाइ=अनमोल । सालाहै=प्रशंसा पाता है । कार=रचना ।

९ सीझै=सिद्धि अर्थात् सफलता पाता है । सबद=परमतत्त्व । मिलावा=साक्षात्कार । वाझु=बिना । वाझु ..भुलाई=बिना गुरु के सब अविद्या में भूले

किसनो कहीऐ दाता इकु सोई। किरपा करै सबदि मिलावा होई ॥
मिलि प्रीतम साचे गुण गावा। नानक साचे साचि समावा ॥६॥

सो किउ विसरै जिसके जीअ पराना।
सो किउ विसरै सभ माहि समाना ॥ जितु सेविऐ दरगह पति परवाना ॥
हरि के नाम विटहु बलि जाउं। तू विसरहि तदि ही मरि जाउं ॥
तिन तूं विसरहि जि तुधु आपु भुलाए। तिन तूं विसरहि जि दूजै भाए ॥
मनमुख अगिआनी जोती पाए। जिन इक मनि तुठ्ठा से सतिगुर सेवा लाए।
जिन इक मनि तुट्ठा तिन हरि मंनि बसाए ॥ गुरमत्ती हरिनामि समाए ॥
जिना पोतै पुन्नु से गिआन वीचारी। जिना पोतै पुन्नु तिन हउमै मारी ॥
नानक जो नामरते तिनकउ बलिहारी ॥१०॥

रागु गउडी गुआरेरी

मनमुखि सूता माइआ मोहि पिआरि।
गुरमुखि जागे गुण गिआन वीचारि ॥ से जन जागे जिन नाम पिआरि ॥

पडे हैं। नावै=नाम के। पति=प्रतिष्ठा। किस..... सोई=और किसे दाता कहा जाय, दाता तो सच्चा एक परमात्मा ही है।

१० जिसके जीआ पराना=जिसका दिया यह जीव है, ये प्राण हैं। दरगह=न्यायालय, परमात्मा का दरबार। पति=इज्जत। परवाना=प्रमाणरूप, मान्य। तू विसरहि ‥ जाउ=मै उसी क्षण, जब कि तुझे भूल जाऊँ, मर जाऊँ। तिन तू विसरहि‥‥ भुलाए=तू उन्हीको भुला देता है, जो तुझे भूल जाते हैं। जि दूजै भाए=जोकि अन्य मे अर्थात् माया मे आसक्त है। जोनी पाए=फिर-फिर गर्भ मे आते हैं। इकमनि तुठा=हृदय से प्रसन्न है। गुरमत्ती=जिन्होंने गुरु के मत अर्थात् उपदेश को ग्रहण कर लिया। जिना पोतै पुन्नु ‥'वीचारी=जिन्होने सुकृतो या सद्गुणो को जमा कर लिया, वे आध्यात्मिक ज्ञान का चितन और मनन करते हैं। तिन हउमै मारी=वे अहकार को नष्ट कर देते ह। रते=रँग गये।

११ सूता=सो गया है, गाफिल पडा है। माइआ मोहि पिआरि=माया

सहजे जागैं सोवै न कोइ। पूरे गुरते बूझै जनु कोइ॥
असंतु अनाड़ी कदे न बूझै॥ कथनी करे तै माइआ नालि लूझै॥
अंधु अगिआनी कदे न सीझै॥
इसु जगमहि रामनामि निसतारा। को बिरला पाए गुरुसबदि वीचारा॥
आपि तरै सगले कुल उधारा॥
इसु कलिजुग महि करम धरम न कोई॥ कलि का जनमु चंडाल कै घरि होई॥
नानक नामबिना को मुकति न होई॥११॥

राग आसा

मनमुख मरहिं मरि मरणु बिगाड़हि। दूजै भाइ आतम सघारहि॥
मेरा मेरा करि करि बिगूता। आतमु न चीनै भरमै विचि सूता॥
मर मुइआ सबदे मरि जाइ। उसतति निंदा गुरि सम जाणाई,
इसु जुग महि लाहा हरि जपि लै जाइ॥

और मोह के प्रेम मे। गुण=ईश्वरीय गुण। गिआन=अध्यात्म-ज्ञान। सहजे . न कोइ=जो आत्मज्ञान का दिव्य प्रकाश पाकर जाग गया, वह फिर कभी नही सोता, उसपर अविद्यारूपी रात्रि का कभी असर नही पड़ता। अनाडी=विवेकशून्य। कथनी=थोथा दावा। माइआ नालि लूझै=माया की आग मे जलरहे हैं। अंधु=अंधा, विवेकरहित। अगिआनी=विश्वास न लानेवाला, अश्रद्धालु। कदे न सीझै=कभी सिद्धि अथवा शान्ति नही पाता। इसु जुगमहि=इस कलियुग मे। निसतारा=मोक्ष। सबदि=उपदेश। को=कोई भी।

१२ मरहि ·····बिगाडहि=मरते हैं तो बहुत बुरी मौत मरते हैं। दूजै · · सघारहि=माया से प्रीति जोडकर वे अपना हनन आप करते हैं। बिगूता=नष्ट हो गया। न चीनै=पहचानते नही हैं। भरमै विचि सूता=मूढग्राहों से लिपटे अचेत पड़े है। मर मुइआ सबदे मरिजाइ=मरना सच्चा

नाम विहूण गरभ गलिजाइ। बिरथा जनमु दूजै लोभाइ॥
नाम विहूणी दुखि जलै सबाई। सतिगुरि पूरै बूझ बुझाई॥
मनु चचलु बहु चोटा खाइ। एथहु छुड़किआ ठउर न पाइ॥
गरभ जोनि बिसटा का वासु। तितु घरि मनमुखु करै निवासु॥
अपने सतिगुर कउ सदा बलि जाई। गुरमुखि जोती जोति मिलाई॥
निरमल वाणी निजघरि वासा। नानक हउमै मारै सदा उदासा॥१२॥

रागु आसा

मनमुखि झूठो झूठु कमावै। खसमै का महलु कदे न पावै॥
दूजै लगी भरमि भुलावै। ममता बाधा आवै जावै॥
दोहागणी कामनि देखु सीगारु। पुत्र कलति धनि माइआ चितु लाए,
झूठु मोहु पाखंड वीकारु॥

उन्हींका जिन्हे कि 'शब्द' ने मार दिया है। उसतति=स्तुति, प्रशसा। गुरि सम जाणाई=गुरु ने जता दिया कि प्रशंसा और निंदा एकसमान हैं। लाहा = लाभ। दूजै लोभाइ = माया के लोभी। बूझ बुझाई=सद्बुद्धि देदी है। चोट = सजा। बिसटा=विष्ठा। जोती जोति मिलाई = जीव की ज्योति को परमात्मा की ज्योति मे मिला दिया। उदासा = उदासी, संन्यासी।

१३ मनमुखी मनुष्य झूठ ही-झूठ का लेन-देन करते रहते हैं,
स्वामी के महलतक वे कभी नही पहुँचते।
प्रपच मे लिप्त वे सदा भ्रम मे ही भूले रहते हैं,
और ममता मे बद्ध फिर जन्मते हैं, और फिर मरते हैं।
देखो तो इस दोहागिन नारी का यह सिगार!
चित्त इसका लगा हुआ है पुत्र मे, परिवार मे, धन और माया मे,
और झूठ मे, और मोह मे, पाखंड मे, और मनोविकारों मे।
सदा सोहागिन तो वही नारी है, जो अपने स्वामी को भाती है।
उसका सिंगार सतगुरु का उपदेश होता है,

सदा सोहागणि जो प्रभ भावै। गुर सबदी सीगारु बणावै॥
सेज सुखाली अनदिनु हरि रावै। मिलि प्रीतम सदा सुखु पावै॥
सा सोहागणि साची जिसु साचि पिआरु। आपणा पिरु राखै सदा उर धारि॥
नेड़ै वेखै सदा हदूरि। मेरा प्रभु सरब रहिआ भरपूरि॥
आगै जाति रूपु न जाइ। तेहा होवै जेहे करम कमाइ॥
सबदे ऊचो ऊचा होइ। नानक साचि समावै सोइ॥१३॥

सलोक

जिन्हा सतिगुरु इकमनि सेविआ तिन जन लागौ पाइ।
गुर सबदी हरि मनि वसै माया की भुख जाइ॥१॥

से जन निर्मल ऊजले जि गुरमुखि नामि समाइ।
नानक होरि पतिसाहिआ कूड़िआ, नामिरते पातसाह॥२॥

उसकी सेज सुखभरी होती है, और अपने स्वामी के साथ वह दिन-रात आनन्द करती है।
अपने प्रीतम से मिलकर वह सदा सुख मे मगन रहती है।
जो अपने सच्चे स्वामी को प्यार करती है, वही सच्ची सोहागिन है।
वह अपने प्रीतम को सदा छाती से लगाये रहती है।
वह अपने पास, अपने सामने उसे निरतर देखती रहती है।
मेरा प्रभु सर्वत्र रम रहा है।
परलोक मे तेरे साथ न यह ऊँची जाति जायगी; न यह रूप जायेगा; तेरी वहाँ की यात्रा तेरे कर्मों के अनुसार ही होगी।
शब्द (सतगुरु के उपदेश) से ही मनुष्य ऊँचे-से-ऊँचा जाता है,
और नानक, उसीसे वह सत्यरूप परमात्मा में लीन होता है।

१ जिन्हा=जिन्होने। इकमनि=अनन्य भाव से। लागौ पाइ=उनके पैर पड़ता हूँ। गुरसबदी=गुरु के उपदेश से। भुख=तृष्णा, आसक्ति।
२ से=वे। जि=जो। समाइ=लौलीन हो गये हैं। होरि पातिसाहिआ कूड़िया=और बादशाही झूठी है। रते=रँगे हुए, अनुरक्त।

माया मोहि जगु भरमिआ, घरु मूसै खबरि न न होइ।
कामु क्रोधि मनु हरि लइआ मनमुखि अंधा लोइ ॥३॥

गिआन-खड़ग पंचदूत सघारे गुरमति जागै सोइ।
नामु रतन परगासिआ मनु तनु निरमलु होइ ॥४॥

मै जानिआ वडहसु है ता मै कीआ संगु।
जे जाणा बगु बापुड़ा त जनमि न देदी अंगु ॥५॥

हसा वेखि तरंदिआ बगां भि आइआ चाउ।
डूबि मुए बग बापुड़े सिरु तलि ऊपरि पाउ ॥६॥

सतिगुर की सेवा चाकरी सुखी हूं सुख सारु।
ऐथै मिलनि वडिआईआ दरगह मोख दुआरु ॥७॥

सजण मिले सजणा जिन सतगुर नालि पिआरु।
मिलि प्रीतम तिनी धिआइआ सचै प्रेमि पिआरु ॥८॥

मन ही ते मानिआ गुर कै सबदि अपारि।
एहि सजण मिले न विछुड़हि जि आपि मेले करतारि ॥९॥

---

३ मूसै=चोरी करते हैं (सद्गुणरूपी रत्नों की)। हिरि लिया=हरण कर
४ लिया। पचदूत सघारे=पाचो इन्द्रियों के विषयों को मार दिया, वश मे कर लिया।

५ न देदी अंगु=कभी न अपनाता।

६ वेखि तरदिआ=तरता हुआ देखकर। चाउ=जोश।

७ ऐथै=इस लोक मे। दरगह=परलोक, ईश्वर का दरबार। मेख=मोक्ष।

८ सजण=सतजन। सजणा=साजन, स्वामी। नालि=साथ।

९ जि आपि मेले करतारि=परमात्मा जिन्हे खुद मिला देता है।

मनमुख सेती दोसती थोड़ड़िआ दिन चारि।
इसु परीती तुटदी विलमु न होवई, इसु दोसती चलनि विकारि ॥१०॥

जिन अंदरि सचे का भउ नाही, नामि न करहि पिआरु।
नानक तिन सिउ किआ कीजै दोसती, जि आपि भुलाए करतारु ।११

गुरमुखि सेवि न कीनिआ, हरिनाम न लगो पिआरु।
सबदै सादु न आइओ मरि जनमै वारोवार ॥१२॥

मनमुखि अंधु न चेतई कितु आइआ संसारि।
नानक जिन कउ नदरि करे से गुरमुखि लघे पारि ।१३॥

---

१० सेती=साथ की। परीती=प्रीति, मित्रता। तुटदी विलमु न होवई=टूटते देर नहीं लगती।

११ भउ=भय। पिआरु=प्रेम। तिन सिउ = उनसे। जि आपि भुलाए करतारु=जो खुद ही परमात्मा को भुलाबैठे हैं।

१२ सेवि=सेवा। कीनिआ=की। सादु=स्वादु, रस, आनन्द।

१३ संसारि=संसार मे। नदरि करे=कृपा-दृष्टि करता है। लघे पारि=संसार से तर जाता है।

गुरु रामदास

जन्म-संवत्—१५६१ वि॰, कार्तिक कृ॰ २

जन्म-स्थान—लाहौर

पूर्व नाम—जेठा

पिता—हरिदास

माता—दयाकौर (पूर्व नाम अनूपदेवी)

जाति—सोधी खत्री

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-सवत्—१६३८ वि॰, भादों शु॰ ३

मृत्यु-स्थान—गोइन्दवाल

गुरु रामदास का विवाह, जब इनका नाम जेठा था, गुरु अमरदास की पुत्री बीबी भानी के साथ हुआ था। गुरु अमरदास के यह अनन्य भक्त और पट्टशिष्य भी थे। आज्ञा-पालक यह वैसे ही थे, जैसेकि गुरु अमरदास और गुरु अगद।

एक दिन गुरु अमरदास के कुछ शिष्यो ने पूछा कि, 'दामाद तो आपका रामा भी है (जिसके साथ बडी पुत्री बीबी दानी का ब्याह हुआ था) और आपकी वह सेवा भी करता है, पर जेठा को ही आप इतना अधिक क्यों चाहते हैं?' जेठा के अनेक गुणों का वर्णन करते हुए गुरु अमरदास ने कहा कि, 'उसमे नम्रता, भक्ति और श्रद्धा रामा से कही अधिक है, और इसीलिए वह मुझे अधिक प्रिय है। लो, तुम्हारे सामने ही मै उन दोनो की परीक्षा लेता हूँ।'

गुरु अमरदास ने रामा को हुक्म दिया कि उनके बैठने के लिए बावली के पास वह एक सुन्दर चबूतरा बनादे। रामा ने बड़ी मेहनत से चबूतरा तैयार किया, पर गुरु को वह पसद नही आया। गिराकर फिरसे बनाने को कहा। रामा ने उसे फिर बनाया। फिर भी पसद नहीं आया। रामा ने उसे फिर

गिरा तो दिया, पर तीसरी बार बनाने को वह राजी नहीं हुआ। बोला, 'गुरु बहुत बुड्ढे हो गये हैं, इसीसे उनकी बुद्धि काम नहीं दे रही !'

अब जेठा की बारी थी। उसने चबूतरे को गुरु की आज्ञा से सात बार बनाया और सात ही बार गिराया, पर मुँह से एक शब्द भी नहीं निकाला। अंत में गुरु के चरणों को पकड़कर बड़ी नम्रता से उसने कहा, 'मैं तो मूर्ख हूँ ; सेवा मुझसे कहाँ बन सकती है। मुझसे भूलें ही होंगी। पर आप कृपाकर मेरी भूलों को उसी तरह क्षमा कर दिया करें, जैसे कि पिता अपने मूर्ख पुत्र की भूलों को क्षमा कर देता है।'

गुरु अमरदास बहुत प्रसन्न हुए, और जेठा को छाती से लगाकर बोले—'मेरी आज्ञा को मानकर तूने सात बार इस चबूतरे को गिरा-गिराकर बनाया, इसलिए तेरी सात पीढ़ियाँ गुरु की गद्दी पर बैठेंगी।' और सब सिक्खों को बुलाकर कहा कि, 'मैंने अपने दोनों दामादों की परीक्षा लेली है। अब तो तुम्हारा सदेह दूर हो गया कि जेठा मुझे क्यों अधिक प्रिय है। मैं स्पष्ट देखता हूँ कि यह जेठा आगे चलकर जगत् का उद्धार करेगा।'

चतुर्थ गुरु रामदास जीवनभर गुरु अमरदास के सब सिद्धान्तों और पदचिह्नों पर चले। गुरु नानक, गुरु अंगद और गुरु अमरदास के सारे गुण उनमें पाये जाते थे। 'टिक्के दी वार' की सातवीं पउड़ी में सत्तेने कहा है—

"नानक तू, लहिणा तू है, गुरु अमर तू वीचारिआ।
गुरु डीठा ता मनु साधारिआ॥"

अर्थात्, तू नानक है, तू लहिणा है, तू अमरदास है, मैंने तुझे ऐसा ही समझा है।

जब मैंने तुझ गुरु को देखा, तब मेरे मन को ऐसा ही आश्वासन मिला।

बाबा नानक के ज्येष्ठ पुत्र श्रीचंद, जो उदासी सम्प्रदाय के संस्थापक थे और बड़े-बड़े जटा बढ़ाये नग्न घूमते रहते थे, एक बार गुरु रामदास से मिलने आये। वे न तो गुरु अंगद से कभी मिले थे, और न गुरु अमरदास से ही। गुरु रामदास ने गोइन्दवाल से कुछ दूर जाकर महात्मा श्रीचंद का स्वागत किया, और भेंट के रूप में उनके सामने मिठाई और पाँच सौ रुपये रखे। गुरु से मिलकर बाबा श्रीचंद को बहुत आनन्द हुआ। उन्हें लगा कि रामदास मानो गुरु नानक की ही प्रतिमूर्ति हैं। उनकी दाढ़ी देखकर श्रीचंद ने कहा कि, 'दाढ़ी

यह आपने बहुत लम्बी बढ़ा रखी है।' 'आपके चरणों को पखारने के लिए मैंने यह लम्बी दाढ़ी रखी है।' और किया भी उन्होंने यही। श्रीचंद ने अपने पैर हटा लिये, और कहा—'आप यह क्या कर रहे है। आप तो गुरु है, मेरे पिता की गद्दी पर आसीन है। निश्चय ही आप सिक्खों का उद्धार करेंगे।'

गुरु अमरदास की आज्ञा से गुरु रामदास ने जो एक भारी चिरस्थायी कार्य किया, वह था सिक्खो के महान् तीर्थ-स्थान अमृतसर का निर्माण। इस तालाब को उन्होंने बडी ही निष्ठा और परिश्रम से खुदवाया। तालाब के आसपास धीरे-धीरे रामदासपुर नाम का एक सुन्दर नगर भी बसने लगा। बाद मे तालाब के नाम पर इसका भी नाम अमृतसर पड गया। अमृतसर का तालाब भाई बुड्ढा की देखरेख मे हजारों सिक्खो और दूसरे मजदूरो ने तैयार किया। उन दिनों गुरु रामदास जिस कुटिया मे रहा करते थे, वह आज भी 'गुरु का महल' के नाम से प्रसिद्ध है।

गुरु रामदास ने धर्म-प्रचार के लिए अनेक सुयोग्य व्यक्तियों को नियुक्त किया, जिन्हे वे 'मसद' कहते थे। मसंदों ने सिक्खधर्म का अनेक स्थानों मे जा-जाकर प्रचार किया।

गुरु रामदास के तीन पुत्र थे—पृथीचंद या प्रिथिया, महादेव और अर्जुन। प्रिथिया बडा अभिमानी और दुष्ट स्वभाव का था। महादेव भी अधिक आज्ञापालक नही था। सबसे छोटा पुत्र अर्जुन ही पिता का अनन्य आज्ञाकारी और परमभक्त था। यही कारण था कि अर्जुन पर उनका सबसे अधिक स्नेह था, और उसीको उन्होंने अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया। ईर्ष्यालु प्रिथिया ने गुरु रामदास के जीवन-काल मे ही और उनके स्वर्गवास के बाद भी रामदास को पद-च्युत करने लिए अनेक षडयन्त्र रचे, पर वह सफल नही हुआ।

गुरु रामदास ने अपनी गद्दी पर अर्जुन को बिठाते हुए कहा, "गुरु अमरदास ने स्पष्ट कहा था कि गुरु का स्थान ऊँचे सद्गुणो से ही मिलता है। जो सच्चा, सदाचारी और विनीत है वही इस ऊँचे स्थान को प्राप्त कर सकता है। मै तुझे यह स्थान देता हूँ।" पाँच पैसे और एक नारियल अर्जुन के सामने रखकर उन्होंने भाई बुड्ढा के हाथ से उन्हे तिलक करा दिया। अर्जुनदेव को गुरु रामदास ने पाँचवाँ गुरु बना दिया। दीपक ने जैसे अपनी लौ से दूसरे दीपक को जला दिया।

संवत् १६३८ की भादों सुदी ३ को गोइन्दवाल में जाकर 'वाह गुरु' 'वाह गुरु' कहते हुए गुरु रामदास ने चोला छोड़ा।

कवि मथुरा ने गुरु रामदास के देहावसान पर यह छप्पय रचा—

"देवपुरी महि गयउ आपि परमेस्वर भाइउ।
हरि सिघासन दिइउ सिरी गुरु तह बैठाइउ॥
रहसु किअउ सुरदेव तोहि जसु जय जंपहि।
असुर गए ते भागि पाप तिन भीतर कंपहि॥
काटे सु पाप तिन नरहु के गुरु रामदास जिन्ह पाइअउ।
छत्रु सिघासनु पिरथमी गुर अरजुनकउ दे आइअउ॥"

बानी-परिचय

गुरु रामदास की बानी गुरु ग्रन्थ साहिब मे 'महला ४' के अतर्गत सगृहीत है। इनका आसा राग का 'सो पुरख' पद बहुत प्रसिद्ध है। इसे 'रहिरास' में भी लिया गया है। गुरु रामदास-रचित सूही राग की छत के चार पदों का उपयोग सिक्ख लोग अपने विवाह-संस्कार मे करते हैं। इन्हीं गुरु-मंत्रो से फेरे कराये जाते हैं। प्रायः हरेक ही राग मे इनके अनेक पद मिलते है। प्रेम व विरह के अंगों का निरूपण गुरु रामदास ने बडा विशद और सुंदर किया है। बानी इनकी मधुर और बहुत कोमल है। गुरु के प्रति ऊँची श्रद्धा गुरु अगद तथा गुरु अमरदास के ही सदृश इन्होंने भी प्रकट की है। इनके अनेक सलोक भी वैसे ही हृदयस्पर्शी हैं। भाषा में पंजाबी का पुट कुछ कम है, और वह सरल भी है।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग २)—मेकालीफ

रागु आसा

सो पुरुखु निरजनु हरि पुरुखु निरजनु हरि अगमा अगम अपारा ॥
सभि धिआवहि सभि धिआवहि तुधु जी हरि सच्चे सिरजणहारा ॥
सभि जीअ तुमारे जी तूं जीआ का दातारा ॥
हरि धिआवहु संतहु जी सभि दूख विसारणहारा ॥
हरि आपे ठाकुरु हरि आपे सेवकु जी किआ नानक जंत विचारा ॥
तू घट घट अंतरि सरब निरंतरि जी हरि एको पुरखु समाणा ॥
इकि दाते इकि भेखारी जी सभि तेरे चोज विडाणा ॥
तूं आपे दाता आपे भुगता जी हउ तुधु बिनु अवरु न जाणा ॥
तूं पारब्रहमु बेअंतु बेअंतु जी तेरे किआ गुण आखि वखाणा ॥
जो सेवहि जो सेवहि तुधु जी जनु नानकु तिन कुरबाणा ॥
हरि धिआवहि हरि धिआवहि तुधु जी से जन जुग महि सुखवासी ॥
से मुकतु से मुकतु भये जिन हरि धिआइआ जी तिन तूटी जम की फासी ॥
जिन निरभउ हरि निरभउ धिआइआ जी तिन का भउ सभु गवासी ॥

---

१ अगमा अगम=अगम्य से भी अगम्य, जिसतक किसी भी तरह पहुँच नही हो सकती। तुधु=तुझे । सतहु=हे संतो। जंत=जतु, क्षुद्र प्राणी। समाणा=व्यापक। चोज विडाणा=अद्भुत खेल या लीला। हउ=मै। किआ=क्या। आखि वखाना=वर्णन करके कहूँ। तिन कुरबाणा=उनपर बलि जाता हूँ। से=वे। जुग महिं=इस युग मे। सुखवासी=आनन्द मे रहते है। भउ=भय ।

गवासी=चला गया। हरिरूप समासी=हरि के रूप मे लीन हो गये,

जिन सेविआ जिन सेविआ मेरा हरि जी ते हरि हरि रूपि समासी ॥
से धन्नु से धन्नु जिन हरि धिआइआ जी जनु नानकु तिन बलि जासी॥
तेरी भगति तेरी भगति भडार जी भरे बेअंत बेअंता ॥
तेरे भगत तेरे भगत सलाहनि तुधु जी हरि अनिक अनेक अनंता ॥
तेरी अनिक तेरी अनिक करहि हरि पूजा जी तपु तापहि जपहि बेअंता॥
तेरे अनेक तेरे अनेक पड़हि बहु सिमृति सासत जी करि किरिआ खटु करम करंता ॥
से भगत से भगत भले जन नानक जी जो भावहि मेरे हरि भगवता ॥
तूं आदि पुरखु अपरपारु करता जी तुधु जे वडु अवरु न कोई ॥
तूं जुगु जुगु एको सदा सदा तू एको जी तू निहचलु करता सोई ॥
तुधु आपे भावै सोई वरतै जी तू आपे करहि सु होई ॥
तुधु आपे स्रसटि सभ उपाई जी तुधु आपे सिरजि सभ गोई ॥
जनु नानकु गुण गावै करते के जी जो सभसै का जाणोई ॥१॥ *

राग़ु आसा

तूं करता सचिआरु मैडा साई ॥ जो तउ भावै सोई थीसी जो तू देहि सोई हउ पाई ॥

हरिरूप ही हो गये। बलि जासी=निछावर हो जायेगा। सलाहनि=सराहना, या स्तुति करते हैं। तपु तापहि=तपस्या करते है। सिमृति=स्मृतियाँ जो मुख्यतया १८ हैं। सासत=शास्त्र, जो छह हैं। किरिआ=धर्मविहित क्रिया। खटु करम=ब्राह्मणों के छह कर्म, अर्थात् वेद पढना, वेद पढ़ाना, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना और दान लेना। वडु=बड़ा। निहचलु=निश्चल, एकरस, स्थिर। स्रसटि=सृष्टि। उपाई=उत्पन्न की। गोई=लय हो जाना। करते के=कर्त्ता के। सभसे का=सब वस्तुओं का। जाणोई=जानता है।

* यह 'रहिरास' में से लिया गया है। इसका नाम ही "सो पुरखु" है।

सभ तेरी तूं सभनी धिआइआ ॥ जिसनो कृपा करहि तिन नामरतनु पाइआ ॥
गुरमुखि लाधा मनमुखि गवाइआ ॥ तुधु आपि विछोड़िया आपि मिलाइआ ॥
तूं दरीआउ सभ तुझ ही माहि ॥ तुझ बिनु दूजा कोई नाहि ॥
जीअ जत सभि तेरा खेलु ॥ विजोगि मिलि विछुड़िआ स जोगी मेलु ॥
जिसनो तू जाणइहि सोइ जनु जाणै ॥ हरिगुण सदही आखि बखाणै ॥
जिनि हरि सेविआ तिनि सुखु पाइआ ॥ सहजे ही हरिनामि समाइआ ॥

---

२ तू ही सच्चा कर्त्तार है, मेरे स्वामी।
जो तुझे भाता है वही होगा, जो तू देगा वही मैं पाऊँगा।
सब कुछ तेरा ही है, सभी तेरा ध्यान करते हैं।
जिसपर तू कृपा करता है, वही तेरा नामरूपी रत्न पाता है।
गुरु के अनुयायी ने उसे पाया है, और मन के मत पर चलनेवाले ने उसे हाथ से गँवा दिया है।
मनमुखों से तू स्वयं बिछुड गया है, और गुरुमुखों से आप जा मिला है।
तू एक समुद्र है, सब-कुछ तुझमें समाया हुआ है।
तेरे सिवा दूसरा कोई है ही नहीं।
जीव-जतु की सृष्टि सब तेरी लीला है।
जब तूने बिछुड़ना चाहा, तो वे तुझसे मिले हुए भी बिछुड गये, और जब तूने मिलना चाहा तो वे तुझसे आ मिले।
वही तेरा जन तुझे जानता है, जिसे तू अपने आपको जना देना चाहता है, और सदा वह तेरे गुणों का गान करता रहता है।
सुख उन्हींने पाया, जिन्होंने कि तेरी सेवा-बदगी की, और सहज ही वे हरि-नाम में लौलीन हो गये।
तू आपही कर्त्तार है, सब-कुछ तेरा ही किया होता है।
तेरे सिवा कोई दूसरा है ही नहीं।

तू आपे करता तेरा कीआ सभु होइ ॥ तुधु बिनु दूजा अवरु न कोइ ॥
तू करि करि वेखहि जाणहि सोइ ॥ जन नानक गुरमुखि परगटु होइ ॥२॥

रागु गउड़ी पूरबी

कामि करोधि नगरु बहु भरिआ मिलि साधू खंडल खंडा हे ॥
पूरबि लिखत लिखे गुरु पाइआ मनिहरि लिव मंडल मंडा हे ॥
करि साधू अंजुली पुनु वडा हे ॥ करि डंडउत पुनु वडा हे ॥
साकत हरिरस सादु न जाणिआ तिन अंतरि हउमै कंडा हे ॥
जिउ जिउ चलहि चुभै दुखु पावहि जमकालु सहहि सिरि डंडा हे ॥
हरिजन हरि हरि नामि समाणे दुखु जनम मरण भव खंडा हे ॥
अबिनासी पुरखु पाइआ परमेसरु बहु सोभा खंड ब्रहमंडा हे ॥

तू ही अपनी रचना को देखता है और उसे जानता है।

दास नानक कहता है—गुरु के उपदेश से तू प्रकट हो जाता है।

३ यह नगर अर्थात् यह शरीर काम और क्रोध से बहुत भरा हुआ है; पर संतजनों से मिलने से दोनों खंड-खंड हो जाते हैं।

प्रारब्ध में लिखा था जो गुरु से भेंट हो गई, और भक्ति-भाव मे यह जीव लौलीन हो गया।

हाथ जोडकर तू संतों की वंदना कर—यह भारी पुण्यकर्म है।

उन्हे साष्टाग दंडवत् कर—यह भारी पुण्यकर्म है।

हरि-रस के स्वादु को नास्तिक या अभक्त नही जानता, क्योंकि वह अपने अंतर में अहकार के कॉटे को स्थान दिये हुए है।

जितना ही वह चलता है उतना ही वह उसे चुभता है और उतना ही क्लेश पाता है; और यम का डडा अर्थात् काल का भय उसके सिर पर मॅडराता रहता है।

हरिभक्त, हरि के नाम-स्मरण मे लीन रहते हैं, और उन्होंने जन्म-मरण का भय नष्ट कर दिया है।

हम गरीब मसकीन प्रभ तेरे हरि राखु राखु वड वड्डा हे ॥
जन नानक नामु अधारु टेक है हरिनामे ही सुखु मंडा हे ॥३॥

रागु गउडी गुआरेरी

पंडित सासतर सिमृति पढ़िआ ॥
जोगी गोरखु गोरखु करिआ । मैं मूरख हरि हरि जपु पढ़िआ ॥
ना जाना किआ गति राम हमारी । हरि भजु मन मेरे तरु भउजल तू तारी ॥
सनिआसी बभूत लाइ सवारी ॥ परत्रिय त्यागु करी ब्रहमचारी ॥
मै मूरख हरि आस तुसारी ॥
खत्री करम करे सूरतणु पावै । सूदु वैसु परकिरति कमावै ॥
मैं मूरख हरिनामु छड़ावै ॥
सभ तेरी स्रसटि तूं आपि रहिआ समाई । गुरमुखि नानक दे वड़िआई ॥
मैं अँधुले हरि टेक टिकाई ॥४॥

रागु गउडी गुआरेरी

निरगुण कथा कथा है हरि की ॥
भजु मिलि साधू संगति जन की । तरु भउजलु अकथ कथा सुनि हरि की ॥

अविनाशी पुरुष से उनकी भेट होगई है--

और लोकों और सारे ब्रह्माण्ड मे उनकी शोभा-प्रतिष्ठा बहुत बढ गई है । प्रभो, हम गरीब अधम जन तेरे ही हैं, हे महान् से भी महान्, हमारी रक्षा कर, हमारी रक्षा कर ।

दास नानक का आधार और अवलब तेरा एक नाम ही है, तेरे नाम मे डूबकर परमानंद को मैने पाया है ।

४ सिमृति=मनुस्मृति आदि धर्मशास्त्र । सनिआसी=सन्यासी बभूत= भस्म । सवारी=सजायी । ब्रहमचारी=ब्रह्मचर्य व्रत । खत्री=क्षत्रिय । सूरतणु=शूरवीरता । सूदु=शूद्र । वैसु=वैश्य । परकिरति=अपनी-

गोविंद सतसगति मेलाइ। हरि रसु रसना राम गुन गाइ ॥
जो जन ध्यावहिं हरि हरिनामा ॥ तिन दासनिदास करहु हम रामा ॥
जन की सेवा ऊतम कामा ॥
जो हरि की हरि कथा सुणावै। सो जनु हमरै मनि चिति भावै ॥
जन पग रेणु वड़भागी पावै ॥
सत जना सिउ प्रीति बनि आई। जिन कउ लिखतु लिखिआ धुरि पाई ॥
ते जन नानक नामि समाई ॥५॥

रागु गूजरी

हरि के जन, सतिगुर, सतपुरखा, बिनउ करउ गुर पासि ॥
हम कीरे किरम सतिगुर सरणाई करि दइआ नामु परगासि ॥
मेरे मति गुरदेव मोकउ राम नामु परगासि ॥
गुरमति नामु मेरा प्रानसखाई हरि कीरति हमरी रहरासि ।
हरिजन के वड भाग वडेरे जिन हरि हरि सरधा हरि पिआस ॥
हरि हरि नामु मिलै त्रिपतासहि मिलि संगति गुण परगासि
जिन हरि हरि हरिरसु नामु न पाइआ ते भागहीण जम पासि ॥
जो सतिगुर सरणि सगति नही आए ध्रिगु जीवे ध्रिगु जीवासि ॥

अपनी प्रकृति के अनुसार। सृसटि=सृष्टि, रचना।

५ भउजलु=संसार-सागर। ऊतम=-उत्तम। जन-पग रेणु=हरिभक्तों के चरणों की धूल। सिउ=से। धुरि=सबसे ऊपर, शीर्षस्थान।

६ करउ=करता हूँ। गुरुपासि=परमात्मा के प्रति। कीरे=कीड़े। किरम=कृमि, बहुत ही छोटे जीव। नामु परगासि=तू अपने नाम का प्रकाश हमारे अंदर भरदे। कीरति=कीर्त्तन, गुणगान। रहरासि=धधा। सरधा=श्रद्धा। पिआस=प्यास, मिलने की तड़प। त्रिपतासहि=तृप्त या संतुष्ट हो जाते है। सगति=सत्सग। गुणपरगासि=परमात्मा के गुण

जिनहरिजन सतिगुर संगति पाई तिन धुरि मसतकि लिखिआ लिखासि ॥
धनु धनु सतसगति जितु हरिरसु पाइआ मिलि जन नानक नासु परगासि ॥६॥ *

राग भैरउ

ते साधू हरि मेलहु सुआमी, जिन जपिआ गति होइ हमारी ।
तिनका दरसु देखि मन बिगसै खिनु खिनु तिनकउ हउ बलिहारी ॥
हरि हिरदै जपि नामु मुरारी ।
कृपा कृपा करि जगतपति सुआमी हम दासनिदास कीजै पनिहारी ॥
तिन मति ऊतम तिन पति ऊतम जिन हिरदै वसिआ बनवारी ।
तिन की सेवा लाइ हरि सुआमी, तिन सिमरत गति होइ हमारी ॥
जिन ऐसा सतिगुरु साधु न पाइआ ते हरि दरगह काढ़े मारी ।
ते नर निंदक सोभ न पावहि तिन नककाटे सिरजनहारी ॥
हरि आपि बुलावै आपे बोलै हरि आपि निरजनु निरंकारु निराहारी ।
हरि जिसु तू मेलहि सो तुधु मिलसी जन नानक किआ एहि जंत विचारी ॥७॥

प्रकट हो जाते हैं । जमपासि=काल के फंदे मे पड़ते हैं । ध्रिगु जीवे=धिक्कार है जीने को । जीवासि=जीने की आशा । धुरि=आदि से ही । मसतकि माथे पर ।

* यह 'रहिरास' में से लिया गया है ।

७. जिन जपिआ=जिनका नाम-स्मरण और ध्यान करके । गति=सद्गति, मुक्ति । विगसै=आनन्द से प्रफुल्लित हो । खिनु खिनु=क्षण-क्षण, निरंतर । हउ=हौं, मै । दासनिदास पनिहारी=दास के भी दास की पानी भरनेवाली मजूरिन । पति=प्रतिष्ठा । ऊतम=उत्तम, श्रेष्ठ । दरगह काढे मारी=ईश्वर के न्यायालय से मारकर निकाल दिये गये । सोभ=शोभा, प्रतिष्ठा । हरि जिसु मिलसी=हे हरि, जिसे तुम अपने आप

रागु भैरउ

सभि घट तेरे तू सभना माहि। तुझ ते बाहरि कोई नाहि ॥
हरि सुखदाता मेरे मन जापु। हउ तुधु सालाही तू मेरा हरि प्रभु बापु ॥
जह जह देखा तह तह हरि प्रभु सोइ। सभि तेरै वसि दूजा अवरु न कोइ ॥
जिस कउ तुम हरि राखिआ भावै। तिस कै नेड़ै कोइ न जावै ॥
तू जलि थलि महिअलि सभतै भरपूरि। जन नानक हरि जपि हाजरा हजूर ॥८॥

रागु भैरउ

बोलि हरि नामु सफल सो घरी। गुर उपदेसि सभि दुख परहरी ॥
मेरे मन हरि भजु नामु नरहरी।
करि किरपा मेलहु गुरु पूरा। सतसंगति संगि सिंधु भव तरी ॥
जगजीवनु धिआइ मनि हरि सिमरी। कोट कुटंतर तेरे पाप परहरी ॥
सतसंगति साध धूरि मुखि परी। इसनानु कीओ अठसठि सुरसरी ॥
हम मूरख कउ हरि किरपा करी। जनु नानकु तारिओ तारण हरी ॥९॥

सिरी रागु-छंत

मुंध इआणी पईअड़ै किउकरि हरि दरसनु पिखै।
हरि हरि अपनी किरपा करे गुरमुखि साहुरड़ै कंम सिखै ॥

से मिलाना चाहो वही तुमसे मिलेगा। जंत=जंतु, जीव, यंत्र से भी आशय है, जो जड होता है।

८ सभना माहि=सबके भीतर। जापु=स्मरण कर। तुधु सालाही=तेरी स्तुति करता हूँ। तिसकै ...जावै उसके पास जाने की किसी-की भी हिम्मत नही होती, उसका कोई बाल भी बाँका नही करसकता। महिअलि=महीतल।

९ कोट कुटंतर=कोटि-कोटि, असंख्य। अठसठि=गंगा इत्यादि अडसठतीर्थ।

१० लडकी वह भोली और अनजान है, वह प्रीतम को भला कैसे देख पायेगी ?

साहुरड़ै कंम सिखै गुरमुखि हरि हरि सदा धिआए ॥
सहीआ विचि फिरै सुहेली हरि दरगह बाह लुडाए ॥
लेखा धरमराइ की बाकी जपि हरि हरि नामु किरखै ॥
मुंध इआणी पेईअड़ै गुरमुखि हरि दरसनु दिखै ॥१०॥

वीआहु होआ मेरे बाबुला गुरमुखे हरि पाइआ ।
अगिआनु अधरा कटिआ गुर गिआनु प्रचंडु बलाइआ ॥
बलिआ गुरगिआनु अन्धेरा बिनसिआ हरि रतनु पदारथु लाधा ।
हउमै रोग गइआ दुखु लाथा आपु आपै गुरमति खाधा ॥
अकाल मूरति वरु पाइआ अबिनासी ना कदे मरै न जाइआ ॥
वीआहु होआ मेरे बाबोला गुरमुखे हरि पाइआ ॥११॥

प्रभु जब कृपा करता है, तब पवित्रात्मा परलोक के सुकर्मों को सीखते हैं; और सदा प्रभु का ही ध्यान करते हैं ।

वह सुहागिन तब अपनी सहेलियों के बीच प्रभु के दरबार मे अपनी बाहें को गर्व से डुलाती है ।

हरि का नाम जप लेने के बाद धर्मराज की रोकड़-बही मे फिर क्या बाकी बचेगा ?

भोली और अनजान होते हुए भी वह लड़की सतगुरु के उपदेश से अपने प्रीतम प्रभु को यहाँ देख लेगी ।

११ मेरे बाबुल (पिता), व्याह हो गया है, गुरु के दिखाये मार्ग से मैने अपने स्वामी को पा लिया है ।

मेरा अज्ञान का वह अँधेरा अब हट गया है, और सतगुरु ने ज्ञान का प्रचण्ड दीपक जला दिया है,

और हरि-नाम का अनमोल रतन मैने अब खोज लिया है ।

अहकार को काबू मे कर लिया है ।

उस अमर अविनाशी को अपने स्वामी के रूप में मैने पा लिया है, वह कभी न जनमता है, न मरता है ।

हरि सति सते मेरे बाबुला हरिजन मिलि जंञ सोहंदी ॥
पेवकड़ै हरि जपि सुहेली विचि साहुरड़ै खरी सोहंदी ॥
साहुरड़ै विचि खरी सोहंदी जिनि पवेकड़ै नामु समालिआ ॥
सभु सफलिओ जनमु तिना दा गुरमुखि जिना मनु जिणि पासा
ढालिआ ॥
हरि संतजना मिलि कारजु सोहिआ वरु पाइआ पुरखु अनंदी ॥
हरि सति सति मेरे बाबोला हरिजन मिलि जंञ सोहंदी ॥१२॥

हरिप्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ।
हरि कपड़ो हरि सोभा देवहु जितु सवरै मेरा काजो ॥

मेरे बाबुल, ब्याह मेरा हो गया है, गुर के दिखाये मार्ग से मैने अपने स्वामी को पा लिया है ।

१२ मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल ; जब हरि के जन आ मिलते है, तब बारात की शोभा बहुत बढ जाती है ।

जो (जीवात्मा) प्रभु का नाम जपती है, वह इस लोक मे तो सुखी रहेगी ही, परलोक मे भी वह सच्ची शोभा पायेगी ।

प्रभु के नाम का पासा फेककर जिन्होंने गुरु के उपदेश से अपने मन को जीत लिया, उनका जीवन सारा सफल होगया ।

हरि के सतजनों से मिलकर मेरा काज बन गया ; आनन्दमय पुरुष के रूप मे मुझे मेरा वर मिल गया ।

मेरा प्रभु सच्चे से भी सच्चा है, मेरे बाबुल , जब हरि के जन आ मिलते हैं, तब बारात की शोभा बहुत बढ जाती है ।

१३ मेरे बाबुल, तुम तो मेरे प्रीतम हरि को ही मुझे दान और दहेज के रूप मे दो ।

हरि की ही मुझे पोशाक दो, और हरि की ही शोभा, जिससे कि मेरा काज बन जाये ।

हरि की भक्ति से व्याह सहल हो जाता है , सतगुरु दाता ने मुझे अपने

हरि हरि भगती काजु सुहेला गुरि सतिगुरि दानु दिवाइआ ॥
खंडि वरभंडि हरि सोभा होई इहु दानु न रलै रलाइआ ॥
होरि मनमुख दाजु जि रखि दिखालहि सु कूड़ अहंकारु कचु पाजो।
हरि प्रभु मेरे बाबुला हरि देवहु दानु मै दाजो ॥१३॥

हरि राम राम मेरे बाबोला पिर मिलि धन वेल वधदी ।
हरि जुगह जुगो जुग जुगह जुगो सद पीड़ी गुरू चलदी ॥
जुगि जुगि पीड़ी चलै सतिगुर की जिनी गुरमुखि नाम धिआइआ ।
हरि पुरखु न कबही बिनसै जावै नित देवै चड़ै सवाइआ ॥
नानक संत संत हरि एको जपि हरि हरि नामु सोहंदी ।
हरि राम राम मेरे बाबुला पिर मिलि धन वेल वधदी ॥१४॥

नाम का दान दे दिया है।

प्रभु, तेरी शोभा से सारे खंड और ब्रह्माण्ड शोभायमान हो जायेंगे, तेरे नाम का यह दहेज दूसरे और दहेजों में नहीं मिलाया जा सकता।

दुनियादार तो अपने दहेज के रूप में झूठे अहंकार और निकम्मे मुलम्मे का ही प्रदर्शन करेगा।

मेरे बाबुल, तुम तो मेरे प्रीतम को ही मुझे दान और दहेज के रूप में दो।

१४ मेरे बाबुल, प्रीतम प्रभु से मिलकर वधू (पवित्र) वेल को बढ़ाती है।

हरिने युग-युग से, सदा ही, गुरु का वंश बढ़ाया है, जिसने उसके उपदेश से हरि के नाम का ध्यान सदा किया है।

उस परमपुरुष का कभी विनाश नहीं होता, जो वह देता है वह सवाया हो जाता है।

नानक, संत और भगवंत में भेद नहीं, दोनों एक ही है, हरि का नाम लेकर ही वधू शोभा को पाती है।

मेरे बाबुल, प्रीतम प्रभु से मिलकर वधू वेल को बढ़ाती है।

रागु देवगंधारी

मेरो सुंदरु कहहु मिलै कितु गली ।
हरि के संत बतावहु मारगु लागि चली ।
प्रिअ के वचन सुखाने हीअरै इह चाल बनी है भली ॥
लटुरी मधुरी ठाकुर भाई उह सुंदरि हरि ढुलि मिली ।
एको प्रिउ सखीआ सभ प्रिअ की जो भावै पिर सा भली ॥
नानकु गरीबु किआ करै बिचारा हरि भावै तितु राहि चली ॥१५॥

रागु देवगंधारी

अब हम चली ठाकुर पहि हारि ।
जब हम सरणि प्रभु की आई राखु प्रभु भावै मारि ॥
लोकन की चतुराई उपमा ते बैसंतरि जारि ।
कोई भला कहउ भावै बुरा कहउ हम तनु दीओ है ढारि ॥
जो आवत सरणि ठाकुर प्रभु तुमरी तिसु राखहु किरपा धारि ।
जन नानक सरणि तुमारी हरि जीउ राखहु लाज मुरारि ॥१६॥

---

१५ कितु=किस । लागिचली=पीछे-पीछे चलूँ । सुखाने हीअरै=हृदय को आनन्द या शान्ति देते हैं । लटुरी···ढुलि मिली=भले ही बुढापे से कमर झुकगई हो या डील नाटा हो, पर यदि वह प्रभु को प्रिय लगती है तो वही सुंदरी है, स्वामी से वह जा मिलती है । एको प्रिय=प्रियतम केवल एक ही है । सखीआ सभ=सब सखियाँ (जीवात्माएँ) हैं । सा=वही । तितु राहि=उसी रास्ते पर ।

१६ ठाकुर=स्वामी, परमात्मा । हारि=थककर, इधर-उधर भटककर । भावै=चाहे । उपमा=प्रशंसा से आशय है । बैसंतरि जारि=आग में जलादी हैं; निकम्मी मानती हूँ । तनु दीओ है ढारि=अपने शरीर को उसके अधीन कर दिया है ।

राग जैतसरी

हीरा लालु अमोलकु है भारी बिनु गाहक मीका काखा ।
रतनु गाहकु गुरु साधू देखिओ तब रतनु बिकानो लाखा ॥
मेरै मनि गुपत हीरु हरि राखा ।
दीन दइआलि मिलाइओ गुरु साधु गुरि मिलिऐ हीरु पराखा ॥
मनमुख कोठी अगिआनु अँधेरा तिन घरि रतनु न लाखा ।
ते ऊझड़ि भरमि मुए गावारी माइआ भुअंग बिखु चाखा ॥
हरि हरि साध मेलहु जन नीके हरि साधू सरणि हम राखा ।
हरि अंगीकारु करहु प्रभ सुआमी हम परे भागि तुम पाखा ॥
जिहवा किआ गुण आखि वखाणह तुम वड अगम वड पुरखा ॥
जन नानक हरि किरपा धारी पाखाणु डुबत हरि राखा ॥१७॥

---

१७ हीरा या लाल चाहे कैसाही अनमोल हो, बिना गाहक के वह तिनके के समान तुच्छ है।

जब सतगुरुरूपी गाहक ने उस रतन को देखा, तो उसे उसने लाखों में खरीद लिया।

मेरे हृदय मे हरि-हीरा छिपा पड़ा था।

दीनदयालु प्रभु ने सतगुरु से मेरी भेट करादी, और मैने अपना हीरा परख लिया।

मन की राह चलनेवालो की कोठरी मे अँधेरा-ही-अँधेरा है अज्ञान का; वह रतन नजर नही आता।

वे मूढ़ उजाड़ जगल मे भटक-भटककर मरते हैं माया-नागिनी का जहर चख-चखकर।

प्रभो, अपने साधुजनों से मुझे मिलादे, मुझे तू संतजनों की शरण में रखदे।

स्वामी, मुझे तू अब अपनाले; मै तेरी ओर भाग आया हूँ।

मेरी जिह्वा तेरे गुणों का क्या बखान कर सकती है; तू महान् है, तू अगम्य है, तू पुरुषोत्तम है।

राग सूही—छंत

हरि पहिलड़ी लावँ परविरती करम दृड़ाइआ बलि रामजी।
बाणी ब्रह्मा वेदु धरमु दृड़हु पाप तजाइआ बलि रामजी॥
धरमु दृड़हु हरि नामु धिआवहु सिमृति नामु दृड़ाइआ।
सतिगुरु पूरा आराधहु सभि किलविख पाप गवाइआ॥
सहज अनंदु होआ वडभागी मनि हरि हरि मीठा लाइआ।
जनु कहै नानक लावँ पहिली आरमु काजु रचाइआ॥१८॥*

हरि दूजड़ी लावँ सतिगुरु पुरखु मिलाइआ बलि राम जी।
निरभउ भै मनु होइ हउमै मैलु गवाइआ बलि राम जी॥

दास नानक विनती करता है—स्वामी, मुझपर दया कर, मुझ पाषाण (जडबुद्धि) को डूबने से बचाले।

१८ [* गुरु रामदास ने अपने पुत्र के विवाह के अवसर पर इसे रचा था। जब वर और कन्या गाँठ बाँधकर गुरु ग्रन्थ साहब के चारो ओर फेरे करते ह, तब इसका पाठ किया जाता है।]

'बलि राम जी'—इसका अर्थ 'हे प्यारे' यह भी किया गया है, पर 'हे राम' मै तुमपर बलि जाता हूँ' यह अर्थ अधिक समीचीन जँचता है।

परमात्मा ने इस पहले फेरे से प्रवृत्ति-कर्म को दृढ किया है।
(गुरु के) शब्द को ब्रह्मा मानो, और धर्म को मानलो वेद,
और परमात्मा तुम्हे पापो से मुक्त कर देगा।
धर्म पर दृढ़ रहो, हरि के नाम का ध्यान करो, और उसे अपनी स्मृति मे जमालो।
पूर्ण सद्गुरु की आराधना करो,—तुम्हारे सब पाप दूर हो जायेंगे।
बहुत बडा भाग्य है उसका, जिसके हृदय मे हरि बस गया—वह उस (ब्राह्मी) अवस्था मे आनन्द-ही-आनन्द और माधुर्य का अनुभव करता है।
दास नानक ने पहला फेरा पूरा कर लिया, और विवाह का आरभ हो गया।

निरमलु भउ पाइआ हरि गुण गाइआ हरि वेखै रामु हदूरे ।
हरि आतम रामु पसारिआ सुआमी सरब रहिआ भरपूरे ॥
अंतरि बाहरि हरि प्रभु एको मिलि हरिजन मंगल गाए ॥
जन नानक दूजी लावँ चलाई अनहद सबद बजाए ॥१६॥

हरि तीजड़ी लावँ मनि चाउ भइआ बैरागीआ बलि रामजी ।
संतजना हरि मेलु हरि पाइआ वड़भागीआ बलि रामजी ॥
निरमलु हरि पाइआ हरिगुण गाइआ मुखि बोली हरि बाणी ।
संतजना वड़भागी पाइआ हरि कथीऐ अकथ कहाणी ॥
हिरदै हरिहरि हरिधुनि उपजी हरि जपीऐ मसतक भागु जी ।
जनु नानकु बोले तीजी लावै हरि उपजै मनि बैरागु जी ॥२०॥

---

१६ दूसरे फेरे मे हरिने सद्गुरु से मेरी भेट करादी है ।
मेरे मन से भय दूर हो गया है, और मन का मैल धुल गया है ।
हरि के गुणो को गाकर, और हरि को अपने सामने देखकर मैने निर्मल पद पा लिया है ।
जगदात्मा हरि से सब-कुछ पसारा हुआ, और भरपूर है ।
अंदर और बाहर हमारे एक ही हरि है,
हरि के जनो से मिलने पर मंगल-गीत गाये जाते हैं ।
दास नानक ने दूसरा फेरा पूरा कर लिया, और उसने अनहद शब्द सुनलिया है ।

२० परमात्मा ने तीसरे फेरे से मन मे आनन्द-उत्साह और वैराग्य की भावना स्फुरित करदी है ।
संतजनो ने मुझे हरि से मिला दिया है, और मैने उसे बडे सद्भाग्य से पाया है ।
उसके गुण गा-गाकर और उसका नाम रट-रटकर मैने उस निर्मल हरि को पाया है ।
बडे भाग्य से संतजनो से मेरी भेट हुई है—जो हरि कथन से परे है, वे मुझे उसकी कथा सुना रहे हैं ।

हरि चउथड़ी लावँ मनि सहजु भइआ हरि पाइआ बलि रामजी।
गुरमुखि मिलिआ सुभाइ हरि मनि तनि मीठा लाइआ बलि रामजी॥
हरि मीठा लाइआ मेरे प्रभ भाइआ अनदिनु हरि लिव लाई।
मन चिंदिआ फलु पाइआ सुआमी हरि नामि बजी वाधाई॥
हरि प्रभि ठाकुरि काजु रचाइआ धन हिरदै नामि विगामी।
जनु नानकु बोले चउथी लावै हरि पाइआ प्रभु अविनासी॥२१॥

राग सूही—छंत

आवहो संतजनहु गुण गावहु गोविंद केरे राम।
गुरमुखि मिलि रहीऐ घरि वाजहि सबद घनेरे राम॥

हृदय मे हरि की ही ध्वनि उठ रही है, मै वही एक नाम जप रहा हूँ-मेरे भाग्य मे लिखा भी यही था।

दास नानक ने तीसरा फेरा पूरा कर लिया और हरि का अनुराग और (जगत् के प्रति) वैराग्य उसके मन मे स्फुरित हो गया है।

२१ चौथे फेरे मे परमात्मा ने सहज ज्ञान मेरे मन मे प्रकाशित कर दिया है, और मैने हरि को पा लिया है।

गुरु के उपदेश से मुझे सद्वृत्ति प्राप्त हो गई है, और मुझे मेरे मन को और देह को परमात्मा प्रिय लग रहा है।

वह मुझे प्रिय और मनोहर लग रहा है, मै दिन-रात उसका ध्यान करता हूँ।

उसके नाम के आनन्द-गीत-गा-गाकर मुझे मनचाहा फल मिल गया है।

प्रभु ने काज पूरा कर दिया, और वधू का हृदय हरि-नाम ले-लेकर प्रफुल्लित हो गया है।

दास नानक ने यह चौथा फेरा भी पूरा कर लिया, और अविनाशी प्रभु को पा लिया है।

२२ घरि ''घनेरे=घट के अंदर अनेक प्रकार के शब्द और अनहद नाद हो रहे हैं। नेरे=पास। थाईं=जगह। अहिनिसि=दिन-रात। सालाही=प्रशंसा

सबद घनेरे हरि प्रभ तेरे तू करता सभ थाई।
अहिनिसि जपी सदा सालाही साच सबदि लिव लाई॥
अनदिनु सहजि रहै रंगिराता राम नामु रिद पूजा।
नानक गुरमुखि एकु पछाणै अवरु न जाणै दूजा॥२२॥

सभ महि रवि रहिआ सो प्रभु अंतरजामी राम।
गुरसबदि रवै रवि रहिआ सो प्रभु मेरा सुआमी राम॥
प्रभु मेरा सुआमी अंतरजामी घटि घटि रविआ सोई।
गुरमति सचु पाईऐ सहजि समाईऐ तिसु बिनु अवरु न कोई॥
सहजे गुण गावा जे प्रभ भावा आपे लए मिलाए।
नानक सो प्रभु सबदे जापै अहिनिसि नामु धिआए॥२३॥

इहु जगु दुतरु मनमुख पारि न पाई राम।
अंतरे हउमै ममता कामु क्रोधु चतुराई राम॥
अंतरि चतुराई थाइ न पाई बिरथा जनमु गवाइआ।
जम मगि दुखु पावै चोटा खावै अंति गइआ पछुताइआ॥
बिनु नावै को बेली नाही पुतु कुटंबु सुतु भाई।
नानक माइआ मोह पसारा आगै साथि न जाई॥२४॥

करके, गुण गाकर। लिव = लौ, प्रीति। अनदिनु = नित्य। रंगिराता = अनुराग में रँगा हुआ। रिद = हृदय।

२३ रवि रहिआ = रम रहा है। गुरुसबदि रवै = गुरु के उपदेश में रमता या वास करता है। गुरु मति = गुरु के उपदेश से। सहजि समाईऐ = सहज या समाधि की अवस्था में स्थित हो जाये।

२४ दुतरु = दुस्तर, जो बड़ी कठिनता से पार किया जाये। हउमै = अहंकार। थाइ = थाह। बिनु ...नाही = हरिनाम के सिवाय दूसरा कोई और सहारा नहीं। पुतु सुतु = पुत्र और सुत का एक ही अर्थ होता है। यहाँ एक ही

हउ पूछउ अपना सतिगुरु दाता किनविधि दुतरु तरीऐ राम ।
सतिगुर भाइ चलहु जीवतिआ इव मरीऐ राम ॥
जीवतिआ मरीऐ भउजलु तरीऐ गुरमुखि नामि समावै ।
पूरा पुरख पाइआ वड़भागी साचि नामि लिव लावै ॥
मनि परगासु भई मनु मानिआ रामनामि वडिआई ।
नानकप्रभु पाइआ सबदि मिलाइआ जोती जोति मिलाई ॥२५॥

रागु बसंतु—अष्टपदी

काइआ नगरि इकु बालकु वसिआ खिनु पलु थिरु न रहाई ।
अनिक उपाउ जतन करि थाके बारं बार भरमाई ॥
मेरे ठाकुर बालकु इकतु घरि आणु ।
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ भजु राम नामु नीसाणु ॥
इहु मिरतक मड़ा सरीरु है सभु जगु जितु राम नामु नही वसिआ ।
राम नामु गुरि उदकु चुआइआ फिरि हरिआ होआ रसिआ ॥

अर्थ के दो शब्दो को या तो अधिक जोर देने के लिए रखा है, या भाई के पुत्र, यह अर्थ भी हो सकता है ।

२५ हउ पूछउ = मै पूछता हूँ । किन बिधि = किस प्रकार । जीवतिआ इव मरीए=जीतेजी ही मर जाये, अर्थात् अहकार को मारदे । समावै=रम जाये । मति परगासु भई = बुद्धि परमार्थ-ज्ञान से प्रकाशित हो गई । वडिआई= महिमा ।

२६ बालकु = मन से आशय है । खिनु = क्षण । थिरु = स्थिर, अचचल । भरमाई = इधर-उधर घूमता रहता है । इकतु घरि आणु = एक नियत घर मे लाकर बिठादे । इहु 'वसिआ = इस ससार मे उन सभीके शरीर मानो कब्र की मिट्टी है, जिनमे राम-नाम का वास नही है । रामनामु रसिआ = गुरु रामनाम का जल जब ढाल देता है, तब सूखा भी हरा हो जाता है , और उसमे रस भर जाता है । मृतक भी हरिनाम की सजीवनी से

मै निरखत निरखत सरीरु सभु खोजिआ इकु गुरमुखि चलतु दिखाइआ।
बाहरु खोजि मरे सभि साकत हरि गुर मति घरि पाइआ ॥
दीना दीन दयाल भए है जिउ क्रिसनु बिदर घरि आइआ।
मिलिओ सुदामा भावनी धारि सभु किछु आगै दालदु भजि समाइआ ॥
राम नाम की पैज वडेरी मेरे ठाकुरि आपि रखाई।
जे सभि साकत करहि बखीली इक रती तिलु न घटाई ॥
जन की उसतति है राम नामा दह दिसि सोभा पाई।
निंदकु साकत खवि न सकै तिलु आपणै घरि लूकी लाई ॥
जन कउ जनु मिलि सोभा पावै गुण महि गुण परगासा।
मेरे ठाकुर के जन प्रीतम पिआरे जो होवहि दासनिदासा ॥
आपे जलु अपरपारु करता आपे मेलि मिलावै।
नानक गुरमुखि सहजि मिलाए जिउ जलु जलहि समावै ॥२६॥

सोरठ की वार

हरि दासन सिउ प्रीति है हरि दासन को मितु ॥
हरि दासन कै वसि है जिउ जंती कै वसि जंतु ॥

प्रफुल्लित हो जाता है। चलतु दिखाइआ=दृष्टि देदी। साकत=नास्तिकों अर्थात् ईश्वर पर ईमान न लानेवालो से आशय है। गुरमति घरि पाइआ=गुरु के उपदेश से परमात्मा को घर बैठे ही पा लिया। दीना-दीन=दीनो से भी दीन। बिदर=विदुर। भावनी=भक्ति-भावना। दालदु भजि=दरिद्रता दूर कर। समाइआ=समृद्ध बना दिया। बखीली=कलक या अप्रतिष्ठा। उसतति=स्तुति। खवि न सकै=रोक या अटका नही सकते। आपणै घरि लूकी लाई—अपने घरो मे आग लगादी। आपे जलु=सिरजनहार समुद्र के समान है। आपे मेलि मिलावै—अपने आपसे मिलन वही कराता है।

१ सिउ=से, के साथ। मितु—मित्र। जती=यत्री, बाजा बजाने-

हरि के दास हरि धिआइऐ करि प्रीतम सिउ नेहु ।
किरया करिकै सुनहु प्रभु सभ जग महि वरसै मेहु ॥
जो हरि दासन की उसतति है सा हरि की वडिआई ।
हरि आपणी वडिआई भावदी जन का जैकारु कराई ।।
सो हरिजनु नामु धिआइदा हरि हरिजनु इक समानि ।
जनु नानक हरि का दासु है हरि पैज रखहु भगवान ॥१॥

सलोक

नानक प्रीति लाई तिनि साचै तिसु बिनु रहणु न जाई ।
सतिगुरु मिलै त पूरा पाईऐ हरि रसि रसन रसाई ॥

पउडी

रैणि दिवसु परभाति तूहै ही गावणा ।
जीअ जंत सरबत नाउ तेरा धिआवणा ॥
तू दाता दातारु तेरा दित्ता खावणा ।
भगत जना कै संगि पाप गवावणा ॥
जन नानक सद बलिहारे बलि बलि जावणा ॥२॥

वाला । जंतु=यंत्र, बाजा । हरि धिआइऐ=हरि का ध्यान करते हैं । मेहु=करुणारूपी जल, यह भी अर्थ हो सकता है । उसतति=स्तुति, प्रशंसा । वडिआई=महिमा । हरि·· कराई=जब उसके सेवकों का जयकार होता है, तो परमात्मा उसे अपनी ही महिमा मानता है । धिआ-इदा=ध्यान करते हैं । इक समानि=एक ही है दोनो । पैज=लाज ।

२ लाई=लगाई । तिसु · जाई=उस प्रभु के बिना जिनसे रहा नहीं जाता, बिना उसके बेचैन रहते हैं । हरिरसि रसन रसाई=हरिनाम के रस से जिह्वा को रसवंती कर लिया है, जिनकी वाणी से आनन्द-ही-आनन्द झरता रहता है । तूहै=तुझे । गावणा=यश गाते हैं । सरबत=सर्वत्र । दित्ता=दिया हुआ, दान । सद=सदा ।

१ चडि ओहिथै चालसउ=नाव पर चढ़कर आगे बढ जाऊँगा । सागरु लहरी देइ=समुद्र में चाहे कितनी ही ऊँची लहरें उठती हो । ठाक न

मारू की वार

चड़ि बोहिथै चालसउ सागरु लहरी देइ ।
ठाक न सचै बोहिथै जे गुरु धीरक देइ ॥
तितु दरि जाइ उतारीआ गुरु दिसै सावधानु ।
नानक नदरी पाईऐ दरगह चलै मानु ॥

पउड़ी

निहकटक राजु भुंचि तू गुरमुखि सचु कमाई ।
सचै तखत बैठा निआउ करि सतसंगति मेलि मिलाई ॥
सचा उपदेसु हरि जापणा हरि सिउ बणि आई ।
ऐथै सुखदाता मनि वसै अंति होइ सखाई ॥
हरि सिउ प्रीति ऊपजी गुरि सोझी पाई ॥१॥

सलोक

वड़भागिया सोहागणी जिन्हां गुरमुखि मिलिआ हरिराइ ।
अंतर जोति परगासिया नानक नामि समाइ ॥१॥

वाहु वाहु सतिगुरु सतिपुरख है, जिसनों सिम्रतु सभकोई ।
वाहु वाहु सतिगुरु निरवैरु है, जिसु निंदा उसतति तुलि होइ ॥२॥

सचै बोहिथै=सच्ची नाव रुक नहीं सकती। धीरक=हिम्मत। तितु दरि=उस घाट पर। दिसै=दीख रहा है। सावधानु=जागृत। नदरी=कृपा-दृष्टि। दरगह=ईश्वर का दरबार। मानु=प्रतिष्ठा, आदर। भुंचि=भोग। निआउ=न्याय। ऐथै=इस लोक में। सुखदाता=आनन्ददाता परमात्मा। अंति=परलोक में।

१ नामि समाइ=हरि-नाम में लौलीन हो गये।

२ जिसनो=जिसको। सिम्रतु=स्मरण करते हैं। उसतति=स्तुति, प्रशंसा। तुलि=तुल्य, समान।

वाहु वाहु सतिगुरु सुजाणु है, जिसु अंतरि ब्रह्मु विचारु ।
वाहु वाहु सतिगुरु निरंकारु है, जिसु अंतु न पारावारु ॥३॥

वड़भागी हरि पाइआ पूरन परमानन्दु ।
जन नानक नामु सलाहिआ, बहुड़ि न मनि तनि भंगु ॥४॥

गुरमुखि सची आसकी जितु प्रीतमु सचा पाईऐ ।
अनदिनु रहहि अनदि नानक सहजि समाईऐ ॥५॥

सचा प्रेम पिआरु गुर पूरे ते पाइए ।
कबहू न होवै भगु नानक हरिगुण गाइए ॥६॥

---

४ सलाहिआ = सराहना या स्तुति की । वहुडि = फिर । न मनि तनि भगु = मन और तन से विलग नहीं होता ।

५ आसकी = प्रीति । अनदिनु = नित्य, निरतर ।

गुरु अर्जुनदेव

चोला-परिचय

जन्म-संवत्—१६२० वि०, वैशाख कृ० ७

जन्म-स्थान—गोइन्दवाल

पिता—गुरु रामदास

माता—बीबी भानी

भेष—गृहस्थ

मृत्यु-संवत्—१६६३ वि०, ज्येष्ठ शु० ४

मृत्यु-स्थान—लाहौर (रावी नदी में)

गुरु अर्जुनदेव बचपन से ही बड़े होनहार दीखते थे। इनके नाना गुरु अमरदास की यह भविष्यद्वाणी सर्वथा सत्य सिद्ध हुई कि "यह मेरा दोहित पानी का बोहित होगा।" इन्होंने अपनी ऊँची रहनी और गहरी बानी के द्वारा हजारों-लाखों को पार लगाया।

विवाह इनका जालंधर जिले के कृपाचंद्र की पुत्री गंगा देवी के साथ हुआ। इन्हीं गंगा के गर्भ से महाप्रतापी छठे गुरु हरगोविन्द का जन्म हुआ।

सबसे पहले गुरु अर्जुनदेव ने संतोखसर और अमृतसर इन दोनों तालाबों के घाट बँधवाये, और रामदासपुर शहर को भी विस्तृत किया। रामदाससर (अमृतसर) की महिमा इन्होंने अपने इस पद में गाई है :—

"रामदास सरोवरि नाते। सभि उतरे पाप कमाते॥
निरमल होए करि इसनाना। गुरि पूरे कीने दाना॥
सभि कुसल खेम प्रभ धारे।
सही सलामति सभि लोक उबारे गुरु का सबदु वीचारे॥
साध संगि मलु लाथी। पार ब्रह्मु भइओ साथी॥
नानक नामु धिआइआ। आदिपुरख प्रभु पाइआ॥"

गुरु अर्जुनदेव ने अमृतसर में एक सुन्दर मन्दिर भी बनवाया, जिसे हर-मंदिर या दरबार साहिब भी कहते हैं। इस मन्दिर में गुरु ग्रन्थ साहिब की सेवा-पूजा की जाती है।

गुरु अर्जुनदेव ने तरनतारन का भी निर्माण किया, और वहाँ भी एक तालाब खुदवाया।

इसी प्रकार ब्यास और सतलज नदियों के बीच एक दूसरा शहर भी इन्होंने बसाया, जिसे कर्त्तारपुर कहते हैं।

इनका प्रायः सारा ही जीवन संघर्ष में बीता। इनके प्रति एक न-एक कारण से ये तीन व्यक्ति द्वेष रखते थे--(१) बादशाह अकबर का मंत्री राजा बीरबल, (२) इनका बड़ा भाई प्रिथिया, और (३) बादशाह का एक अर्थमंत्री चंदूशाह।

बीरबल का तो गुरु अर्जुनदेव के साथ केवल धार्मिक मत-भेद था। उसने इन्हें कई बार अपमानित करने का प्रयत्न किया, पर वह सफल नहीं हुआ।

प्रिथिया को गुरु की गद्दी नहीं मिली थी, इसीलिए वह इनका शत्रु बन बैठा। इनके विरुद्ध उसने अनेक षड्यंत्र रचे। इनके पुत्र हरगोविन्द को विष दिलानेतक का प्रयत्न किया। बादशाह को भी इनके खिलाफ कई बार उसने उभाड़ा। जितनी भी दुष्टता और नीचता हो सकती थी प्रिथिया ने उस सबका प्रयोग किया। उसकी स्त्री गुरु का सर्वनाश करने-कराने के प्रयत्नों में उससे भी हमेशा चार कदम आगे रहती थी।

चंदूशाह भी गुरु का जानी दुश्मन था। वह दिल्ली में रहता था। उसको अपनी एक लड़की के लिए सुयोग्य वर की आवश्यकता थी। उसके आगे गुरु अर्जुनदेव के लड़के हरगोविन्द का प्रस्ताव रखा गया। पहले तो उसे यह प्रस्ताव पसंद नहीं आया और यह कहकर गुरु का घोर अपमान किया कि—'राजमहल की सुन्दर खपरैल को भला कोई नाली में फेंकेगा?' किन्तु अंत में अपनी स्त्री के आग्रह पर उसने उक्त बात को मान लिया। पर अब गुरु के सिक्ख राजी नहीं हुए। गुरु का अपमान उन्हें सहन नहीं हुआ। परिणामतः चंदूशाह का प्रस्ताव ठुकरा दिया गया। इस घटना ने उसे गुरु अर्जुनदेव का घोर शत्रु बना दिय। उसने उनको मिट्टी में मिला देने की प्रतिज्ञा की। चंदूशाह ने कितने ... गुरु अर्जुनदेव के विरुद्ध रचे, और प्रिथिया ने भी उसका इन कुकृत्यों

गुरु अर्जुनदेव ने अपने सतत संघर्षमय जीवन में भी हमेशा शन्ति, गभीरता, क्षमाशीलता और तितिक्षा का परिचय दिया। वे अपने धर्म-पथपर से अततक विचलित नही हुए। रचनात्मक कार्य उनका बराबर जारी रहा। अपने जोवन में उन्होंने जो सबसे महान् और चिरस्थायी कार्य किया वह था गुरु ग्रन्थ साहिब का सुन्दर संकलन तथा सपादन। चारों पूर्व गुरुओं की यथार्थ बानी का रागबद्ध सग्रह करना कोई साधारण काम नही था। गुरु अमरदास अपनी रचना 'अनंदु' की २३वी तथा २४वी पउडी मे कह गये थे कि सिक्खो को गुरु के सच्चे पदो का ही पाठ करना चाहिए। गुरु अर्जुनदेव की आज्ञा से भाई गुरदास ने इस भगीरथ कार्य को हाथ मे लिया। गुरु अमरदास के जेठे पुत्र मोहन को प्रसन्न करके गोइन्दवाल से गुरु अर्जुनदेव गुरुओ की सारी सच्ची बानी को ले आये। उस सब बानी का तथा अपनी भी बानी का उन्होने सग्रह और संपादन कराया, और जयदेव, कबीर, रैदास, फरीद आदि भक्तो की भी कुछ चुनी हुई बानियों को ग्रन्थ साहिब मे आदरपूर्वक स्थान दिया। गुरु अर्जुनदेव ने बोल-बोलकर सब पदो और सलोकों को भाई गुरदास से गुरुमुखी मे लिखवाया। गुरु अर्जुनदेव ने यह एक बहुत बडा काम किया, और इससे वे अमर हो गये। सत्तै ने बलवड की लंबी रचना मे निम्नलिखित पउडी जोडकर गुरु अर्जुनदेव की गुरुग्रन्थ साहिब-सपादन-विषयक जो ऊँची प्रशंसा की वह सर्वथा योग्य है :—

चारे जागे चहु जुगी पचाइणु आपे होआ ॥
आपीनै आपु साजिओनु आपेही थंम्हि खलोआ ॥
आपे पटी कलम आपि आपि लिखणहारा होआ ॥
सभ उमति आवण जावणी आपेही नवा निरोआ ॥
तखति बैठा अरजन गुरु सतिगुर का खिवै चदोआ ॥
उगवणहु तै आथवणहु चहु चकी कीअनु लोआ ॥
जिन्ही गुरु न सेविओ मनमुखा पइआ मोआ ॥
दूणी चउणी करामाति सचे का सचा ढोआ ॥
चारे जागे चहु जुगी पचाइणु आपे होआ ॥

अर्थात्, चारो गुरुओंने जगत् के चारो युगो को जगमगा दिया; अर्जुन, तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

तूने स्वयं ही यह सब रचा है, तू ही इस रचना का आधार-स्तंभ है।

तू ही पट्टी है, तू ही कलम है, तू ही लिखनेवाला है।

मनुष्य आते है और चले जाते है, पर तू सदाही नवीन और पूर्ण है।

गुरु अर्जुन गुरु के तख्त पर बैठा है, सतगुरु का छत्र उसके ऊपर दिप रहा है।

उदयाचल से अस्ताचलतक सारी दिशाएँ तूने प्रकाशित करदी हैं।

जिन्होंने सतगुरु की सेवा नही की, उन्हे बारबार जन्म लेना होगा।

तेरे चमत्कार दूने चौगुने बढ़ेगे, सच्चे गुरु का तू सच्चा उत्तराधिकारी है।

चारो गुरुओ ने जगत् के चारों युगो को जगमगा दिया; अर्जुन, तू उनके स्थान पर पाँचवाँ है।

अंत मे, ४३ वर्ष की अल्पायु मे, महान् सत गुरु अर्जुनदेव को धर्म की वेदी पर बलि होना पडा। प्रिथिया के पुत्र मिहरबान और चदू अपने महान् कुकृत्य में सफल हो गये। गुरु अर्जुनदेव की झूठी-झूठी शिकायतें जहागीर बादशाह के कानों मे पहुँचाई गई। उन्हे छल-बल से पकडवाकर बादशाह के आगे पेश किया गया और इस्लाम का विरोधी ठहराया गया। फैसला यह सुनाया गया कि वे दो लाख रुपये बतौर जुर्माने के दे, और गुरु ग्रन्थ साहिब मे से आपत्तिजनक अंश को निकालदे। उन्होने दोनों ही बाते नामजूर करदी। उन्होने कहा कि "ग्रन्थ साहब मे ऐसी एक भी पंक्ति नहीं, जिसमे हिन्दू अवतारो और मुसलिम पैगंबरो की निदा की गई हो। हाँ, यह जरूर उसमे कहा गया है कि पैगबर, पीर और अवतार सब उसी अकाल परमात्मा के सिरजे हुए हैं, जिसका अत आजतक किसीको भी नही मिला। मेरा मुख्य उद्देश है सत्य का प्रचार और असत्य का निवारण, इसमें अगर मेरा यह नाशवान शरीर भी चला जाये, तो उसे मै अपना अहोभाग्य मानूँगा।" बादशाह इसपर बहुत बिगडा। गुरु अर्जुनदेव को जेलखाने में डाल दिया गया, और वहाँ उन्हे अनेक अमानुषिक यातनाएँ दी गई। आग-सी गरम रेत उनके ऊपर डाली गई, और जलती हुई लाल कडाही मे उन्हें बिठाया गया। पर उन्होने सारी यातनाओ को शाति से सहन कर लिया। उन्होने हँसते हुए आततायी चंदू से दृढता के स्वर में कहा कि, अरे मूर्ख!

'फूटो अंडा भरम का, मनहि भइउ परगासु।
काटी बेडी पगह ते, गुरि कीता बदि खलासु॥

जन्म-जन्म की बेडी कट चुकी थी, सतगुरु ने माया के बंदीगृह से मुक्त कर दिया था। भ्रम का परदा हट चुका था, और अब मन के अंदर दिव्य प्रकाश जगमग-जगमग हो रहा था।

पाँच दिन कारागार मे बीत गये। छठे दिन उन्होने रावी नदी मे स्नान कर आने की इजाजत माँगी, और वह मिल गई। अपने साथ पाँच प्यारे सिक्खो को लेकर वे हथियारबंद सिपाहियो की निगरानी मे नहाने के लिए बंदीगृह से निकले। सारे बदन पर फफोले पडे हुए थे, और पैरों मे कई घाव हो गये थे। लेकिन चेहरे पर प्रेम की वही मस्ती खेल रही थी, मानो बंदी-गृह से छूटकर अपने प्यारे प्रभु से मिलने जा रहे थे। ध्यान मे मग्न थे, मुख से 'वाहगुरु वाहगुरु' निकल रहा था।

रावी मे उतरकर स्नान किया, और फिर 'जपुजी' का मंगल पाठ, और वही पर शान्तिपूर्वक अपना चोला छोड दिया। वह संवत् १६६३ की जेठ सुदी चौथ का दिन था—बहुत बडे बलिदान का चिरस्मरणीय दिन।

बानी-परिचय

गुरु अर्जुनदेव की बानी बहुत बडी है, ६००० से भी अधिक इनके पद और सलोक हैं। 'महला ५' के अंतर्गत जितने भी पद और सलोक मिलते हैं वे सब इन्हीके रचे हुए हैं। 'बावन अखरी', सवैये, छंत, फुनहे, अनेक रागों मे 'वारे' तथा 'सहसकृती के सलोक' इनके प्रसिद्ध हैं। पर इनकी 'सुखमनी' नाम की आनन्ददायिनी सुंदर सरस रचना सब से अधिक प्रसिद्ध है। इसमे २४ अष्टपदियाँ हैं। हमने प्रस्तुत ग्रन्थ मे सारी सुखमनी नही, पर उसकी बहुत-सी अष्टपदियाँ संकलित की हैं। यह इनकी अति लोकप्रिय रचना है। इसके पाठ से चित्त को बहुत शान्ति मिलती है। प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् 'सुखमनी' का पाठ किया जाता है। भाषा सरस तथा साधु है। पंजाबी का पुट कम और हिन्दी का रंग अधिक है। इनके कितनेही पद बहुत मधुर और प्रसादगुण से युक्त हैं। भक्ति-भावना उनमे कूट-कूटकर भरी है। हमे इस बात का पछताव है कि स्थल-संकीर्णता के कारण गुरु अर्जुनदेव के हजारो पदो मे से हम बहुत ही थोडे पद इस संग्रह-ग्रन्थ मे ले सके।

आधार

१ गुरु ग्रन्थ साहिब—सर्व हिन्द सिक्ख मिशन, अमृतसर
२ दि सिक्ख रिलीजन (भाग ३)—मेकालीफ

राग़ु सारंग

अब मोरो ठाकुर सिउ मनु माना ।

साध कृपा दइआल भये हैं इहु छेदिओ दुसटु बिगाना ॥

तुमहो सुंदर तुमहि सिआने, तुम ही सुघर सुजाना ॥

सगल जोग अरु गिआन धिआन इक निमख न कीमति जाना ॥

तुमही नायक तुमही छत्रपति, तुम पूरि रहे भगवाना ।

पावउ दानु संत-सेवा हरि, नान सद कुरबाना ॥१॥

जा की रामनाम लिव लागी ।

सजनु सुहृद सुहेला सहजे, सो कहिए बड़भागी

रहित-बिकार अलिप माइआ ते अहंबुद्धि-बिखु तिआगी ॥

दरस पिआस आस एकहि की, टेक हिये प्रिय पागी ॥

अचिंत सोइ जागनु उठि बैसनु अचिंत हसत बैरागी ॥

कहु नानक जिनि जगतु ठगाना, सु माइआ हरिजन ठागी ॥२॥

---

१ सिउ=से । इहु ' बिगाना=इस दुष्ट शत्रु (मन) ने मेरा नाश कर दिया था, अथवा, दयालु संतोंने इस दुष्ट शत्रु का छेदन कर दिया । सगल ''जाना=प्रभु के सान्निध्य मे एक क्षण भी जो आनन्द मिला उसकी तुलना मे सारा योग और ज्ञान-ध्यान तुच्छ है । निमख=निमिष, पल । सद=सदा । कुरबाना=बलिहारी ।

२ लिव=प्रीति, ध्यान । सजनु=सबंधी, प्यारा । सुहेला=सु दर । अलिप=निर्लेप । अहंबुधि बिखु=अहंकार रूपी विष । अचिंत=निश्चिंत । बैसनु=बैठना । ठागी=हरिभक्तों द्वारा ठगी गई ।

माई री मनु मेरो मतवारो ।
पेखि दइआल अनंद सुख पूरन हरि रसि पिओ खुमारो ॥
निरमल भइउ उजल जसु गावत बहुरि न होवत कारो ॥
चरनकमल सिउ डोरी राची भेटिओ पुरखु अपारो ॥
करु गहि लीने सरबसु दीने, दीपक भइउ उजारो ॥
नानक नामि-रसिक बैरागी कुलह समूहा तारो ॥३॥

अवरि सभि भूले भ्रमत न जानिआ ।
एक सुधाखरु जाकै हिरदै वसिआ तिनि वेदहि ततु पछानिआ ॥
परविरति मारगु जेता किछु होइऐ तेता लोग पचारा ॥
जउलउ रिदै नही परगासा, तउलउ अंध अंधारा ॥
जैसे धरती साधै बहु बिनु बिधि बिनु बीजै नही जामै ॥
रामनाम बिनु मुकति न होईहै तुटै नही अभिमानै ॥
नीरु बिलोवै अति स्रमु पावै, नैनू कैसे रीसै ।
बिनु गुर भेट मुकति ना काहू मिलत नही जगदीसै ॥
खोजत खोजत इहै बिचारिओ सरब सुखा हरिनामां ।
कहु नानकु तिसु भइओ परापति जाकै लेखु मथामां ॥४॥

---

३ खुमारो=नशा । कारो=काला, मलिन । डोरी राची=प्रीति लगी । कुलह समूहा=अनेक कुलों को ।

४ सुधाखरु=सुधा+अक्षर, अमृत के जैसा प्रभु-नाम का अक्षर । पछानिआ=पहचाना । परविरति=प्रवृत्ति, ससार-बंधन के कर्म । पचारा=प्रचार किया । परगासा=प्रकाश (आत्म-ज्ञान का) । साधै=बनाये, कमाये । नैनू कैसे रीसै=मक्खन कैसे निकल सकता है । सुखा=सुखदायक । मथामा=माथे में अर्थात् भाग्य में ।

उआ अउसर कै हउ बलि जाई।
आठ पहर अपना प्रभु-सिमरनु बड़भागी हरि पाई ॥
भलो कबीरुदासु दासन को ऊतम सैनु जनु नाई ॥
ऊच ते ऊच नामदेव समदरसी, रविदास ठाकुर बनि आई ॥
जीव पिंडु तनु धनु साधन का इहु मनु संत रेनाई ॥
संत प्रतापि भरम सभि नासे नानक मिले गुसाई ॥५॥

रागु प्रभाती

राम राम राम राम जाप।
कलि-कलेस लोभ-मोह बिनसि जाइ अहं-ताप ॥
आपु तिआगि, संतचरन लागि, मनु पवितु, जाहि पाप ॥
नानकु बारिकु कछू न जानै, राखन कउ प्रभु माई बाप ॥६॥

चरनकमल-सरनि टेक।
ऊच मूच बेअंतु ठाकुरु, सरब ऊपरि तुही एक ॥
प्रानअधार दुख बिदार, देनहार बुधि-बिबेक ॥
नमसकार रखनहार मनि अराधि प्रभू मेक ॥
संत-रेन करउ मंजनु नानकु पावै सुख अनेक ॥७॥

---

५ उवा=वा, उस। हउ=हौं, मैं। ऊतमु=उत्तम, श्रेष्ठ। सैनु जनु=सेना नाम का हरि-भक्त जो जाति का नाई था। रविदास··· आइ=रैदास की प्रीति भगवान् से निभ गई। रेनाई=(चरणों की) रेणु अर्थात धूल। गुसाई=प्रभु, परमात्मा।

६ अहताप=अहंकार की आग, जो निरंतर जलाती रहती है। आपु=अहंकार। पवितु=पवित्र। बारिकु=बालक। कउ=को।

७ ऊच मूच=ऊँचे से ऊँचा। बेअंतु=अनंत। मनि अराधि=मनमें आराधना करनेयोग्य। संत··· मजनु=संतों की चरण-रज से मन को माँजकर निर्मल करूँ।

राग रामकली

जपि गोबिन्दु गोपाल लालु ।
रामनाम सिमरि तू जीवहि फिरि न खाई महाकालु ॥
कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भ्रमि आइओ। बड़ै भागि साधु-संगु पाइओ ॥
बिनु गुर पूरे नाही उधारु । बाबा नानकु आखै एहु बीचारु ॥८॥

कोई बोले राम नाम कोई खुदाइ ।
कोई सेवै गुसइआ कोई अलाहि ॥
कारणकरण करीम ।
किरपा धारि रहीम ॥

कोई नावै तीरथि कोई हज जाइ । कोई करै पूजा कोई सिरु निवाइ ॥
कोई पढ़ै बेद कोई कतेब । कोई ओढ़ै नील कोई सुपेद ॥
कोई कहै तुरकु कोई कहै हिंदू । कोई बाछै भिसतु कोई सुरगिंदू ॥
कहु नानक जिनि हुकमु पछाना । प्रभ साहिब का तिनि भेदु जाना ॥९॥

तेरे काजि न गृहु राजु मालु । तेरे काजि न बिखै जजालु ॥
इसट मीत जाणु सभ छलै । हरि हरि नामु संगि तेरे चलै ॥
रामनाम गुण गाइले मीता हरि सिमरित तेरी लाज रहै ।
हरि सिमरित जमु किछु न कहै ॥

---

८ उधारु=उद्धार, मुक्ति । आखै=कहता है । वीचारु=सार-तत्त्व की बात ।

९ गुसइआ=गोसाईं, परमात्मा । अलाहि=अल्लाह । कारण करण=कारण का भी कारण । करीम=कृपालु । रहीम=दयालु । नावै=स्नान करता है । सिरु निवाइ=नमाज पढ़ता है । कतेव=कुरान से आशय है । नील=नीला कपड़ा, जिसे मुसलमान फकीर ओढ़ते हैं । सुपेद=सफेद वस्त्र । बाछै=चाहता है । भिसतु=बहिश्त, स्वर्ग । सुरगिंदू=सुरलोक ।

बिनु हरि सगल निरारथ काम । सुइनारूपा माटी दाम ॥
गुर का सबदु जापि मन सुखा । ईहा ऊहा तेरो ऊजल मुखा ॥
करि करि थाके बड़े वडेरे । किनही न कीए काज माइआं पूरे ॥
हरि हरि नामु जपै जनु कोइ । ताकी आसा पूरन होइ ॥
हरि भगतन को नामु आधारु । संता जीता जनमु अपारु ॥
हरि सतु करे सोई परवाणु । नानक दास ताकै कुरबाणु ॥१०॥

गावहु राम के गुण गीत ।
नाम जपत परम सुख पाईऐ आवागउणु मिटै मेरे मीत ॥
गुण गावत होवत परगासु । चरनकमल महि होइ निवासु ॥
संतसंगति महि होइ उधारु । नानक भउजलु उतरसि पारु ॥११॥

पवनै महि पवनु समाइआ । जोती महि जोति रलिजाइआ ॥
माटी माटी होई एक । रोवणहारे की कउन टेक ॥
कउनु मूआ रे कउनु मूआ ॥
ब्रह्मगिआनी मिलि करहु विचारा इहु तउ चलतु भइआ ॥
अगली किछु खबरि न पाई । रोवणहारु भि ऊठि सिधाई ॥
भरम मोह के बांधे बंध । सुपना भइआ भखलाए अंध ॥

भेदु=मर्म, असली रहस्य ।

१० तेरे काजि न=तेरे काम आनेवाला नहीं । इमट=इष्ट, प्रिय । छलै=धोखा देंगे । सगल=सकल । निरारथ=व्यर्थ । सुइना रूपा=सोना-चाँदी । मन सुखा=प्रसन्न मन से । ईहा ऊहा=इस लोक में तथा परलोक में । माइआ=माया । चीता=सफल किया । परवाणु=प्रमाण, सत्य ।

११ परगासु=आत्म-ज्ञान का प्रकाश । उधारु=उद्धार, मोक्ष । भउजलु=संसार-सागर ।

१२ रलि जाइआ=मिल गई, एक ही हो गई । इहु=यह जीव । अगली=

इह तउ रचन रचिआ करतारि । आवत जावत हुकमि अपारि ॥
नह को मूआ न मरणै जोगु । नह बिनसै अबिनासी होगु ॥
जो इहु जाणहु सो इहु नाहि । जानणहारे कउ बलि जाउ ॥
कहु नानक गुरि भरमु चुकाइआ । ना कोई मरै न आवै जाइआ ॥१२॥

रागु सिरी

प्रीति लगी तिसु सच सिउ मरै न आवै जाइ ॥
ना विछोड़िआ बिछुड़ै सभ महि रहिआ समाइ ।
दीन दरद दुख भंजना सेवक कै सतभाइ ॥
अचरजु रूपु निरंजनो गुरि मेलाइआ माइ ॥
भाई रे मीत करहु प्रभु सोइ ।
माया मोह परीति ध्रिगु सुखी न दीसै कोइ ॥
दाना दाता सीलवंत निरमलु रूप अपारु ।
सखा सहाई अति बड़ा ऊचा बड़ा अपारु ॥
बालक बिरधि न जाणीऐ निहचलु तिसु दरवारु ।
जो मंगीऐ सोइ पाइऐ निरधारा आधारु ॥

मृत्यु के उपरान्त की । भखलाए=बौखला गये, पागल हो गये । हुकमि अपारि=अपरपार की आज्ञा से । नह=नहीं । को=कोई । जो इहु नाहि=जो इस देह को जीव जान लिया था वह नही है । जानणहारे जाउ=ज्ञान के मूल अधिष्ठान परमात्मा पर, अथवा आत्म-अनात्म के भेद को जाननेवाले सत्गुरु पर मैं निछावर होता हूँ । गुरि=गुरुने । भरमु चुकाइआ=मिथ्या ज्ञान का अंत करदिया, अभेदज्ञान प्राप्त करा दिया ।

१३ तिसु सच सिउ=उस सत्यरूप परमातमा से । ना विछोडिआ विछुडै=मैं चाहे उससे अलग हो जाऊँ, पर वह मुझसे अलग होनेवाला नहीं । सेवक कै सतभाइ=सत्य ही अपने सेवक पर प्रेम करता है । गुरि मेलाइआ माइ=री सखी, गुरुने मुझे उससे मिला दिया है । परीति=प्रीति । दीसै=दीखता है । दान=बुद्धिमान । विरधि=वृद्ध । निरधारा=निर्बल ।

जिसु पेखत किलविख हिरहि मनि तनि होवै सांति।
इकमति एकु धिआइऐ मन की जाहि भरांति॥
गुणनिधानु नवतनु सग पूरन जाकी दाति।
सदा सदा आराधीऐ दिनु बिसरहु नाही राति॥
जिन कउ पूरबि लिखिआ तिनका सखा गोविंदु।
तनु मनु धनु अरपी सभो सगल वारीऐ इह जिंदु॥
देखै सुणै हदूरि सद घटि घटि ब्रहमु रविंदु।
अकिरत घणोने पालदा प्रभ नानक सद बखसिंदु॥१३॥

रागु भैरउ

तू मेरा पिता तू है मेरी माता। तू मेरे जीअ प्रान सुखदाता॥
तू मेरा ठाकुर हउ दासु तेरा। तुझ बिनु अवरु नही को मेरा॥
करि किरपा करहु प्रभ दाति। तुमरी उसतति करउं दिनराति॥
हम तेरे जंत तू बजावनहारा। हम तेरे भिखारी दानु देहि दातारा॥
तउ परसादि रंगरस माणे। घट घट अंतरि तुमहि समाणे॥
तुमरी कृपा ते जपीऐ नाउ। साध संगि तुमरे गुण गाउ॥
तुमरी दइआ ते होइ दरद बिनासु। तुमरी मइआ ते कमल बिगासु॥
हउ बलिहारि जाउं गुरदेव। सफल दरसनु जाकी निरमल सेव॥
दइआ करहु ठाकुर प्रभ मेरे। गुण गावै नानकु नित तेरे॥१४॥

जिसु पेखत=जिसे देखने से। किलविख हिरहि=पाप दूर हो जाते हैं। इक=एकाग्रचित्त से, अनन्यभाव से। मन की जाहि भराति=मन का सारा भ्रम दूर हो जाता है। नवतनु=नूतन। दानि=दान। पूरबि लिखिआ=प्रारब्ध में लिखा है। जिंदु=जीवन। हदूरि=विद्यमान। सद=सदा। रविंदु=रमा हुआ है, व्याप्त। अकिरत=कृतघ्न। बख-सिंदु=क्षमा करनेवाला।

१४ ठाकुर=स्वामी। हउ=हौं, मैं। दाति=दान। उसतति=स्तुति। जंत=यंत्र, बाजा। तउ परसादि=तेरी कृपा से। रंगरस=परमानन्द।

श्रीधर मोहन सगल उपावन निरंकार सुखदाता ।
ऐसा प्रभु छोड़ि करहि अनसेवा कवन बिखिआ रसमाता ॥
रे मनु मेरे तू गोविंद भाजु ।
अवर उपाव सगल मै देखे जो चितवीए तितु बिगरसि काजु ॥
ठाकुर छोड़ि दासी कउ सिमरहि मनमुख अंध अगिआना ।
हरि की भगति करहि तिन निंदहि निगुरे पसू समाना ॥
जीउ पिंडु तनु धनु सभु प्रभु का, साकत कहते मेरा ।
अहंबुधि दुरमति है मैली बिनु गुर भवजलि फेरा ॥
होम जग्य जप तप सभि संजम तटि तीरथि नही पाइआ ।
मिटिआ आपु पए सरणाई गुरमुखि नानक जगतु तराइआ ॥१५॥

रागु नट नाराइन

हउ वारिवारि जाउ गुर गोपाल ।
मै निरगुन तुम पूरन दाते दीनानाथ दइआल ॥
ऊठत बैठत सोवत जागत जीअ प्रान धन माल ।
दरसन पिआस बहुतु मनि मेरे नानक दरस निहाल ॥१६॥

तुमरी मइआ ·· बिगासु=तुम्हारी स्नेहमयी कृपासे हृदयरूपी कमल प्रफुल्लित अर्थात् आनन्दित होता है । सेव=सेवा ।

१५ सगल उपावन=सारी सृष्टि को उत्पन्न करनेवाला । अनसेवा=दूसरे की सेवा । बिखिआ=विषय-भोग । भाजु=भज, स्मरण कर । चितवीऐ=चित्त लगाने पर । दासी कउ=माया को । निगुरे=बिना गुरु की शरण लिये हुए । साकत=शाक्त ; यहाँ निरीश्वर-वादी से तात्पर्य है । भवजलि फेरा=संसार-सागर मे चक्कर लगाते रहना । मिटिआ आपु पए सरणाई=गुरु की शरण मे जाने से अहकार नष्ट हो गया ।

१६ हउ=हौं, मै । जाउ=जाता हूँ । माल=सपत्ति । मनि=मन मे, अतर मे । दरस निहाल=दर्शन पाकर कृतकृत्य हूँगा ।

अपना जनु आपहि आपि उधारिओ ।
आठ पहर जनकै संगि वसिओ मनते नाहि बिसारिओ ॥
बरनु चिहनु नाही किछु पेखिओ दास का कुल न विचारिओ ।
करि किरपा नामु हरि दीओ सहजि सुभाइ सवारिओ ॥
महा बिखमु अगिआन का सागरु तिसते पारि उतारिओ ।
पेखि पेखि नानक बिगसानो पुनह पुनह बलिहारिओ ॥१७॥

मेरे मन जपु जपु हरि नाराइण ।
कबहू न बिसरहु मन मेरे ते आठ पहर गुन गाइण ॥
साधू धूरि करउ नित मज्जनु सभ किलविख पाप गवाइण ।
पूरन पूरि रहे किरपानिधि घटि घटि दिसटि समाइण ॥
जाप ताप कोटि लख पूजा हरि सिमरण तुलि ना लाइण ।
दुइ कर जोड़ि नानक दान मांगै तेरे दासनि दास दसाइण ॥१८॥

उलाहनो मै काहू न दीओ । मन मीठ तुहारो कीओ ॥
आगिआ मानि जानि सुखु पाइआ, सुनि सुनि नामु तुहारो जीओ ॥
ईहा ऊहा हरि तुमही तुमही गुरते मन्त्रु दृड़ीओ ।

---

१७ जनु=सेवक । बरनु चिहनु=शिखा-सूत्र आदि द्विजाति वर्णों के चिह्न । पेखिओ=देखा । सवारिओ=सँभाल लिया, रक्षा की । बिखमु=भयकर । बिगसानो=आनन्दित हुआ । पुनह पुनह=बार-बार ।

१८ साधू-धूरि=संतो के चरणो की धूल । किलविख=मैल, कलक । गवाइण=खो दिये, नष्ट कर दिये । दिसटि समाइण=दृष्टि मे व्याप्त हो गया, अतर मे समा गया । ताप=तप, तपस्या । तुलि=तुल्य, बराबर । दासनि दास दसाइण=दासों के दास का भी दास होना चाहता है ।

१९ उलाहनो ‥‥दीओ=मैने किसीके आगे शिकायत नहीं की । मन‥ ‥कीओ=तुम्हे ही मैने रिझाया । ईहा ऊहा=यहाँ-वहाँ, सर्वत्र । गुर ते मन्त्रु दृडीओ=गुरु के मुख से इस मत्र को मैने दृढता के साथ धारण

जबते जानि पाई एह बाता तब कुसल खेम सभ थीओ ॥
साध संगि नानक परगासिओ आन नाही रे बीओ ॥१६॥

जाकउ भई तुमारी धीर ।
जम की त्रास मिटी सुखु पाइआ निकसी हउमै पीर ।
तपति बुझानी अमृत बानी तृपते जिउ बारिक खीर ।
मात पिता साजन संत मेरे संत सहाई बीर ॥
खुले भ्रम भीति मिले गोपाला हीरै बेधै हीर ।
बिसम भये नानक जसु गावत ठाकुर गुनी गहीर ॥२०॥

सुखमनी*

राग़ु गउडी

सिमरउ सिमरि सिमरि सुखु पावउ । कलि कलेस तन माहि मिटावउ ॥
सिमरउ जासु बिसुंभर एकै । नामु जपत अनगनत अनेकै ॥

किया । थीओ = हुआ । परगासिओ = प्रत्यक्ष अनुभव हुआ । बीओ=दूसरा, परमात्मा के सिवाय जगत् मे और किसी भी दूसरी वस्तु का अस्तित्व नहीं ।

२० धीर = दृढ प्रतीति । हउमै पीर = अहंकार-जनित वेदना । तृपते जिउ बारिक खीर = जैसे मा का दूध पीकर बालक तृप्त हो जाता है । साजन = प्रिय सम्बधी । खुले भ्रम भीति = भ्रान्ति अर्थात् अविद्या का भय दूर हो गया । हीरै बेधै हीर = परमात्मारूप सद्गुरु ही परमात्म-ज्ञान का रहस्य समझा सकता है, यह आशय है । बिसम = निःसशय । गहीर = अथाह, अपरिमित ।

*'सुखमनी मे कुल २४ अष्टपदियाँ हैं और प्रत्येक अष्टपदी मे ८० पंक्तियाँ । 'सुखमनी' का पाठ प्रातःकाल 'जपुजी' के पश्चात् किया जाता है । प्रस्तुत ग्रन्थ मे हमने सपूर्ण 'सुखमनी' को न लेकर कुछेक अष्टपदियो के ही अंशों को लिया है, अतः क्रम नहीं रह सका । इसके लिए हमें क्षमा किया जाये—स०

१ तन माहि=हृदय मे से । वेद पुरान ... इकआखर = वेदों, पुराणों और स्मृतियों मे से साररूप 'राम' यह एक शब्द शोध निकाला है । किनका

बेद पुरान सिम्रिति सुधाख्यर। कीने रामनाम इक आख्यर॥
किनका एक जिसु जीव बसावै। ता की महिमा गनी न आवै॥
कांखी एकै दरस तुहारो। नानक उन संगि मोहि उधारो॥१॥

सुखमनी सुख अमृत प्रभ नामु। भगत जना कै मनि बिस्रामु॥
प्रभ कै सिमरनि गरभि न बसै। प्रभ कै सिमरनि दूखु जमु नसै॥
प्रभ कै सिमरनि कालु परहरै। प्रभ कै सिमरनि दुसमनु टरै॥
प्रभ कै सिमरत कछु बिघनु न लागै। प्रभ कै सिमरनि अनदिनु जागै॥
प्रभ कै सिमरनि भउ ना बिआपै। प्रभ कै सिमरनि दुखु न सतापै॥
प्रभ का सिमरनु साध कै संगि। सरब-निधान नानक हरि-रंगि॥२॥

प्रभ का सिमरनु सभ ते ऊचा। प्रभ कै सिमरनि उधरे मूचा॥
प्रभ कै सिमरनि त्रिसना बुझै। प्रभ कै सिमरनि सभु किछु सुझै॥
प्रभ कै सिमरनि नाही जमत्रासा। प्रभ कै सिमरनि पूरन आसा॥
प्रभ कै सिमरनि मन की मलु जाइ। अमृत नामु रिद माहि समाइ॥
प्रभजी बसहि साध की सरना। नानक जन का दासनि दसना॥३॥

सलोक

दीन-दरद-दुखु-भंजना घटि घटि नाथ-अनाथ।
सरनि तुम्हारी आइओ नानक के प्रभ साथ॥

बसावै=एक क्षण भी जिसने उस नाम को अपने हृदय में बसा लिया। कांखी=आकांक्षी, चाहनेवाले। उधारो=उद्धार करो।

२ सुखमनी=मन को आनन्द या शान्ति देनेवाली इस रचना में। गरभि न बसै=फिर जन्म नहीं लेता, मुक्त हो जाता है। अनदिनु=नित्य। जमु=यम, मृत्यु। भउ=भय। रंगि=प्रेम-भक्ति।

३ मूचा=अनेक, बहुत-से (पापी)। बुझै=शान्त हो जाती है। सुझै=दीख जाता है, अनुभव में आ जाता है। मलु=मलिन वासना में अभि-

अष्टपदी

सगल स्रसटि को राजा दुखिआ । हरि का नामु जपत होइ सुखिआ ॥
लाख करोरी बंधनु परै । हरि का नामु जपत निसतरै ॥
अनिक माया रंग तिख न बुझावै । हरि का नामु जपत आघावै ॥
जिह मारग इहु जात अकेला । तह हरिनामु संगि होत सुहेला ॥
ऐसा नामु मन सदा धिआइए । नानक गुरमुखि परमगति पाइए ॥४॥

सगल पुरख महि पुरखु प्रधानु । साध-संगि जा का मिटै अभिमानु ॥
आपस कउ जो जाणै नीचा । सोऊ गनीए सभ ते ऊचा ॥
जा का मनु होइ सगल की रीना । हरि हरि नामु तिनि घटि घटि चीना ॥
मन अपुने ते बुरा मिटाना । पेखै सगल स्रसटि साजना ॥
सूख दूख जन सम द्रसटेता । नानक पाप पुंन नही लेपा ॥५॥

निरधन कउ धनु तेरो नाउ । निथावे कउ नाउ तेरा थाउ ॥
निमाने कउ प्रभ तेरो मान । सगल घटा कउ देवहु दान ॥
करन करावनहार सुआमी । सगल घटा के अन्तरजामी ॥

प्राय है । रिद=हृदय । रसना=वाणी । जन=हरिभक्त । दासनिदसना=दासानुदास ।

४ रंग=सुख, विषय-भोग । तिख=तृषा, प्यास । अघावै=शान्त हो जाती है । सुहेला=आनन्ददायक । गुरुमुखि=जिसने गुरु से उपदेश लिया हो । परमगति=मोक्ष ।

५ प्रधानु=सर्वश्रेष्ठ । आपस कउ=अपने आपको । सगल की रीना=सबके चरणों की धूल । बुरा=द्वेषभाव । साजना=मित्र । द्रसटेता=द्रष्टा, देखनेवाला । लेपा=लिप्त ।

६ निथावे कउ=जिसका कोई ठौर नही उसे । थाउ=ठौर । निमाने कउ तेरो मान=जो किसीसे मान नही पाता, उसे तू मान देता है । सगल घटा

अपनी गति मिति जानहु आपे। आपन संगि आपि प्रभ राते ॥
तुमरी उसतुति तुम ते होइ। नानक अवरु न जानसि कोइ ॥६॥

आदि अंति जो राखनहारु। तिस सिउ प्रीति न करै गवारु ॥
जाकी सेवा नवनिधि पावै। ता सिउ मूढा मन नही लावै ॥
जो ठाकुर सद सदा हजूरे। ता कउ अंधा जानत दूरे ॥
जाकी टहल पावे दरगह मानु। तिसहि बिसारै मुगधु अजानु ॥
सदा सदा इहु भूलनहारु। नानक राखनहारु अपारु ॥७॥

रतनु तिआगि कउड़ी संगि रचै। साचु छोड़ि झूठ संगि सचै ॥
जो छड़ना सु असथिरु करि मानै। जो होवनु सो दूरि परानै ॥
छोड़ि जाइ तिसका स्रमु करै। संगि-सहाई तिसु परहरै ॥
चंदन-लेपु उतारै धोइ। गरधव-प्रीति भसम संगि होइ ॥
अंधकूप महिं पतित बिकराल। नानक काढ़ि लेहु प्रभ दइआल ॥८॥

संगि-सहाई सु आवै न चीति। जो बैराई ता सिउ प्रीति ॥
बलुआ के गृह भीतरि बसै। अनंद-केल माइआ-रंगि रसै ॥

कउ==सब घटो अर्थात् प्राणियो को। मिति=सीमा। आपन संगि · · · राते=प्रभो, तू स्वय अपने आपपर अनुरक्त है। उसतुति=स्तुति, प्रशंसा।

७ गवारु=मूढ। मन नही लावै=प्रेम नहीं करता। हजूरे=विद्यमान। टहल=सेवा-चाकरी। पावे दरगह मानु=परमात्मा के दरबार मे आदर पाता है। मुगधु=मुग्ध, मूढ। इहु=यह जीव। राखनुहार=बचानेवाला।

८ रचै=प्रीति जोड़ता है। सचै=आसक्त हो जाता है। असथिरु=स्थिर। जो होवनि · · · परानै=मृत्यु का खयाल, जो अवश्यभावी है, भुला देता है। तिसु=उसको। गरधव=गर्दभ, गदहा। भसम=राख, मिट्टी। बिकराल=भयंकर, अंधकूप का विशेषण है।

९ आवै न चीति=ध्यान मे नहीं आता। बलुआ के गृह=बालू के घर मे,

हडु करि मानै मनहि परतीति। कालु न आवै मूड़े चीति ॥
वैर बिरोध काम क्रोध मोह। झूठ बिकार महा लोभ ध्रोह ॥
इआहू जुगति बिहाने कई जनम। नानक राखि लेहु आपन करि करम ॥९॥

सलोक

काम क्रोध अरु लोभ मोह बिनसि जाइ अहंमेव।
नानक प्रभ सरनागती करि प्रसादु गुरदेव ॥

अष्टपदी

जिह प्रसादि छत्तीह अंमृत खाहि। तिसु ठाकुर कउ रखु मन माहि ॥
जिह प्रसादि सुगंध तनि लावहि। तिस कउ सिमरत परमगति पावहि ॥
जिह प्रसादि बसहि सुमंदरि। तिसहि धिआइ सदा मन अंदरि ॥
जिह प्रसादि गृह संगि सुख बसना। आठ पहर सिमरौ तिसु रसना ॥
जिह प्रसादि रंग-रस-भोग। नानक सदा धिआईए धिआवनजोग ॥१०॥
आपि जपाए जपै सो नाउ। आपि गवाए सु हरिगुन गाउ ॥
प्रभ किरपा ते होइ प्रगासू। प्रभू दइआ ते कमल-बिगासू ॥
प्रभ सुप्रसन्न बसै मनि सोइ। प्रभ-दइआ ते मति ऊतम होइ ॥
सरबनिधान प्रभ तेरी मइआ। आपहु कछू न किनहू लइआ ॥
जितु जितु लावहु तितु लगहि हरि नाथ। नानक इनकै कछू न हाथ ॥११॥

क्षणभगुर शरीर में। माइआ रंगि=अनित्य विषय-भोगो मे। रसै=सुख मानता है। हडुकरि ·· परतीति=निश्चय करके मानता है कि सासारिक सुख सदा रहनेवाले हैं। मूडे=मूर्ख के। चीति=चित्त मे। ध्रोह= द्रोह। इआहू जुगति=इसी रीति से, इसी प्रकार। बिहाने=बीतगये। करम=कृपा।

१० अहमेव=अहता, खुदी। प्रसादि=कृपा से। छत्तीह अमृत=छत्तीस प्रकार के अमृत-जैसे व्यजन। तनि लावहि=शरीर मे लगाता है। सुख= आराम से। मंदरि=घर मे।

११ आपि=स्वयं वह परमात्मा। कमल बिगासू=हृदय-कमल खिल जाता

साध कै संगि मुख ऊजल होत । साध संगि मलु सगली खोत ॥
साध कै संगि मिटै अभिमानु । साध कै संगि प्रगटै सुगिआनु ॥
साध कै संगि बुझै प्रभ नेरा । साध संगि सभु होत निबेरा ॥
साध कै संगि पाए नाम रतनु । साध कै संगि एक ऊपरि जतनु ॥
साध की महिमा बरनै को प्रानी ।
नानक साध की सोभा प्रभ माहि समानी ॥१२॥

साध कै संगि नहीं कछु घाल । दरसनु भेटत होत निहाल ॥
साध कै संगि कलूखत हरै । साध कै संगि नरक परहरै ॥
साध कै संगि ईहा ऊहा सुहेला । साध संगि बिछुरत हरि मेला ॥
जो इच्छै सोई फलु पावै । साध कै संगि न बिरथा जावै ॥
पारब्रह्मु साध रिद बसै । नानक उधरै साध सुनि रसै ॥१३॥

ब्रह्मगिआनी कै एकै रंग । ब्रह्मगिआनी कै बसै प्रभु संग ॥
ब्रह्मगिआनी कै नामु अधारु । ब्रह्मगिआनी कै नामु परिवारु ॥
ब्रह्मगिआनी सदा सद जागत । ब्रह्मगिआनी अहंबुधि तिआगत ॥
ब्रह्मगिआनी कै मनि परमानंद । ब्रह्मगिआनी कै घरि सदा अनंद ॥

है । ऊतम=उत्तम । मइआ=कृपा । लइआ=प्राप्त किया । जितु... नाथ=जिस-जिस काम में तू लगा देता है उसमें हम लग जाते हैं । कछू न हाथ=अपनी कुछ भी सामर्थ्य नहीं ।

१२ मलु सगली खोत=सारी गंदगी अर्थात् मलिन वासना दूर हो जाती है । बुझै=बोध हो जाता है, दीख जाता है । नेरा=निकट । निबेरा=निर्णय । एक ऊपरि जतनु=एक परमात्मा को पाने का ही यत्न करे ।

१३ घाल=परिश्रम, कष्ट । कलूखत=कलंक, दोष । ईहाऊहा=यह लोक और परलोक । सुहेला=आनन्दित । बिछुरत हरि मेला=परमात्मा से वे मिल जायेंगे, जो बिछुड़ चुके थे । रिद=हृदय । रसै=आनन्दित होता है ।

१४ परवारु=कुटुंब । सदासद= निरन्तर ।

ब्रह्मगिआनी सुख सहज निवास ।
नानक ब्रह्मगिआनी का नहीं बिनास ॥१४॥

मिथिआ नाहीं रसना परस । मन महिं प्रीति निरंजन-दरस ॥
परत्रिय रूपु न पेखै नेत्र । साध की टहल संत संगि-हेत ॥
करन न सुनै काहू की निंदा । सभ ते जानै आपस कउ मंदा ॥
गुरप्रसादि बिखिआ परहरै । मन की बासना मन ते टरै ॥
इंद्रीजित पंच दोख ते रहत । नानक कोटि मधे को ऐसा अपरस ॥१५॥

वैसनो सो जिसु ऊपर सु प्रसन्न । बिसन की माया ते होइ भिन्न ॥
करम करत होवै निहकरम । तिसु बैसनो का निरमल धरम ॥
काहू फल की इच्छा नही बाछै । केवल भगति कीरतन संगि राचै ॥
मन तन अंतरि सिमरन गोपाल । सभ ऊपरि होवत किरपाल ॥
आपि दृड़ै अवरहु नामि जपावै। नानक ओहु बैसनो परमगति पावै ॥१६॥

सो पंडितु जो मनु परबोधै । रामनामु आतम महि सोधै ॥
रामनामु सारु रस पीवै । उसु पडित कै उपदेसि जगु जीवै ॥

---

१५ मिथिआ···परस=जिसकी जिह्वा कभी असत्य का स्पर्श भी नहीं करती ; जो स्वप्न मे भी असत्य नहीं बोलते । निरजन=अव्यय, अविनाशी । टहल=सेवा । हेत=प्रेम । आपस कउ=अपने आपको । मदा=नीच, बुरा । बिखिआ=विषय । दोख=दोष, (पंचविषय-जनित) पाप । [कोटि मधे को=करोडो मे कोई विरला । अपरस=जो विषयों का स्पर्श भी नही करता, अनासक्त, विरक्त ; रूढार्थ मे, जो छूतछात बहुत मानता है ।

१६ वैसनो=वैष्णव । सु=वह, परमात्मा । बिसन की माया=व्यसनों का प्रभाव , विष्णु की दैवी माया । भिन्न=अलिप्त । बाछै=चाहता है । दृडै=दृढ रहता है ।

१७ मनु परबोधै=मन को जगाता है । सोधै=खोजता है । जोनि न

हरि की कथा हिरदै बसावै। सो पंडितु फिरि जोनि न आवै ॥
बेद पुरान सिम्रिति बूझै मूलु। सूखम महि जानै असथूलु ॥
चहु वरना कउ दे उपदेसु। नानक उसु पंडित कउ सदा अदेसु ॥१७॥

प्रभ भावै मानुख गति पावै। प्रभ भावै ता पाथर तरावै ॥
प्रभ भावै बिनु सांस ते राखै। प्रभ भावै ता हरिगुण भाखै ॥
प्रभ भावै ता पतित उधारै। आपि करै आपन वीचारै ॥
दुहा सिरिया का आपि सुआमी। खेलै बिगसै अंतरजामी ॥
जो भावै सो कार करावै। नानक द्रसटी अवरु न आवै ॥१८॥

कहु मानुख ते किआ होइ आवै। जो तिसु भावै सोई करावै ॥
इसकै हाथि होइ ता सभु किछु लेइ। जो तिसु भावै सोई करेइ ॥
अनजानत बिखिआ महि रचै। जे जानत आपन आप बचै ॥
भरमे भूला दहदिसि धावै। निमख माहि चारि कुंट फिरि आवै ॥
करि किरपा जिसु अपनी भगति देइ। नानक ते जन नामि मिलेइ ॥१९॥

आवै = जन्म नहीं लेता। सूखम ... असथूलु = सूक्ष्म में स्थूल का, या पिंड में ब्रह्मांड का भेद जानलेता है। अदेसु=प्रणाम, (गोरखपंथी 'आदेस' कहकर प्रणाम करते हैं)

१८ भावै = यदि चाहे। गति = मोक्ष। ता = तो। बिनु सास = बिना प्राण के। आपि करै आपनि वीचारै = वह (परमात्मा) आप ही रचता है, और आप ही योजना बनाता है। दुहा सिरिआ = दोनों लोक। कार = काम। द्रसटी = दृष्टि। अवरु = और, अन्य।

१९ किआ = क्या। तिसु = उसको, प्रभु को। इसकै .... लेइ = इस मनुष्य के हाथ में यदि शक्ति होती, तो वह सब कुछ प्राप्त करलेता। अनजानत = परमात्मा को बिना जाने। बिखिआ महि रचै=विषयों में या पापकर्मों में लिप्त हो जाता है। कुंट = खूँट, कोना, दिशा। ते जन नामि मिलेइ = ऐसा मनुष्य प्रभु के नाम में लौलीन हो जायेगा।

जिसकै अंतरि राज-अभिमानु। सो नरकपाती होवत सुआनु ॥
जो जानै मै जोबनवंतु। सो होवत बिसटा का जंतु ॥
आपस कउ करमवंतु कहावै। जनमि मरै बहु जोनि भ्रमावै ॥
धन भूमि का जो करै गुमानु। सो मूरख अंधा अगिआनु ॥
करिकिरपा जिसकै हिरदै गरीबी बसावै। नानक ईहा मुकतु
आगै सुखु पावै ॥२०॥

धनवंता होइ करि गरबावै। तृण-समानि कछु संगि न जावै ॥
बहु लसकर मानुख ऊपरि करै आस। पल भीतरि ताका होइ बिनास ॥
सभ ते आप जानै बलवंतु। खिन महि होइ जाइ भसमंतु ॥
किसै न बदै आपि अहंकारी। धरमराइ तिसु करे खुआरी ॥
गुरप्रसादि जाका मिटै अभिमानु। सो जनु नानक दरगह परवानु ॥२१॥

सलोक

संत-सरनि जो जनु परै, सो जनु उधरनहारु।
संत की निंदा नानका, बहुरि-बहुरि अवतार ॥

अष्टपदी

संत कै दूखनि आरजा घटै। संत कै दूखनि जम ते नहीं छुटै ॥
संत कै दूखनि सुख सभु जाइ। संत कै दूखनि नरक महिं पाइ ॥

---

२० नरकपाती = नरक मे गिरनेवाला। सुआनु = श्वान, कुत्ता। बिसटा = विष्ठा, मैला। आपस कउ = अपने आपको। करमवंत = सुकर्मी, उत्तम। ईहा = इस लोक मे। आगै = परलोक मे।

२१ लसकर = फौज। मानुख = आज्ञापालक सेवकों से आशय है। खिन = क्षण। न बदै = कुछ भी नही समझता। धरमराइ = यमराज। खुआरी = बेइज्जत। दरगह परवानु = ईश्वर के दरबार मे जाने का उसे परवाना मिल जाता है।

२२ अवतार = जन्म। संत कै दूखनि = संत की निंदा करने से। आरजा =

संत कै दूखनि मति होइ मलीन । संत कै दूखनि सोभा ते हीन ॥
संत के हते कउ रखै न कोइ । संत कै दूखनि थान-भ्रसटु होइ ॥
संत कृपाल कृपा जे करै । नानक संतसंगि निंदकु भी तरै ॥२२॥

मानुख की टेक बृथी सभ जानु । देवन कउ एकै भगवानु ॥
जिस कै दीऐ रहै अघाइ । बहुरि न तृसना लागै आइ ॥
मारै राखै एको आपि । मानुख कै किछु नाही हाथि ॥
तिसका हुकमु बूझि सुखु होइ । तिसका नामु रखु कंठि परोइ ॥
सिमरि सिमरि सिमरि प्रभु सोइ । नानक बिघनु न लागै कोइ ॥२३॥

बड़भागी ते जन जग माहि । सदा सदा हरि के गुन गाहि ॥
राम नाम जो करहि बीचार । से धनवंत गनी संसार ॥
मनि तनि मुखि बोलहि हरि मुखी । सदा सदा जानहु ते सुखी ॥
एको एकु एकु पछानै । इत उत की ओहु सोझी जानै ॥
नाम संगि जिसका मनु मानिआ । नानक तिनहि निरंजनु जानिआ ॥२४॥

रूपवंतु होइ नाहीं मोहै । प्रभ की जोति सगल घट सोहै ॥
धनवंता होइ किआ को गरबै । जा सभु किछु तिसका दिया दरबै ॥
अतिसूरा जे कोऊ कहावै । प्रभ की कला बिना कह धावै ॥

आयु । पाई=पड़ता है । सत कै हते=साधुद्वारा शापित । थानभ्रसटु=स्थान-भ्रष्ट, पदच्युत ।

२३ टेक=आधार, अवलंब । बृथी=वृथा, झूठी । देवन कउ=देने के लिए । परोइ=पिरोकर पहनले, धारण करले ।

२४ गाहि=गाते हैं । गनी=गिने जाते हैं । एको एकु एकु=केवल एक अद्वितीय परमात्मा । इतउत=दोनों लोक । सोझी=ज्ञान ।

२५ मोहै=भ्रम में न पड़े । सगल=सकल, सब । दरबै=द्रव्य, धन । कला=शक्ति से आशय है । प्रभु की··· ··धावै=ईश्वर से शक्ति प्राप्त किये बिना

जे को होइ बहै दातारु। तिसु देनहारु जानै गावारु॥
जिसु गुरप्रसादि तूटै हउरोगु। नानक सो जनु सदा अरोगु॥२५॥

जिउ मंदर कउ थामै थंम्हनु। तिउ गुर का सबदु मनहि असथमनु॥
जिउ पाखाणु नाउ चढ़ि तरै। प्राणी गुर-चरण लगतु निसतरै॥
जिउ अंधकार दीपक परगासु। गुर दरसनु देखि मनि होइ बिगासु॥
जिउ महा उदिआन महि मारगु पावै। तिउ साधू संगि मिलि जोति प्रगटावै॥
तिन संतन की बाछउ धूरि। नानक की हरि लोचा पूरि॥२६॥

चरन साध के धोइ धोइ पीउ। अरपि साध कउ अपना जीउ॥
साध की धूरि करहु इसनानु। साध ऊपरि जाइए कुरबानु॥
साध-सेवा बड़ भागी पाईऐ। साध संग हरि कीरतनु गाईऐ॥
अनिक विघन ते साधू राखै। हरि गुन गाइ अमृतरसु चाखै॥
ओट गही संतह दरि आइआ। सरब सूख नानक तिह पाइआ॥२७॥

जाकी लीला की मिति नाहि। सगल देव हारे अवगाहि॥
पिता का जनमु कि जानै पूतु। सगल परोई अपुनै सूति॥

वह क्या प्रयत्न कर सकता है? जे को होइ ... गावारु=यदि कोई अपने दान का गर्व करता है, तो सच्चा दानी परमात्मा उसे मूर्ख समझता है। हउ=अहंकार।

२६ थम्हनु=स्तंभ, खंभा। सबदु=ज्ञानोपदेश। असथमनु=स्तंभन, थामनेवाला। बिगासु=प्रफुल्लित। उदिआन=विकट जंगल से अभिप्राय है। जोति=आत्म-प्रकाश। बाछउ=चाहता हूँ। धूरि=चरण-रज। लोचा पूरि=इच्छा पूरी करदे।

२७ कुरबानु=बलि। बडभागी=बड़े भाग्य से। राखै=रक्षा करता है। ओट=शरण। संतह दरि आइआ=जो संतो के द्वार पर आ जाता है। सूख=सुख।

सुमति गिआनु धिआनु जिन देइ। जन दास नामु धिआवहि सेइ ॥
तिहु गुण महि जा कउ भरमाए। जनमि मरै फिरि आवै जाए ॥
ऊच नीच तिसके असथान। जैसा जनावै तैसा नानक जान ॥२८॥

ठाकुर का सेवकु आगिआकारी। ठाकुर का सेवकु सदा पुजारी ॥
ठाकुर के सेवक कै मनि परतीति। ठाकुर के सेवक की निरमल रीति ॥
ठाकुर कौ सेवकु जानै संगि। प्रभ का सेवकु नाम कै रंगि ॥
सेवक कौ प्रभ पालनहारा। सेवक कउ राखै निरंकारा ॥
सो सेवकु जिसु दइआ प्रभु धारै। नानकु सो सेवक सासि सासि समारे ॥२६॥
अपुने जन का परदा ढाकै। अपने सेवक कउ सर पर राखै ॥
अपने दास कउ देइ बड़ाई। अपने सेवक कउ नामु जपाई ॥
अपने सेवक की आपि पति राखै। ताकी गति मिति कोइ न लाखै ॥
प्रभ के सेवक कउ को न पहूचे। प्रभ के सेवक ऊच ते ऊचे ॥
जो प्रभि अपनी सेवा लाइआ। नानक सो सेवकु दहदिसि प्रगटाइआ ॥३०॥

गुर कै गृहि सेवकु जो रहै। गुर आगिआ मन माहि सहै ॥
आपस कउ करि कछु न जनावै। हरि हरिनामु रिदै सद धिआवै ॥

---

२८ सगल सूति = सारी सृष्टि को जिसने अपनी माया के सूत्र मे गूँथ रखा है। सेइ = उसे। तिह गुण महि = सत्त्व, रज और तम इन तीन गुणों मे। असथान = स्थान, लोक।

२६ परतीति = प्रतीत, श्रद्धा-विश्वास। संगि = साथ मे। सासि-सासि समारै = हर साँस मे नाम-स्मरण करता है।

३० परदा ढाकै = दोषों को छिपाता है। सर पर राखै = मान को रखता है। पति = लाज। लाखै = जानता है। को = कोई भी। दहदिसि प्रगटाइआ = दशों दिशाओं मे प्रख्यात हो जाता है।

३१ मन महि सहै = हृदय से मानता है। आपस कउ······जनावै = अपने

मनु बेचै सतिगुर कै पासि। तिसु सेवक के कारज रासि ॥
सेवा करत होइ निहकामी। तिस कउ होत परापति सुआमी ॥
अपनी कृपा जिसु आपि करेइ। नानक सो सेवकु गुर की मति लेइ ॥३१॥

इहु हरि रस पावै जनु कोइ। अमृतु पीवै अमरु सो होइ ॥
उसु पुरख का नाही कदे बिनास। जाके मनि प्रगटे गुन तास ॥
आठ पहर हरि का नामु लेइ। सचु उपदेस सेवकु कउ देइ ॥
मोह माइआ कै संगि न लेपु। मन महि राखै हरि हरि एकु ॥
अधकार दीपक परगासे। नानक भरम मोह दुख तहते नासे ॥३२॥

सलोक

साथि न चालै बिनु भजन, बिखिआ सगली छारु ॥
हरि हरि नामु कमावना, नानक इहु धनु सारु ॥

अष्टपदी

संतजना मिलि करहु बीचारु। एकु सिमरि नाम आधारु ॥
अवरि उपाव सभि मीत बिसारहु। चरन कमल रिद महि उरि धारहु ॥
करन कारन सो प्रभु समरथु। दृड़ुकरि गहहु नामु हरि वथु ॥

को बड़ा नहीं समझता। रिदै=हृदय में। सद=सदा। तिसु ... रासि= ऐसे सेवक के कार्य भली भाँति सपन्न होंगे। निहकामी=निष्काम, कर्म-फल न चाहनेवाला। सुआमी=प्रभु, परमात्मा। जिसु आपि करेइ=जिसपर स्वयं कर देता है। गुर की मति लेइ=गुरु के उपदेश को ग्रहण कर लेगा।

३२ कोइ=विरला ही। कदे=कभी। गुन तास=प्रभु के गुण। लेप= आसक्ति।

३३ बिनु=सिवाय। बिखिआ सगली छारु=सारे सासारिक सुख धूल के समान तुच्छ हैं। रिद=हृदय। उरि=अन्त करण में। करन-कारन=कारण का भी कारण करने और करानेवाला। दृड़ुकरि=दृढ़ता के साथ।

इहु धनु संचहु होवहु भगवंत। संत जना का निरमल मंत ॥
एक आस राखहु मन माहि। सरब रोग नानक मिटि जाहि ॥३३॥

जिसु धन कउ चारि कुंट उठि धावहि। सो धनु हरिसेवा तेपावहि ॥
जिसु सुख कउ नित बाछहि मीत। सो सुखु साधू संगि परीति ॥
जिसु सोभाकउ करहिभली करनी। सो सोभा भजु हरि की सरनी ॥
अनिक उपावी रोगु न जाइ। रोगु मिटै हरि अउखधु लाइ ॥
सरब निधान महि हरिनाम निधानु। जपि नानकदरगहि परवानु॥३४॥

सलोक

फिरत फिरत प्रभ आइआ, परिआ तउ सरनाइ ॥
नानक की प्रभ बेनती, अपनी भगतो लाइ ॥

अष्टपदी

जाचक जनु जाचै प्रभ दानु। करि किरपा देवहु हरिनामु ॥
साधजना की मागउ धूरि। पारब्रह्म मेरी सरधा पूरि ॥
सदा सदा प्रभ के गुन गावउ। सासि सासि प्रभ तुमहि धिआवउ॥
चरनकमलसिउ लागै प्रीति। भगति करउ प्रभ की नित नीति ॥
एक ओट एको आधारु। नानकु मागै नामु प्रभ सारु ॥३५॥

प्रभ की द्दसटि महासुखु होइ। हरिरसु पावै बिरला कोइ ॥
जिन चखिआ से जन तृपताने। पूरन पूरख नही डोलाने ॥

वथु=वस्तु, परमतत्त्व। भगवंत=भाग्यवान। मत=मत्र, निश्चित मत।

३४　कुंट=खूँट, कोना, दिशा। बाछहि=चाहता है। मीत=हे मित्र। परीति=प्रीति। सोभा=प्रतिष्ठा, कीर्ति। उपावी=उपाय, साधन। अउखधु=औषधि। दरगहि=परमात्मा का दरबार। परवानु=अंगीकार करने के योग्य।

३५　सरधा=साध, इच्छा। पूरि=पूरी करदे। नितनीत=नित्य नित्य,

सुभर भरे प्रेम रस रंगि। उपजै चाउ साध कै संगि ॥
परे सरनि आन सभ तिआगि। अंतरि प्रगास अनदिनु लिव लागि ॥
वड़भागी जपिआ प्रभु सोइ। नानक नामि रते सुखु होइ ॥३६॥

साजन संत करहु इहु कामु। आन तिआगि जपहु हरिनामु ॥
सिमरि सिमरि सिमरि सुख पावहु। आपि जपहु अवरह
नामु जपावहु ॥
भगति भाइ तरीए संसारु। बिनु भगती तनु होसी छारु ॥
सरब कलिआण-सूख-निधि नामु। बूड़त जात पाए बिस्रामु।
सगल दूख का होवत नासु। नानक नामु जपहु गुन तासु ॥३७॥

उपजी प्रीति प्रेमरसु चाउ। मन तन अंतर इही सुआउ ॥
नेत्रहु पेखि दरसु सुखु होइ। मनु बिगसै साधचरण धोइ ॥
भगतजना कै मनि तनि रंगु। बिरला कोऊ पावै संगु ॥
एक बसतु दीजै करि मइआ। गुरप्रसादि नामु जपि लइआ ॥
ताकी उपमा कही न जाइ। नानक रहिआ सरब समाइ ॥३८॥

निरन्तर। ओट=शरण।

३६ द्रसटि=कृपादृष्टि। से=वे। तृपताने=तृप्त हो गये, अघा गये। सुभर=भली भाँति, पूरी तरह। चाउ=परमात्मा से मिलने की उत्कण्ठा। लिव=लौ। रते=रँगजाने में।

३७ साजन=प्यारे। अवरह=दूसरों से भी। भाइ=भाव से। होसी छारु=भस्म हो जायेगा, धूल में मिल जायेगा। बिस्रामु=सहारा।

३८ उपजी=प्रकट हो जाये। सुआउ=कामना, लालसा। बिगसै=प्रफुल्लित हो। रंगु=प्रेम, आनन्द। बसतु=वस्तु। मइआ=कृपा। उपमा=तुलना, गुण, महिमा।

सलोक

सरगुन निरगुन निरकार सुंन समाधी आपि।
आपन कीआ नानका, आपे ही फिरि जापि॥

असटपदी

जब अकारु इहु कछु न द्रिसटेता। पाप पुंन तब कह ते होता॥
जब धारी आपन सुंन समाधि। तब बैर बिरोध किसु संगि कमाति॥
जब इसका बरनु चिहनु न जापत। तब हरख सोग कहु किसहि बिआपत॥
जब आपन आप आपि पारब्रहम। तब मोह कहा, किसु होवत भरम॥
आपन खेलु आपि वरतीजा। नानक करनैहारु न दूजा॥३९॥

जब होवत प्रभ केवल धनी। तब बंध मुकति कहु किस कउ गनी॥
जब एकहि हरि अगम अपार। तब नरक सुरग कहु कउ अउतार॥
जब निरगुन प्रभ सहज सुभाइ। तब सिव सकति कहहु कितु ठाइ॥
जब आपहि आपि अपनी जोति धरै। तब कवन निडरु कवन कत डरै॥
आपन चलित आपि करनैहारु। नानक ठाकुर अगम अपारु॥४०॥

जह अछल अछेद अभेद समाइआ। ऊहा किसहि बिआपत माइआ॥
आपस कउ आपि आदेसु। तिहु गुण का नाहीं परवेसु॥
जह एकहि एक एक भगवंता। तह कउनु अचिंतु किसु लागै चिंता॥

---

३९ कीआ=रचा हुआ। आपे ही फिरि जापि=पुनः अपने आप में वह अपनी रचना को लय कर लेता है। अकारु=आकार। इहु=जगत्। सुन्न=निर्विकल्प। द्रिसटेता=दिखाई देता था। चिहन=चिह्न। जापत=दीखता था। वरतीजा=बरता, लीला रची।

४० गनी=गिना गया। अउतार=जन्म। सकति=शक्ति, परप्रकृति। ठाइ=ठौर। जोति=प्रकाश।

४१ अछल=जिसे छला न जा सके। समाइआ=व्याप्त। आपस ...

जह आपन आपु आपि पतिआरा। तह कउनु कथै कउनु सुननैहारा ॥
बहु बेअंत ऊचा ते ऊचा। नानक आपस कउ आपहि पहूचा ॥४१॥

सलोक

गिआन-अजनु गुरि दीआ, अगिआन-अधेर बिनासु।
हरि-किरपा ते सत भेटिआ, नानक मनि परगासु॥

अष्टपदी

संत-सगि अतरि प्रभु डीठा। नासु प्रभू का लागा मीठा॥
सगल समिग्री एकसु घट माहि। अनिक रग नाना द्रसटाहि॥
नउ निधि अंमृतु प्रभ का नामु। देही महि इसका बिस्राम॥
सुन्न समाधि अनहत तह नाद। कहनु न जाई अचरज बिसमाद॥
तिनि देखिआ जिसु आपिदिखाए। नानक तिसु जन सोझी पाए ॥४२॥

सलोक

पूरा प्रभु आराधिआ, पूरा जाका नाउ।
नानक पूरा पाइआ, पूरे के गुन गाउ॥

अष्टपदी

पूरे गुर का सुनि उपदेसु। पारब्रह्मु निकटि करि पेखु॥
सासि सासि सिमरहु गोबिंद। मन अंतर की उतरै चिंद॥

आदेसु=अपने आपको अपना प्रणाम। आपि पतिआरा=स्वतः प्रतीति करनेवाला। बेअत=अनत। आपसकउ पहूचा=उसका उपमान स्वय वही है।

४२ मनि परगासु=मन मे स्वरूप-दर्शन से प्रकाश हो गया। संत डीठा=सत्सग के प्रभाव से प्रभु को अपनी अतरात्मा मे ही देख लिया। सगल समिग्री=नाना प्रकार की सृष्टि। द्रसटाहि=दीखते है बिसमाद=चमत्कार। सोझी=सुबुद्धि, विवेक।

आस अनित तिआगहु तरंग । संतजना की धूरि मन मंग ॥
आपु छोड़ि बेनती करहु । साध संगि अगनि-सागरु तरहु ॥
हरि धन के भरि लेहु भंडार । नानक गुर पूरे नमसकार ॥४३॥

खेम कुसल सहज आनंद । साध संगि भजु परमानंद ॥
नरक निवारि उधारहु जीउ । गुन गोबिंद अंमृतरसु पीउ ॥
चिति चितवहु नारायण एक । एक रूप जाके रंग अनेक ॥
गोपाल दामोदर दीनदयाल । दुखभंजन पूरन किरपाल ॥
सिमरि सिमरि नामु बारंबार । नानक जीअ का इहै अधार ॥४४॥

प्रभ की उसतति करहु संत मीत । सावधान एकागर चीत ॥
सुखमनी सहज गोबिंद गुन नाम । जिसु मनि वसै सु होत निधान ॥
सरब इच्छा ताकी पूरन होइ । प्रधान पुरखु प्रगटु सभ लोइ ॥
सभ ते ऊच पाए असथानु । बहुरि न होवै आवन जानु ॥
हरि धनु खाटि चलै जनु सोइ । नानक जिसहि परापति होइ ॥४५॥

इहु निधानु जपै मनि कोइ । सभ जुगमहि ताकी गति होइ ॥
गुण गोविंद नाम धुनि बाणी । सिमृति सासत बेद बखाणी ॥

---

४३ पेखु=देख । चिंद=चिंता । मन मंग=हृदय से माँग । आपु=अहंकार । धन=यहाँ भगवद्भक्ति से आशय है ।

४४ निवारि=दूर कर, बचाकर । चितवहु=ध्यान कर । रंग=आकार, प्रकार ।

४५ उसतति=स्तुति । एकागर=एकाग्र, एकही ओर स्थिर, अनन्य । निधान=परमात्मा की भक्ति का धनी । आवन-जान=जन्म और मृत्यु । खाटि=कमाकर ।

४६ निधान=अनमोल । गति=मोक्ष । सासत=शास्त्र । मतात=सिद्धान्त,

सगल मतांत केवल हरिनाम । गोबिंद भगत कै मनि बिस्राम ॥
कोटि अपराध साध संगि मिटै । संतक्रृपा ते जम ते छुटै ॥
जाकै मसतकि करम प्रभि पाए । साध सरणि नानक ते आए ॥४६॥

जिसु मनि वसै लाइ सुनै प्रीति । तिसु जन आवै हरि प्रभु चीति ॥
जनम मरण ताका दूखु निवारै । दुलभ देह ततकाल उधारै ॥
निरमल सोभा अंमृत ताकी बानी । एकु नामु मन माहि समानी ॥
दूख रोग बिनसे भै भरम । साध नाम निरमल ताके करम ॥
सभ ते ऊच ताकी सोभा बनी । नानक इह गुणि नामु सुखमनी ॥४७॥

गउड़ी गुआरेरी

तू मेरा सखा तू ही मेरा मीतु । तू मेरा प्रीतम तुम संगि हीतु ॥
तू मेरी पति तू है मेरा गहणा । तुझ बिनु निमखु न जाई रहणा ॥
तू मेरे लालन तू मेरे प्रान । तू मेरे साहिब तू मेरे खान ॥
जिउ तुम राखहु तिउ ही रहना । जो तुम कहहु सोइ मोहि करना ॥
जह पेखउ तहा तुम बसना । निरभय नाम जपउ तेरा रसना ॥
तू मेरी नवनिधि तू भंडारु । रंग रसा तू मनहि अधारु ॥
तू मेरी सोभा तुम संगि रचिआ । तू मेरी ओट तू है मेरा तकिआ ॥
मन तन अन्तरि तुही धिआइआ । मरम तुमारा गुर ते पाइआ ॥
सतगुर ते द्रिड़िआ इकु एकै । नानक दास हरि हरि हरि टेकै ॥४८॥

धर्म-संप्रदाय । बिस्राम=परमशान्ति । मसतकि=भाग्य मे ।

४७ चीति=चित्त मे, ध्यान मे । दुलभ=दुर्लभ (मनुष्य-देह, जिसे साधन-धाम कहा गया है ।) भरम=अविद्या । सोभा=कीर्त्ति ।

४८ हीतु=हित, प्रेम । पति=लाज । गहणा=अवलम्बन, आधार । निमखु=निमिष, पल । खान=सबसे बड़ा सरदार । जह पेखउ=जहाँ भी देखता

गउडी माला

उबरत राजाराम की सरणी ।

सरब लोक माया के मडल गिरि परते धरणी ॥

सासत सिमृति बेद बीचारे महापुरखन इउ कहिआ ॥

बिनु हरिभजन नाही निसतारा सुखु ना किनहू लहिआ ॥

तीनि भवन की लखमी जोरी बूझत नाही लहरे ॥

बिनु हरिभगति कहा थिति पावै, फिरतो पहरे पहरे ॥

अनिक बिलास करत मन मोहन पूरन होत न कामा ॥

जलतो जलतो कबहु न बूझत सगल बिरथे बिनु नामा ॥

हरि का नामु जपहु मेरे मीता, इहै सार सुख पूरा ॥

साध-संगति जनम-मरणु निवारै, नानकु जन की धूरा ॥४९॥

रागु गउडी

करउ बेनती सुणहु मेरे मीता संत टहल की बेला ॥

ईहा खाटि चलहु हरि लाहा आगै बसनु सुहेला ॥

हूँ । रसा=रस, परमानन्द । रचिआ=रँगा हुआ या अनुरक्त हूँ । तकिआ=सहारा । दड़िआ इकुएकै=इसे दृढता से पकड लिया कि एक और केवल एक तू ही है ।

४९ सरणी=शरण मे । सासत सिमृति=शास्त्र और स्मृति ग्रन्थ । इउ=ऐसा । निसतारा=उद्धार । लखमी=सपत्ति । लहरे=बावले । थिति=स्थिरता, शाति । मोहन=आकर्षक । कामा=वासना । न बूझत=नहीं बुझता, शान्त नहीं होता । जन की धूरा=भक्तो के चरणों की धूल ।

५० टहल की बेला=सेवा का समय । ईहा=यहाँ, इस लोक मे । खाटि चलहु=कमालो । लाहा=लाभ, मुनाफा । आगै बसनु सुहेला=परलोक में आनन्द से रहोगे । अउध=आयु । काज सवारे=बिगडी को बनाले ।

अउध घटै दिवसु रैणा रे, मन गुर मिलि काज सवारे ॥
इहु संसारु बिकारु संसे महि, तरिओ ब्रहमगिआनी ॥
जिसहि जगाइ पीआवै इहु रसु अकथ कथा तिनि जानी ॥
जाकउ आए सोई विहाझहु हरि गुरते मनहि बसेरा ॥
निजघरि महलु पावहु सुख सहजे बहुरि न होइगो फेरा ॥
अंतरजामी पुरख निधाने सरधा मन की पूरे ॥
नानक दासु इहै सुखु मागै मोकउ करि संतन की धूरे ॥५०॥

रागु गउडी अष्टपदी

जब इहु मन महि करत गुमाना ।
तब इहु बावरु फिरत बिगाना ॥
जब इहु हूआ सगल की रीना । ताते रमईआ घटि घटि चीना ॥
सहज सुहेला फलु मसकीनी । सतिगुर अपुनै मोहि दानु दीनी ॥
जब किसकउ इहु जानसि मन्दा । तब सगले इसु मेलहि फन्दा ॥
मेर तेर जब इनहि चुकाई । ताते इसु संगि नही बैराई ॥

संसे महि=मूढग्राह मे फँसा हुआ है। तरिओ=तर गये, पार हो गये। जिसहि ... जानी=जिन्हे (मोह निद्रासे) जगाकर वह ब्रह्म-रस पिला देता है, वे ही इस अनिर्वचनीय कथा (रहस्य) को जानते हैं। जाकउ ... विहाझहु=जिसके लिए तू ससार मे आया है, अर्थात् तूने जन्म लिया है उसे तू बिसाहले, खरीदले। हरि ... बसेरा=गुरु-कृपा से हरि तेरे अंतर मे बस जायेंगे। फेरा=पुनर्जन्म। सरधा=कामना, इच्छा। धूरे=चरणों की धूल।

५१ इहु=यह मनुष्य। गुमाना=अभिमान, गर्व। बावरु=पागल। बिगाना=ईश्वर से विलग, बिछुडा हुआ। रीना=रेणु, पैरों की धूल। रमईआ=राम, परमात्मा। चीना=पहचाना, देखा। सहज ... मसकीनी=ग़रीबी या नम्रता का फल स्वभावत. सुन्दर होता है। किसकउ=किसी दूसरे

जब इनि अपुनी अपुनी धारी । तब इसकउ हैं मुसकलु भारी ॥
जब इनि करणैहारु पछाना । तब इसनो नाही किछु ताना ॥
जब इनि अपुनो बाधिओ मोहा । आवै जाइ सदा जमि जोहा ॥
जब इसते सभ बिनसे भरमा । भेदु नही है पारब्रह्मा ॥
जब इनि किछु करि माने भेदा । तबते दूख डंड अरु खेदा ॥
जब इनि एको एकी बूझिआ । तबते इसनो सभु किछु सूझिआ ॥
जब इहु धावै माइआ अरथी । नह तृपतावै नह तिस लाथी ॥
जब इसते इहु होइआ जउला । पीछै लागि चली उठि कउला ॥
करि किरपा जउ सतिगुरु मिलिओ । मंदिर महि दीपकु जलिओ ॥
जीत हार की सोझी करी । तउ इस घर की कीमत परी ॥
करन करावन सभु किछु एकै । आपे बुद्धि बिचारि बिबेकै ॥
दूरि न नेरै सभकै संगा । सचु सालाहणु नानक हरि रंगा ॥५१॥

रागु गूजरी

काहे रे मन चितवहि उदमु जा आहरि हरि जीउ परिआ ॥
सैल पत्थर महि जंत उपाए ताका रिजकु आगैकरि धरिआ ॥

को । मंदा=बुरा । सगले ...... फन्दा=सब उसके विरुद्ध हो जाते हैं । चुकाई=समाप्त कर देता है । बैराई=शत्रुता । मेर तेर ...... वैराई='यह मेरा है, वह तेरा है' ऐसा भेद-भाव जब वह त्याग देता है तब उसके साथ किसीका द्वेषभाव नही रहता । अपुनी-अपुनी=स्वार्थ-भावना । करणैहारु पछाना=सिरजनहार परमात्मा को जान लिया । ताना=कष्ट । बाधिओ= बाँध लिया । आवै जाइ=बारबार जन्मता और मरता है । खेदा=क्लेश । एको एकी=एक अद्वितीय परमात्मा । नह तिस लाथी=न प्यास (तृष्णा) दूर होती है । जब इसते ...... कउला=जब मनुष्य माया से भागता है तब वह उसका पीछा करने को दौड़ती है । सोझी=विचार । कीमति परी=मोल

मेरे माधउजी सतसंगति मिले सु तरिआ ॥
गुरपरसादि परमपदु पाइआ सूके कासट हरिआ ॥
जननि पिता लोक सुत बनिता कोइ न किसकी धरिआ ॥
सिरि सिरि रिजकु सबाहे ठाकुरु काहे मन भउ करिआ ॥
ऊडे ऊडि आवै सै कोसा तिसु पाछै बछरे छरिआ ॥
तिन कवणु खलावै कवणु चुगावै मन महि सिमरनु करिआ ॥
सभि निधान दस असट सिधान ठाकुर करतल धरिआ ॥
जन नानक बलि बलि सद बलि जाईऐ तेरा अंतु न पारावरिआ ॥५२॥*

आसा

भई परापति मानुख देहुरीआ। गोविंद मिलण की इह तेरी बरीआ ॥
अवरि काज तेरै कितै न काम। मिलु साधसंगति भजु केवल नाम ॥

आँकता है। आपे=परमात्मा खुद ही। सालाहण=गुणगान कर। रंगा=प्रेम-भक्ति से।

५२ चितवहि उदमु=उद्यम (धंधा) करने की बात सोचता है। जा आहरि ··· परिआ=जबकि हरि स्वयं ही तेरे लिए उद्यम करने में लगे हुए हैं। जंत=जंतु, जीव। उपाये=उत्पन्न किये। रिजकु=आहार। सु तरीया=वे तर गये, संसार-सागर से पार हो गये। सूके कासट हरिआ=सूखा काठ भी हरा हो गया। कोइ · धरिआ=किसीपर भरोसा नहीं रखा जा सकता। संबाहे=जुटाता है। भउ=भय। ऊडे ·· सिमरनु करिआ=कुलंग पक्षी अपने बच्चों को पीछे छोड़कर सैकड़ों कोस उड़कर चला जाता है, उसके उन बच्चों को उसके पीछे कौन खिलाता या चुगाता है, क्या इसपर भी तूने कभी विचार किया ? निधान=खजाना, निधियाँ। असट सिधान=आठ सिद्धियाँ। करतल धरिआ=मुट्ठी में लिये हुए है। सद=सदा। पारावरिआ=सीमा।

*यह 'रहिरास' में से लिया गया है।

बासउ संगि गुपाल सगल सुखरासि हरि।
हरि हां, रिधि सिधि नव निधि बसहि जिसु सदा करि ॥३॥

ऊपरि बनै अकासु तलै धर सोहती।
दहदिसि चमकै बीजुलि मुख कउ जोहती॥
खोजत फिरउ बिदेसि पीउ कत पाईऐ।
हरि हां, जे मसतकि होवै भागु त दरसि समाईऐ ॥४॥

मित का चितु अनूपु मरंमु न जानीऐ।
गाहक गुनी अपार सु ततु पछानीए॥
चित्तहि चितु समाइ त होवै रंगु घना।
हरि हां, चंचल चोरहि मारि त पावहु सचु धना ॥५॥

सुपनै ऊभी भई गहिओ की न अंचला।
सुंदर पुरख बिराजित पेखि मनु बचला॥

के अनुसार बड़ी शुभ है)। आगनि सुख वासना=गृह-आँगन में आनन्द-ही-आनन्द का वास है। रतनु=(हरिनामरूपी) रत्न। पेखि=उस रत्न को देख-देखकर। वासउ=रहती हूँ। सगल=सकल। सुखरासि=आनन्दघन। करि=हाथ में।

४ बनै=दीप्तिमान हो रहा है। धर=धरती। सोहती=शोभायमान है। बीजुलि=दिव्य प्रकाश से आशय है। मुख कउ जोहती=मैं उस स्वामी का सुंदर मुख देखती हूँ। विदेसि=देश-देश मे, सर्वत्र। जे मसतकि होवै भागु=जो मेरा सद्भाग्य होगा। त दरसि समाइऐ=तो दर्शन उसका हो जायेगा।

५ मित=मित्र, परमात्मा से आशय है। चित्त अनूपु=हृदय अनुपम है। मरमु=रहस्य। ततु=आत्मतत्त्व, परमसत्य। चित्तहि ' घना=जब हमारा चित्त प्रभु मे लय हो जायेगा, तभी हमें प्रेम-जनित आत्यन्तिक आनंद

खोजउ ताके चरण कहहु कत पाईऐ।
हरि हां, सोई जतनु बताइ सखी पिरु पाईऐ ॥६॥

नैण न देखहि साध सि नैण बिहालिआ।
करन न सुनही नादु करन मुंदि घालिआ ॥
रसना जपै न नाम तिलु तिलु करि कटीऐ।
हरि हां, जब बिसरै गोविंदराइ दिनो दिनु घटीऐ ॥७॥

धावउ दिसा अनेक प्रेम प्रभ कारणे।
पंच सतावहि दूत कउन विधि मारणे ॥
तीखण बाण चलाइ नामु प्रभ धिआईऐ।
हरि हां, महा बिखादी घात पूरन गुरु पाईऐ ॥८॥

जिथै जाए भगतु सु थानु सुहावणा।
सगले होए सुख हरि नामु धिआवणा ॥

होगा। चोरहि मारि = जो मनरूपी चोर को वश मे कर लेता है। धना = धन।

६　सुपनै ·····अचला = सपने मे वह (मोहिनी) मूर्ति आकर खडी हो गई, पर हाय, मै उसका अचल न पकड़ सकी। पेखि मन बचला = उसे देखकर मेरा मन ठग गया। खोजउ ताके चरण = उसके चरण-चिह्नो को खोजती फिरती हूँ। पिरु = प्रियतम।

७　नैण·· ···बिहालिआ = जो नेत्र साधुपुरुष को नही देखते, वे बेकार हैं। करन = कान। नादु = गुरु के सदुपदेश से तात्पर्य है। मुंदि घालिआ = बद कर दिया जाये। तिलु तिलु करि = छोटे-छोटे टुकडे करके। घटीऐ = गिरता है।

८　धावउ = दौडता हूँ। प्रेम प्रभ कारणे = प्रभु के प्रेम की खातिर। पचदूत = इन्द्रियो के पॉच विषय, जो शत्रु है। बिखादी = विषय-आदि। घात = घातक, नाशक।

जीअ करनि जैकारु निंदक मुए पचि ।
साजन मनि आनंदु नानक नामु जपि ॥९॥

अउखधु नामु अपारु अमोलकु पीजई ।
मिलि मिलि खावहि संत सगल कउ दीजई ॥
जिसै परापति होइ तिसै ही पावणे ।
हरि हां, हउ बलिहारी तिन जि हरि रंगि रावणे ॥१०॥

सलोक

हरि हरि नामु जो जनु जपै सो आइआ परवाणु ।
तिसु जनकै बलिहारणै जिनि भजिआ प्रभु निरबाणु ॥१॥

सतिगुर पूरे सेविए दूखा का होइ नास ।
नानक नाम अराधिए कारजु आवै रासु ॥२॥

जिसु सिमरत संकट छुटहि अनंद मंगल बिस्राम ।
नानक जपीए सदा हरि निमख न बिसरउ नाम ॥३॥

बिखै कउड़त्तणि सगल महि जगत रही लपटाइ ।
नानक जनि वीचारिआ मीठा हरि का नाउ ॥४॥

---

९ जिथै=जहाँ भी । भगतु=हरिभक्त, सतजन । थानु=स्थान । साजन=सज्जन ।

१० अउखधु=औषधि । पीजई=पीले । सगल कउ=सब भव-रोगियो को । जि हरिरंगि रावणे=जो भगवत्प्रेम मे रम रहे है ।

१ सो आइआ परवाणु=उसीका ससार मे आना सच्चा है । निरबाणु=मोक्षदायक ।

२ कारजु आवे रासु=हरिनाम की पूँजी (अंत समय) काम आये ।

३ बिस्राम=शान्ति । निमख=निमिष, पल ।

४ बिखै कउड़त्तणि=विषयरूपी कड्वी वेल ।

गुरु कै सबदि अराधिए नामि रंगि बैरागु।
जीते पंच बैराइआ नानक सफल मारू रागु ॥५॥

पतित उधारण पारब्रहमु संम्रथ पुरखु अपारु।
जिसहि उधारे नानका सो सिमरे सिरजणहारु ॥६॥

पंथा प्रेम न जाणई भूली फिरै गवारि।
नानक हरि बिसराइकै पउदे नरक अँधिआर ॥७॥

फूटो अंडा भरम का मनहि भइओ परगासु।
काटी बेरी पगह ते गुरि कीनी बंदि खलासु ॥८॥

तू चउ सजण मैडिआ देई सीसु उतारि।
नैण महिंजे तरसदे कदि पसी दीदारु ॥९॥

नीहु महिंजा तऊ नालि बिआ नेह कूड़ावे डेखु।
कपड़ भोग डरावणे जिचरु पिरी न डेखु ॥१०॥

उठी झालू कतड़े हउ पसी तउ दीदारु।
काजल हारु तमोल रसु बिनु पसे हभि रस छारु ॥११॥

---

५ गुरु कै ⋯ ⋯बैरागु=गुरु के उपदेश की आराधना करनी चाहिए, जिससे हरि-नाम के प्रति प्रेम और विषयो के प्रति वैराग्य उत्पन्न हो। पंच बैराइआ=विषयरूपी पाँचो शत्रुओ को। मारू राग=वह राग जो युद्ध मे उत्साह बढाने के लिए गाया जाता है।

६ सम्रथ=समर्थ, सर्वशक्तिमान्।

८ मनहि भइओ परगासु=मन के अंदर दिव्य प्रकाश भर गया। बेरी=बेड़ी। पगह ते=पैरो मे से। बदि खलासु=बन्धन-मुक्त।

९ अय मेरे साजन, अगर तू कहे, तो मै अपना सिर उतारकर तुझे दे-दूँ। मेरी आँखे तरसती हैं कि कब तुझे देखूँ।

१० मेरी प्रीति तेरे ही साथ है, मैने देख लिया कि और सब प्रीति झूठी है। तुझे देखे बिना ये वस्त्र और ये भोग मुझे डरावने लगते हैं।

११ मेरे प्यारे, तेरे दर्शन के लिए मै बडी भोर उठ जाती हूँ। काजल, हार

पहिला मरणु कबूलि करि जीवण की छड़ि आस ।
होहु सभना की रेणुका तउ आउ हमारै पास ॥१२॥
जिसु मनि वसै पारब्रहमु निकटि न आवै पीर ।
भुख तिख तिसु न विआपई जमु नही आवै नीर ॥१३॥
धणी विहूणा पाट पटंबर भाही सेती जाले ।
धूड़ी विचि लुडंदड़ी साहां नानक तै सह नाले ॥१४॥
सोरठि सो रसु पीजिए कबहू न फीका होइ ।
नानक राम नाम गुन गाइअहि दरगह निरमल सोइ ॥१५॥
जाको प्रेम सुआउ है चरन चितव मन माहि ।
नानक बिरही ब्रहम के आन न कतहू जाहि ॥१६॥
मगनु भइओ प्रिअ प्रेम सिउ सूध न सिमरत अंग ।
प्रगटि भइओ सभ लोअ महि नानक अधम पतंग ॥१७॥

और पान और सारे मधुर रस, बिना तेरे दर्शन के धूल की तरह लगते हैं ।

१२ कबूलि करि=स्वीकार करले । छडि=छोड़कर । रेणुका=पैरों की धूल ; अत्यंत तुच्छ ।

१३ पीर=दुःख । तिख=तृषा, प्यास । जमु=काल । नीर=निकट ।

१४ मेरा प्रीतम मेरे पास नहीं, तो इन रेशमी वस्त्रों को लेकर क्या करूँगी, मै तो इनमे आग लगा दूँगी ,
प्यारे, तेरे साथ धूल मे लोटती हुई भी मै सुन्दर दिखूँगी ।

१५ सोरठि=एक राग का नाम । सो रसु=ब्रह्म-रस से आशय है । दरगह= परमात्मा का दरबार । निरमल=निष्पाप ।

१६ सुआउ=स्वभाव । चरन चितव मन माहि=परमात्मा के चरणो का ध्यान हृदय मे करते है । बिरही=अत्यत प्रेमातुर । आन=अन्य स्थान, सासारिक भोगों से आशय है ।

१७ सूध=सुध, ध्यान । लोअ=लोक ।